रुय्यक - कृत

अलंकार - सर्वस्व की टीकाओं का अध्ययन



डॉ. देवेन्द्र मिश्र

वेंकटेश प्रकाशन
दिल्ली

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कृत अलङ्कार शास्त्र की सम्पूर्ण परम्परा में केवल अलङ्कारों का ही विवेचन करने वाले कुल तीन ग्रन्थ हैं – उद्भटकृत काव्यालङ्कारसारसंग्रह, रुय्यक का अलङ्कारसर्वस्व तथा अप्पय दीक्षित की चित्रमीमांसा। इनमें से सर्वाधिक समादृत हुआ अलङ्कारसर्वस्व, क्योंकि उसके पूर्व ध्वनि–सिद्धान्त का उद्भव एवं चरम विकास हो चुका था और उसके आधार पर अलङ्कारों के सैद्धान्तिक विवेचन हेतु रुय्यक को एक नयी दिशा मिली।

रुय्यक के इस ग्रन्थ पर तीन टीकाएँ उपलब्ध हैं जो टीका न होकर भाष्य हैं। इनमें से जयरथ की विमर्शिनी और श्रीविद्याचक्रवर्ती की संजीविनी पर तो काम हो चुका था किन्तु समुद्रबन्ध की विवृति टीका अछूती रह गयी थी। प्रस्तुत ग्रन्थ में तीनों टीकाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और इस शास्त्र को सरल और सहज-ग्राह्य बनाने का प्रयास किया गया है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुय्यक–कृत

अलंकार–सर्वस्व की टीकाओं का अध्ययन

लेखक :

डॉ. देवेन्द्र मिश्र

प्रवाचक, संस्कृत विभाग,

मुख्य परिसर, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली – 7

वेंकटेश प्रकाशन, दिल्ली

वेंकटेश प्रकाशन, दिल्ली

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

This Publication Has Been Brought Out with The Financial Assistance from Rastriya Sanskrit Sansthan New Delhi.

प्रकाशक
वेंकटेश प्रकाशन
69, संस्कृत नगर, प्लाट नं 3, सैक्टर-14, रोहिणी, दिल्ली-85
फोन नं० 7864335

© लेखक

कार्यालय :-
97/109 सुन्दर पैलेस, ज्वाला हेड़ी मार्किट, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-63 फोन नं० 5586923, 5574367

शाखा–
(1) ग्राम व पोस्ट–परसिया मिश्र जि० देवरिया (उ०प्र)
(2) अवैरी, तरीरगढ़, बैजनाथ, कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)
(3) देवरा कलॉ, कटनी (मध्य प्रदेश)
(4) 2/20 इन्दिरा विहार जानीपुर, जम्मू (188007)

लेजर टाइप सेटिंग
अजय कम्प्यूटर सेंटर,
97/109, सुन्दर पैलेस, ज्वाला हेड़ी,
पश्चिम विहार नई दिल्ली-63
फोन नं०- 5586923, 5574367,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समर्पणम्



!! ॐ हरिः !!

महेशपादपद्मयोरखण्डभक्तिसंयुते !
धराधरेन्द्रनन्दिनीनिकेतलिम्पनातुरे !।
उमेशलोकवासिनी ! समर्पितां हि श्रद्धया,
कृतिं गृहाण, पुष्पमेतदर्पितं सुतेन ते ।।

—नतेन ते.....

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डॉ० मण्डन मिश्र
कुलपति,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी - २२१००२

दूरलेख : 'सुमन'
दूरभाष ३४४०८९ कार्यालय
३४८१३० निवास
३४८६१०
३४८१३० फैक्स

पत्र-संख्या ....
दिनांक 4 अगस्त 1996

शुभाशंसनम्

साहित्यापरपर्यायस्य काव्यनामकवाङ्मयविशेषस्य स्वरूपादेर्विषये चिन्तनं भारतवर्षे परःसहस्रं वर्षेभ्यः प्रवतति तथा चात्रत्यैर्मनीषिभिर्हि गैर्वाणीं वाणीं समाश्रित्य प्रस्तुतायाः काव्यमीमांसाया गाम्भीर्यातिशयस्य वैशद्यविशेषस्य चासाधारण्यं सर्वैरपि साम्प्रतिकैः काव्यशास्त्रकोविदैरङ्गीक्रियते । सुविततायां काव्यस्वरूपादिविषयिण्यां भारतीयमनीषिचिन्तनपरम्परायाँ प्रस्तुतानां तथ्यविशेषाणां समीक्षणार्थं तेषां क्रमञ्चानुसन्धातुं साम्प्रतिकैस्सुधीभिर्विहितेषु स्तुत्यप्रयासेषु दिल्लीवास्तव्यविद्वद्वरेण्यडाक्टरदेवेन्द्रमिश्रस्य रुय्यककृतालङ्कारसर्वस्वटीकात्रयीपर्यालोचनात्मकं प्रयत्नं विशिष्टमहिमयुतं पदं भजते ।

आलङ्कारिकशिरोमणिना राजानकरुय्यकाचार्येण प्रणीतेऽलङ्कारसर्वस्वनाम्नि ग्रन्थे सुवितता भारतीयकाव्यमीमांसा समाहिताऽस्ति । अलङ्कारसम्प्रदायानुवर्तिन आचार्यराजानकरुय्यकस्यास्यां कृतावलङ्कारसम्प्रदायचिन्तनपरम्परापरिपोषणेन सह रीतिरसध्वनिवक्रोत्यौचित्यसम्प्रदायानुवर्तिनामाचार्याणां चिन्तनसरण्योऽपि सम्यग् विवेचिताः सन्ति । अलङ्कारसम्प्रदायप्रमुखयोर्भामहभट्टोद्भटयोः काले ध्वनिप्रभृतयः काव्यात्मनिरूपणसरण्यस्तु नैव समाविष्कृतास्तासां भामहभटोद्भटानन्तरसमाविष्कृतानां काव्यात्मचिन्तनसरणीनामपि समायोजनं भामहभट्टोद्भटानुयायिनाऽनेन राजानकरुय्यकाचार्येण स्वग्रन्थे विधायालङ्कारसम्प्रदायस्य विराट्स्वरूपं प्राकाशि । परवर्तिभिराचार्यैर्विद्यानाथविद्याधरविश्वनाथाप्पयदीक्षित पण्डितराजजगन्नाथैर्हि रुय्यकप्रकाशितं विभिन्नशब्दार्थालङ्कारलक्षणादिकं सबहुमानं परामृष्टं तथा च मल्लिनाथकुमारस्वामिराघवभट्टप्रभृतिभिर्लब्धप्रतिष्ठैष्टीकाकारैरलङ्कारसर्वस्वस्य सूत्राणि प्राचुर्येण समुदाहृतानि तेन हि रुय्यककृतालङ्कारसर्वस्वस्य महत्त्वं सुस्पष्टं परिचीयते।

व्याकरणप्रभृतिशस्त्रान्तरवदेव काव्यशास्त्रीयविषयविवेचनार्थं प्राचीनैर्भारतीयमनीषिभिष्टीकाविरचने विशिष्टाभिरुचिः प्रकाशिता बहुभिष्टीकाकारैश्च

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वविवेच्यग्रन्थस्थितविषयाणां विवेचनप्रसङ्गे सुवितता भारतीयमनीषिचिन्तनपरम्परायाः परामर्शं विधाय तद्विषयकं स्वकीयं विशिष्टं चिन्तनमपि समायोजितं तेनैव हेतुना श्रीमदभिनवगुप्तप्रभृतयः काव्यशास्त्रिणष्टीकाग्रन्थप्रणयनमात्रेण मूलग्रन्थकृद्भ्योऽपि महनीयतरं पदं भजन्ते। वस्तुतस्तु कस्यचन ग्रन्थविशेषस्य टीकाविरचनं तस्य ग्रन्थविशेषस्यार्थं विशदीकर्तुं विधीयते तथा च ग्रन्थार्थबोधनमात्रादेव टीकाग्रन्थस्य सार्थकता मन्यते सुधीभिः। सेयं टीकासम्पदा ग्रन्थविशेषे प्रस्तुतस्य विषयस्य सम्यक्परिचयार्थं सविशेषं साहाय्यमाचरति। राजानकरुय्यककृतालङ्कारसर्वस्वस्यार्थं विशदीकर्तुं मनीषिणां तट्टीकाप्रणयने प्रवृत्तिर्हि राजानकरुय्यकसमक्षमेव व्यजायतेति काव्यशास्त्रेतिहासविदो वदन्ति। यद्यपि राजानकरुय्यकसमकालिकेनालकाचार्येण विरचिताऽलङ्कारसर्वस्वटीका सम्प्रति नोपलभ्यते परन्तु ख्रिष्टाब्दानां त्रयोदशे शतके श्रीमता जयरथेन विरचिता विमर्शिनीनाम्नी टीका, दाक्षिणात्यविदुषा समुद्रबन्धेन च निबद्धा विवृतिनामधेया टीका तथा च परमविदुषा श्रीविद्याचक्रवर्तिना सुगुम्फिता संजीवनीतिसंज्ञिता टीका राजानकरुय्यकविरचितालङ्कारसर्वस्वस्य तस्मिन् युगे विद्वत्प्रियत्वं सविशेषं सूचयन्ति। सैषा प्राचीना टीकात्रयी राजानकरुय्यकाभिमतं प्रकटीकर्तुं सविशेषं महत्त्वं भजते यतो ह्येतासां टीकानां प्रणयनं राजानकरुय्यकस्थितिकालात्शताब्दद्वयाभ्यन्तरे व्यजायत ततो हि समधिककालव्यवधानाभावे श्रीजयरथसमुद्रबन्धश्रीविद्याचक्रवर्तिभिर्विरचितास्वेतासु टीकासु सुस्पष्टतरा रुय्यकविचाराभिव्यक्तिर्विराजते।

श्रीजयरथसमुद्रबन्धश्रीविद्याचक्रवर्तिनामकैः प्राचीनभारतीयमनीषिभिर्विरचिताभिष्टीकाभिस्समन्वितस्य रुय्यककृतालङ्कारसर्वस्यस्य परिशीलनं विधाय दिल्लीविश्वविद्यालयीयसंस्कृतविभागे प्रवाचकपदप्रतिष्ठितेन विद्वद्वर्येण डॉक्टरदेवेन्द्रमिश्रेण प्रणीतोऽयं शोधग्रन्थः प्राचीनभारतीयमनीषिणां काव्यशास्त्रविषयिणीं सुविततां चिन्तनपरम्परां विशेषतश्च राजानकरुय्यकचिन्तनवैशद्यं परिचेतुं प्रयतमानानां सुधीजनानां महत्साहाय्यं विधेयात्तथा च विद्वद्वर्यस्य डॉक्टरदेवेन्द्रमिश्रस्येदृशाः भारतीयमनीषिचिन्तनपरम्परापरामर्शाः सततं प्रवर्धेरन्निति कामये।

(मण्डन मिश्र)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ॐ

दूरभाष : कार्यालय : 664003, 6851253
निवास : 6851250, 6855099

प्रो० वाचस्पति उपाध्याय
कुलपति

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)
कटवारिया सराय, नई दिल्ली–110016

पुरोवाक्

साहित्यशास्त्र की बहु आयामी चिन्तन परम्परा में अलङ्कार सिद्धान्त का विशेष महत्त्व है। इस महत्त्व के कारण ही इसे अलङ्कारशास्त्र की महीयसी संज्ञा से विभूषित किया गया था। अलङ्कार जनित चमत्कार के सारवेत्ता आचार्यों की दृष्टि से अलङ्कार काव्य का भूषण मात्र नहीं है, यह तो काव्य का असाधारण तत्त्व है। यही काव्य का प्राण है जो काव्योपस्कारक समग्र तत्त्वों को अनुप्राणित करता है। इसी के भिन्न-भिन्न रूप अनेक नामों से साहित्यजगत् में समादृत हैं। "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति"– इस एक तत्त्व का अनुभव, समीक्षक अनेक रूपों में करता है। अद्वैतवादियों की दृष्टि में यह ब्रह्माण्ड जिस भाँति एक ओर अद्वितीय ब्रह्मतत्त्व का विलास है उसी भाँति काव्य के सम्पूर्ण विलास का मूल तत्त्व अलङ्कार है।

अलङ्कार की व्यापक पृष्ठभूमि पर ही वामन ने "काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्" "सौन्दर्यमलङ्कारः" इत्यादि सूत्रों का प्रणयन किया था। परवर्ती चिन्तन में अलङ्कार शब्द–प्रयोग शनैः शनैः उपमा रूपक आदि शब्दार्थालङ्कारों तक ही केन्द्रित हो गया। इस दिशा में आचार्यों ने जिन विपुल ग्रन्थों की रचना की उनमें श्री राजानक रुय्यक द्वारा प्रणीत "अलङ्कारसर्वस्व" अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ की श्री विद्या चक्रवर्ती द्वारा प्रणीत 'सञ्जीविनी' समुद्रबन्धकृत 'विवृति' अलककृत 'अलक' तथा जयरथकृत 'विमर्शिनी' टीकाओं का उल्लेख है, किन्तु इनमें 'अलक' टीका अब तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

मेरी दृष्टि में तीनों महीयसी टीकाओं के परिप्रेक्ष्य में अलङ्कारसर्वस्व का अध्ययन अब तक प्रकाशित नहीं हुआ है। यह बड़े हर्ष एवं सन्तोष

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का विषय है कि जिस विमर्शिनी टीका के आलोक को प्राप्त कर अप्पयदीक्षित ने 'चित्रमीमांसा' और "कुवलयानन्द" का प्रणयन किया. तथा पण्डितराज जगन्नाथ ने रसगङ्गाधर का घनीभूत सरस प्रवाह प्रवाहित किया उस ग्रन्थ की उन्हीं ग्रन्थियों को मेरे सुहृद् डॉ. देवेन्द्र मिश्र ने अत्यन्त सरल एवं सुबोध बनाया है। डॉ. मिश्र ने इन टीकाओं का अध्ययन करते हुए "नाऽमूलं लिख्यते किञ्चत् नानपेक्षितमुच्यते" का सिद्धान्त अपनाया है। टीकाकारों को केन्द्र में रखते हुए पूर्ववर्ती एवं परवर्ती समंग्र अलङ्कार चिन्तन की उचित समीक्षा करने का प्रयास किया है तथा इस ग्रन्थ से संबंधित विविध शोध कार्यों का निर्देश करते हुए अलङ्कारसर्वस्व की टीकाओं एवं टीकाकारों के बारे में नूतन तथ्यों का उन्मेष किया है।

वस्तुतः प्रस्तुत ग्रन्थ में सुहृद्वर डॉ. देवेन्द्र मिश्र ने अलङ्कारसर्वस्व के प्रगत अध्ययन के माध्यम से अलङ्कारशास्त्र के विकास की विशिष्ट समीक्षा करते हुए रुय्यक पर अब तक उपलब्ध सामग्री का तथ्यात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। विद्वान् समीक्षक की सारस्वत साधना का ही यह परिणाम है कि प्रस्तुत ग्रन्थ त्रिविध टीकाओं के संगम के रूप में सामने आया है जो अवश्य ही ग्रन्थकार की अपनी मौलिक चिन्तनधारा का प्रतिफल है।

मेरी दृष्टि में डॉ. मिश्र का यह ग्रन्थ अलङ्कारशास्त्र के क्षेत्र में प्रगत अध्ययन करने वाले जिज्ञासुओं का ज्ञानवर्धन करेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि विद्वान् लेखक की सारस्वत साधना सरस्वती समुपासकों में समादृत होगी।

वउपाध्याय

(वाचस्पति उपाध्याय) 16.2.96

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राक्कथन

दर्शन और व्याकरण की ही तरह संस्कृत का साहित्यशास्त्र भी परम महनीय एवं अति गहन है । भरतनाट्यशास्त्र के पूर्व से लेकर सामान्य रूप से आज तक तथा विशेष रूप से पण्डितराज जगन्नाथ तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित साहित्य समालोचना की यह धारा परम व्यापक होने के साथ-साथ अति गम्भीर भी है, जिसका थाह लगाने के लिए पद-वाक्य-प्रमाणज्ञ होना व्यक्ति की न्यूनतम योग्यता है । मुकुलभट्ट की यह उक्ति किञ्चिदपि अत्युक्ति नहीं है कि जो व्यक्ति व्याकरण, मीमांसा और न्याय आदि शास्त्रों में दक्ष है तथा उनमें प्रतिपादित सिद्धान्तों का विनियोग साहित्य में करने में समर्थ है उसी की गति साहित्यशास्त्र में संभव है ।

"पदवाक्यप्रमाणेषु तदेतत्प्रतिबिम्बितम् ।
यो योजयति साहित्ये तस्य वाणी प्रसीदति ।"

इसकी पुष्टि आचार्य कवि राजशेखर की उक्ति से भी होती है, जब वह कहते हैं –

"आन्विक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति चतस्रो विद्याः,
साहित्यं पञ्चमी विद्येति यायावरीयः ।"
सा हि चतसॄणामपि विद्यानां निस्यन्दः ।।"

इस दृष्टि से देखने पर संस्कृत साहित्यशास्त्र की कृतियों एवं उनमें प्रतिपादित सिद्धान्तों की मीमांसा अभी सुतरां अपेक्षित है, यद्यपि वाङ्मय की अन्य विधाओं के समान साहित्यशास्त्र के क्षेत्र में भी पर्याप्त मात्रा में शोध कार्य सम्पन्न किये गये हैं ।

आनन्दवर्धन के उत्तरवर्ती आचार्यों की कृतियों का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि काव्य में अलङ्कारों की एकाधिकारिक महत्ता पर प्रश्नचिह्न लग गये हैं, जिसका श्रीगणेश हमें वामन की काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति से ही उपलब्ध होने लगता है, पर काव्य में अलङ्कारों के महत्त्व को लेकर भामह,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उद्भट एवं जयदेव प्रभृति आचार्यों ने जो बात कही है वह आज भी उपेक्षणीय नहीं है । वह है – काव्यत्त्व और अलङ्कारात्त्व का सामानाधिकरण्य । इस संदर्भ में जयदेव के इस कथन को उत्तरवर्ती सभी आचार्यों ने महत्त्व दिया है, जो आचार्य मम्मट के काव्य-लक्षण में प्रयुक्त 'अनलंकृती पुनः क्वापि' की प्रतिक्रिया में झंकृत हुआ –

"अङ्गीकरोति यः काव्यम् शब्दार्थावनलङ्कृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती ।।"

संस्कृत अलङ्कार-शास्त्र के इतिहास पर दृष्टिपात करने से हम पाते हैं कि अलङ्कार-शास्त्र की पूरी परम्परा में केवल तीन ही ग्रंथ ऐसे हैं जो विशुद्ध रूप से मात्र अलङ्कारों का ही विवेचन प्रस्तुत करते हैं, वे हैं –उद्भट का काव्यालङ्कारसारसंग्रह, रुय्यक का अलङ्कारसर्वस्व तथा अप्पय दीक्षित की चित्रमीमांसा । इन तीनों में अलङ्कारसर्वस्व सर्वतोधिक समादृत इसलिए हुआ कि उसके पूर्व ध्वनिसिद्धान्त का उद्भव एवं चूडान्त विकास हो चुका था, और जिसके आधार पर अलङ्कारों के सैद्धान्तिक विवेचन में रुय्यक को एक नयी दिशा मिली, जिसका अभाव उद्भट के विवेचन में सुतरां परिलक्षित होता है । अप्पय दीक्षित के द्वारा किये हुए विवेचन में पण्डितराज जगन्नाथ ने अनेक दोषोद्भावन किए हैं जिससे उसकी मान्यता का रुय्यक की अपेक्षा कम होना समुचित ही है । आचार्य रुय्यक के पहले वागदेवता के अवतार कहे जाने वाले अलङ्कारसरणि के व्यवस्थापक आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में अलंकारों का जो अति विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया था वह निश्चित रूप से पाण्डित्यपूर्ण अधिक था, सहज-ग्राह्य कम ।

भरत से लेकर मम्मट तक अलङ्कारों का जितना भी विवेचन हुआ था, रुय्यक ने अपने ग्रन्थ में उस सबको समाहित कर लिया है तथा उसका परिष्कार किया है । सर्वस्व के सूत्रों में केवल अलङ्कारों का लक्षण ही नहीं है, अपितु इनके वर्गीकरण एवं निरूपण-क्रम को सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया गया है । रुय्यक की मौलिक देन है – अलङ्कारों के सूक्ष्म भेद के निरूपण द्वारा उनके निष्कृष्ट लक्षण की प्रस्तुति । इसके अतिरिक्त परिणाम, उल्लेख, विचित्र, विकल्प, भावोदय, भावसन्धि तथा भावशबलता इन सात अलङ्कारों की उद्भावना रुय्यक ने की है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुय्यक के परवर्ती आलङ्कारिकों में विद्यानाथ, विद्याधर, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित तथा पण्डितराज जगन्नाथ का झुकाव काव्यप्रकाश की अपेक्षा अलङ्कार-सर्वस्व की ओर अधिक है । इन आचार्यों ने अधिकांश अलङ्कारों का लक्षण देते समय सर्वस्वसूत्रों का अनुसरण किया है । मल्लिनाथ, कुमारस्वामी और राघवभट्ट जैसे लब्धप्रतिष्ठ टीकाकारों ने रुय्यक के सूत्रों का उल्लेख करते हुए अलङ्कार-निर्देश किया है ।

अलङ्कारसर्वस्व का विवेचन गागर में सागर भरने जैसा सारवत् तो है ही विश्वतोमुख भी है, जिसका प्रस्फुटन इसकी टीकाओं में हुआ है । अलक, जयरथ, विद्याचक्रवर्ती तथा समुद्रबन्ध जैसे पदवाक्यप्रमाणपारावारीण टीकाकारों ने रुय्यक-कृत अलङ्कारों के लक्षण एवं स्वरूप के निरूपण में ग्रन्थ के गूढार्थ को समुन्मीलित किया है । इसकी टीकाओं का मन्थन कर रुय्यक के अभिप्राय को विशद रूप से समुपस्थापित करने की महती आवश्यकता का उल्लेख महामहोपाध्याय काणे एवं डे प्रभृति आधुनिक विद्वानों ने किया है । अलङ्कारसर्वस्व को लेकर प्रणीत शोध-प्रबन्धों में इस लक्ष्य को पूरा करने का प्रयास अवश्य हुआ है किन्तु वह उस दिशा में प्रयाण मात्र होकर रह गया है, अतः उसकी अपेक्षा अभी भी बनी हुई है । अलङ्कार-सर्वस्व पर जो भी कार्य हुए हैं वे किसी एक टीका को लेकर होने से सर्वथा एकांगी होकर रह गये हैं । विशेष रूप से समुद्रबन्ध की टीका (जो दुष्प्राप्य है) को लेकर कोई भी शोध-कार्य प्रस्तुत नहीं किया गया है । फलतः मेरा लक्ष्य स्पष्ट है – तीनों टीकाओं का एक साथ आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना । सफलता कितनी मिली है इसका निर्णय विद्वद्वर्ग ही कर सकता है ।

जिन मनीषियों के ग्रन्थों एवं विचारों से मुझे किञ्चिदपि सहायता प्राप्त हुई है मैं उन सभी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ । अपने गुरुदेव स्वर्गीय पं. रामपूजन पाण्डेय को श्रद्धापूर्वक स्मरण करता हूँ जिनके चरणों में 12 वर्ष की आयु से लेकर आगे के 5 वर्षों तक प्रायः नित्य ही बैठकर संस्कृत पढ़ने का सौभाग्य मिला और जिनके आचरण से प्रेरित होकर मैं उनके जैसा बनने का सच्चा प्रयास अद्यावधि करता हूँ । जिनका समस्त जीवन रामायण-मय तथा श्रीराम-मय रहा है ऐसे श्रद्धेय गुरुदेव श्री मुरलीधर मणि त्रिपाठी को सादर नमन करता हूँ, जिन्होंने किशोरावस्था में ही मुझे सत्संग और सत्साहित्य की ओर प्रेरित किया । ज्योतिष-शास्त्र और साहित्य-शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् परमादरणीय गुरुदेव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री एम. आर. भट्ट को मेरी प्रणामाञ्जलि, जिनकी कृपा और सत्प्रेरणा से ज्योतिष-शास्त्र के चिन्तन-मनन और प्रचार-प्रसार की ज्योति जली तथा जिसे प्रज्वलित रखने का अनवरत प्रयास प्रभु-कृपा से आज भी हो रहा है। जो अत्यन्त उदार और सरल-हृदय थे, जिनकी सत्य-वादिता को देखकर गाँव जवार के लोग कहा करते थे कि युधिष्ठिर ऐसे ही रहे होंगे, ऐसे परम पूज्य भइया (मेरे पिता) स्व. राजेन्द्र मिश्र को श्रद्धा पूर्वक स्मरण करता हूँ।

आजीवन श्री भवानीशङ्कर की उपासना में तत्पर, मेरे भविष्य की चिन्ता के कारण रात में कभी दो बजे कभी तीन बजे ही प्रभात समझकर जगा देने वाली ममतामयी माता स्व. शिवसाखी देवी की शिव-लोकस्थ आत्मा को मैं यह ग्रन्थ सादर समर्पित करता हूँ।

वेंकटेश प्रकाशन के कर्णधार श्री राजमणि त्रिपाठी और उनके परिवार को बहुत धन्यवाद, जिनका भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। और अन्त में 'भक्ति' में प्रीति रखने वाली श्री केशव-जनिता 'माया' को...।

भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी (भौम प्रदोष) देवेन्द्र मिश्र
विक्रम सं. २०५३.

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पृ० सं०

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रथम अध्याय

(क) अलङ्कारों के विकास के इतिहास का संक्षिप्त पर्यवेक्षण

'अरङ्कृतिः' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद की एक ऋचा में हुआ है, जो निखिल विश्व के उपलब्ध ग्रन्थों में प्राचीनतम है। वसिष्ठ ऋषि इन्द्र से पूछते हैं –

"का ते अस्त्यरङ्कृतिः सूक्तैः।" [१]

'अरम्' शब्द 'ऋ' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है गति, तथा जो बोध, मुक्ति और गमन–क्रिया का बोधक है। संभवतः सूक्तात्मक उक्ति में सन्निहित अतिशय–तत्त्व को जानने के अभिप्राय से यह प्रश्न ऋषि ने किया होगा। किन्तु यहाँ यह शब्द (अरङ्कृति) उपमा आदि के अर्थ में नहीं प्रयुक्त हुआ है। ऐसा लगता है कि अलङ्कार शब्द का पूर्व पद 'अलम्' ऋग्वेद में प्रयुक्त 'अरम्' का ही दूसरा रूप है।

वेदों में उपमा, रूपक आदि अलङ्कारों के उदाहरण तो दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु उनका विवेचन नहीं प्राप्त होता।[२] उषा सूक्त की इस ऋचा में चार उपमाएं आयी हैं–

"अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची, गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा, उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः।।"

ऋग्वेद १/१२४/७

तथा–

"उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचम्
उत त्वः श‍ृण्वन् न श‍ृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे
जायेव पत्य उशती सुवासा।।"

ऋ. १०/७१/४

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस मन्त्र में भी उपमा का सुन्दर रूप परिलक्षित होता है।

इसी प्रकार 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'[३] वाला मन्त्र अतिशयोक्ति का उदाहरण है।

किन्तु इन उदाहरणों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि वेदों में अलङ्कारों का निरूपण–मीमांसन हुआ है। इन (उदाहरणों) का सैद्धान्तिक महत्व नहीं है, व्यावहारिक महत्त्व अवश्य है। जिस प्रकार भाषा पहले से होती है, उसका व्याकरण बाद में बनता है, उसी प्रकार अलङ्कारों का व्यवहार वैदिक काल से होता रहा पर उनका स्वरूप निरूपण (अथवा लक्षण) बहुत बाद में किया गया।

यास्क ने निरुक्त में गार्ग्य का मत उद्धृत करते हुए लिखा है–"उपमा अतत् तत्सदृशम्"[४] इसी स्थल पर उपमाओं की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं–

"तदासां कर्म ज्यायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा कनीयांसं वा प्रख्यातं वा उपमिमीते अथापि कनीयसा ज्यायांसम् ।।" [५]

यास्क के इस उपमा विवेचन से ज्ञात होता है कि इनके पहले से ही अलङ्कारों के शास्त्रीय विवेचन का शुभारंभ हो चुका था, क्योंकि इन्होंने अपने पूर्ववर्ती गार्ग्य के भी मत का उल्लेख किया है। फिर भी यास्क के समय तक का उपमा विषयक विवेचन शाब्दिक अर्थों पर ही अधिक आधारित है। काव्य–शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से उसका महत्त्व गौण है।

पाणिनि की अष्टाध्यायी, कात्यायन के वार्तिक तथा पतञ्जलि के महाभाष्य में अलङ्कारों का जो उल्लेख हुआ है, उसका महत्व शब्द–शास्त्र की दृष्टि से ही अधिक है। पाणिनि ने उपमा, उपमान, उपमित तथा सामान्य आदि अलङ्कारशास्त्रीय शब्दों का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टा० २।३।७२

उपमानानि सामान्यवचनैः ।

अष्टा० २।१।५५

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्यप्रयोगे ।

अष्टा० २।१।५६

पतञ्जलि, उपमान शब्द का निर्वचन करते हुए कहते हैं –

मानं हि नाम अनिर्ज्ञातज्ञानार्थम्,
उप आदीयते अनिर्ज्ञातमर्थं ज्ञास्यामीति,
तत्समीपे यन्नात्यन्ताय मिमीते तद् उपमानम् ।

अर्थात्–' उप यानी पास में (अज्ञात वस्तु के निकट) हो जाने वाला अर्थ उपमान ।'

किन्तु पतञ्जलि के इस विवेचन में अलङ्कारत्व नहीं है । अपनी बात स्पष्ट करने के लिए वे **"गवय गो जैसा'** यह उदाहरण देते हैं जिसमें उपमा तो है, चमत्कार नहीं । अतएव यह अलङ्कार नहीं माना जा सकता।

अलङ्कारों के काव्य–शास्त्रीय विवेचन का प्रारम्भ भरत मुनि से माना जाता है । नाट्यशास्त्र में उन्होंने रूपकों की भाषा के सन्दर्भ में चार अलङ्कारों का उल्लेख किया है। वे हैं–उपमा, रूपक, दीपक एवं यमक। वह कारिका है–

"उपमा दीपकं चैव रूपकं यमकं तथा ।
काव्यास्यैते ह्यलङ्काराश्चत्वारः परिकीर्तिताः ।। [६]

भरत का समय ई० पू० दूसरी शताब्दी है । इन्होंने उपमा के पांच भेदों का विवरण दिया है तथा यह भी कहा है कि लक्षण एवं उदाहरण से विद्वानों को चाहिए कि इसके अन्य भेदों को जान लें । सम्बन्धित कारिका यह है–

'प्रशंसा चैव निन्दा च कल्पिता सदृशी तथा ।
किंचिच्च सदृशी ज्ञेया ह्युपमा पञ्चधा पुनः ।। [७]

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इनके अनुसार चार प्रकार से उपमा दी जा सकती है– एक की एक के साथ, एक की अनेक के साथ, अनेक की एक के साथ तथा अनेक की अनेक के साथ।

'एकस्यैकेन सा कार्या ह्यनेकेनाथवा पुनः।
अनेकस्य तथैकेन बहूनां बहुभिस्तथा ।।[८]

नाट्यशास्त्र में उपमा का लक्षण इस प्रकार दिया गया है–

'यत्किंचित् काव्यबन्धेषु सादृश्येनोपमीयते
उपमा नाम सा ज्ञेया गुणाकृतिसमाश्रया ।।[९]

अर्थात्– गुण या आकृति की समानता के कारण काव्यबन्धों में सादृश्यके द्वारा जहाँ तुलना की जाती है, वहाँ उपमा होती है।

भरत ने रूपक एवं दीपक अलङ्कारों के भेद नहीं दिए हैं। उनके अनुसार अनेक अधिकरण वाले अर्थ के बोधक शब्दों को एक ही वाक्य में गुम्फित करना दीपक है–

'नानाधिकरणार्थानां शब्दानां सम्प्रदीपकम्।
एकवाक्येन संयुक्तं तद्दीपकमिहोच्यते ।।[१०]

दीपक अलङ्कार के विवेचन में प्रस्तुत–अप्रस्तुत की चर्चा बाद के आचार्यों ने की है, नाट्यशास्त्र में नहीं है।

रूपक में गुणों की समानता के आधार पर उपमानोपमेय में अभेद, सिद्ध किया जाता है–

'स्वविकल्पेन रचितं तुल्यावयवलक्षणम्।
किंचित्सादृश्यसम्पन्नम् तद्रूपं रूपकं तु तत् ।।
नानाद्रव्यानुरागाद्यैर्यदौपम्यं गुणाश्रयम्।
रूपनिर्वर्णनायुक्तं तद्रूपकमिति स्मृतम् ।।'[११]

भरत ने शब्दाभ्यास को यमक कहा है–

'शब्दाभ्यासस्तु यमकम् पदादिषु विकल्पितम्।'[१२]

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्होंने यमक के दश [१३] भेदों का वर्णन किया है – पादान्त यमक, काञ्ची यमक, समुद्ग यमक, विक्रान्त यमक, चक्रवाक यमक, संदष्ट यमक, पदादि यमक, आम्रेदित यमक, चतुर्व्यवसित यमक तथा माला यमक।

भरत के समय तक ये ही चार अलङ्कार (जिनमें तीन अर्थालङ्कार है, एक शब्दालङ्कार) स्वीकृत हुये थे। इन अलङ्कारों के अतिरिक्त उन्होंने काव्यबन्ध में ३६ लक्षणों के उपयोग का निर्देश किया है।[१४] यद्यपि इन लक्षणों का वर्णन भरत ने अलंकार के रूप में नहीं अपितु अलङ्कार्य या काव्य–शरीर के रूप में किया है, किन्तु आगे चलकर इन्हीं में से अनेक (लक्षण) अलङ्कार के रूप में स्वीकृत किये गए। उदाहरणार्थ भरत के तीन लक्षणों–हेतु, लेश एवं आशीः [१५] को भामह ने अलङ्कार के रूप में उद्धृत किया है तथा इनमें से प्रथम दो का खण्डन किया है। वे हेतु एवं लेश को अलङ्कार मानने के पक्ष में नहीं हैं, किन्तु तीसरे के सम्बन्ध में यह कहा है कि कुछ लोग आशीः को भी अलङ्कार मानते हैं। उन्होंने इस अलङ्कार का उदाहरण भी दिया है। संभव है यह अलङ्कार उन्हें अभीष्ट रहा हो, क्योंकि इसका खण्डन नहीं किया है।

इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि भरत ने चार अलङ्कारों का विवेचन करने के साथ–साथ लक्षण के माध्यम से बहुत से नूतन अलङ्कारों के लिए आधार उपलब्ध करा दिया था। ऊपर वर्णित हेतु आदि तीन अलङ्कारों के अतिरिक्त भरत के संशय, दृष्टान्त, निदर्शन, निरुक्त एवं अर्थापत्ति इन पांच लक्षणों का ही आगे चलकर अलङ्कारों के रूप में विकास हुआ। इनके द्वारा वर्णित उपमा के पाँच तथा यमक के दश भेदों की चर्चा पीछे की जा चुकी है। भरत का यह भेद–निरूपण ही परवर्ती भेदोपभेद का या किसी भेद को पृथक् रूप से अलङ्कार के रूप में परिगृहीत किये जाने का आधार बना।

भरत के पश्चात् कुछ अन्य आचार्यों ने भी अलङ्कारों का शास्त्रीय विवेचन किया था, जिसकी सूचना हमें भामह के काव्यालङ्कार से प्राप्त होती हैं। दुर्भाग्य से उनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। नाट्यशास्त्र

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के पश्चात् दूसरा उपलब्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ भामह का काव्यलङ्कार है, जिसके द्वितीय तथा तृतीय परिच्छेद में इन्होंने अलङ्कारों का विस्तृत विवेचन किया है ।

भामह को अलंकारवादी आचार्य माना जाता है। इन्होंने अलङ्कार को काव्य का शोभाधायक धर्म माना है । इनका कथन है कि जिस प्रकार सुन्दर होने पर भी ललना का मुख आभूषणों के बिना सुशोभित नहीं होता उसी प्रकार अलङ्कारों के अभाव में काव्य की शोभा नहीं होती ।[१६]

इनके अनुसार अलङ्कारों का मूल है वक्रोक्ति, जिसके द्वारा अर्थ में रमणीयता आ जाती है। अतःकवि को इसके समावेश के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। वक्रोक्ति के बिना कोई भी अलङ्कार संभव नहीं ।[१७] इसी का अभाव होने से हेतु सूक्ष्म तथा लेश को इन्होंने अलङ्कार नहीं माना है ।[१८]

भामह ने यमक अलङ्कार के पांच भेद बताए हैं– आदि यमक, मध्यान्त यमक, पादाभ्यास यमक, आवली यमक, तथा समस्तपाद यमक । इसके अतिरिक्त उन्होंने अनुप्रास नामक [१६] एक अन्य शब्दालङ्कार का निरूपण किया है । उन्होंने इसके दो भेद भी बताये हैं तथा यह उल्लेख किया है कि अन्य आचार्यों को [२०] ग्राम्यानुप्रास तथा लाटानुप्रास मान्य है । भामह ने इनके लक्षण न देकर केवल उदाहरण दिए है ।

इससे ज्ञात होता है कि भरत के पश्चात् एवं भामह से पूर्व ये दो अनुप्रास निरूपित हो चुके थे । भामह ने सम्भवतः उन्हें एक सामान्य वर्ग अनुप्रास के अन्तर्गत रखकर दोनों को उसी का भेद बताने का कार्य किया है ।

इस प्रकार अनुप्रास एवं यमक इन दो शब्दालङ्कारों का भामह ने निरूपण किया है ।

भामह के द्वारा विवेचित अर्थालङ्कारों की संख्या ३६ है । इनमें

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथासंख्य, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, भाविकत्व तथा आशीः के संबन्ध में इन्होंने कहा है कि ये अलङ्कार के रूप में अन्य आचार्यों को मान्य हैं । निःसन्देह इन अलङ्कारों का उद्भावक कोई अन्य आचार्य था । संभव है कि भरत के[४] तथा उपरोक्त (यथासंख्य आदि) [५] अलङ्कारों के अतिरिक्त और भी अलङ्कार भामह के पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा उद्भावित रहे हों । भामह में अलङ्कारों तथा उसके भेदों की संख्या बढ़ाने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। हो सकता है कि इन्होंने अपने समय में प्रचलित अनेक अलङ्कारों को कम महत्व का तथा अनावश्यक समझकर छोड़ दिया हो । स्वभावोक्ति अलङ्कार का विवेचन करने के पश्चात् द्वितीय अध्याय के अन्त में वे स्वयं कहते हैं कि अलङ्कारों का निरूपण संक्षेप में किया गया है । अधिक विस्तार से धी–खेद (दिमागी थकान) ही पैदा होगा। जो अलङ्कार यहाँ संगृहीत नहीं हैं उनका भी अभ्यूहन पाठक को स्वयं उनके द्वारा संकेतित पद्धति से कर लेना चाहिए–

'समासेनोदितमिदं धीखेदायैव विस्तरः ।
असंगृहीतमप्यन्यदभ्यूह्यमनया दिशा ।' [२१]

भामह के ग्रन्थ में अलङ्कारों के वर्गीकरण का कोई प्रयास परिलक्षित नहीं होता है । लगता है उन्होंने कोई विभाजन नहीं माना था । इनके द्वारा निरूपित अलङ्कार निम्नलिखित हैं–

शब्दालङ्कार– अनुप्रास और यमक ।

अर्थालङ्कार– रूपक, दीपक, उपमा, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, यथासंख्य, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, प्रेयस्, रसवत्, ऊर्जस्वी, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त, श्लिष्ट, अपह्नुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, उपमारूपक, उपमेयोपमा, सहोक्ति, परिवृत्ति, ससंदेह, अनन्वय, उत्प्रेक्षावयव, संसृष्टि, भाविकत्व एवं आशीः ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दण्डी–

भामह के पश्चात् [२२] दण्डी हुए, जिन्होंने अपने ग्रन्थ काव्यादर्श के द्वितीय परिच्छेद में अलङ्कारों का विशद विवेचन किया है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निरूपित अलङ्कारों का प्रतिसंस्कार किया है तथा कुछ नवीन अलङ्कारों की उद्भावना भी की है। इन्होंने ३५ अर्थालङ्कारों का लक्षण दिया है तथा तीसरे परिच्छेद में यमक एवं चित्र इन दो शब्दालङ्कारों का भी निरूपण किया है। भामह ने हेतु, सूक्ष्म एवं लेश अलङ्कारों का खण्डन किया था, किन्तु दण्डी ने तीनों को स्वीकार करते हुए उन्हें वाणी का उत्तम भूषण [२३] बताया हैं। स्पष्ट है कि भरत के जिन लक्षणों को भामह ने अलङ्कार के रूप में स्वीकार नहीं किया था, वे ही दण्डी के समय तक अलङ्कार के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुके थे। दण्डी ने उद्घोष किया था कि दूसरे शास्त्र में जो सन्ध्यङ्ग; वृत्त्यङ्ग तथा लक्षण आदि के रूप में निरूपित हैं वे उन्हें अलङ्कार के रूप में मान्य हैं –

यच्च सन्ध्यङ्गवृत्त्यङ्गलक्षणाद्यागमान्तरे।
व्यावर्णितमिदं चेष्टमलङ्कारतयैव नः ।।

काव्या २। ३६६

दण्डी के द्वारा निरूपित अलङ्कारों में भामह के यथासंख्य, उपमारूपक, उपमेयोपमा, ससन्देह, अनन्वय तथा उत्प्रेक्षावयव ये छः अलङ्कार नहीं है। भामह द्वारा अस्वीकृत हेतु, सूक्ष्म व लेश इन तीन अलङ्कारों के संग्रह के अतिरिक्त आवृत्ति तथा क्रम के नाम से दो नवीन अलङ्कार भी दण्डी द्वारा उद्भावित हैं। अलङ्कारों के भेद का प्रस्ताव दण्डी ने मुख्य रूप से किया है। इन्होंने उपमा के ३३, रूपक के १६, दीपक के ११, आक्षेप के २४ तथा अर्थान्तरन्यास के ७ भेद किये हैं। अन्य अलङ्कारों के भी भेदों का निरूपण किया है। इनके द्वारा प्रवर्तित अनेक अलङ्कार–भेदों को परवर्ती आचार्यों ने स्वतन्त्र अलङ्कार के रूप में स्वीकार किया। अनेक भेद ऐसे हैं जो बाद के आचार्यों को मान्य नहीं रहे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भामह में अलङ्कार एवं भेदों को घटाने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, किन्तु दण्डी ने भेदों को पर्याप्त रूप से बढ़ाया है। उनका उद्देश्य था अलङ्कारों के अनन्त विस्तार को अपने ग्रन्थ में समेटना [२४]। दण्डी ने भी (भामह की भाँति ही) अलङ्कारों का वर्गीकरण नहीं किया है। उन्होंने अर्थालङ्कारों का निरूपण शब्दालङ्कारों से पहले किया है। चूंकि शब्द की प्रतीति पहले होती है अतएव शब्दालङ्कारों का विवेचन पहले करना ही उचित होता। दण्डी द्वारा विवेचित अलङ्कारों की तालिका अधोलिखित हैं –

> स्वभावोक्ति, उपमा, रूपक, दीपक, आवृत्ति आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, हेतु, सूक्ष्म, लेश, यथासंख्य, (या क्रम), प्रेयस्, रसवत्, ऊर्जस्वी, पर्यायोक्ति, विरोध, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजोक्ति, निदर्शना, सहोक्ति, परिवृत्ति, समाहित, उदात्त, अपह्नुति ,श्लेष, विशेषोक्ति, तुल्ययोगिता, आशीः, संसृष्टि और भाविक। इसके अतिरिक्त यमक, चित्रबंध एवं प्रहेलिका।

उद्भट–

दण्डी के पश्चात् अलङ्कार–निरूपण के क्षेत्र में उद्भट का नाम प्रमुख है, उन्होंने सभी पूर्ववर्ती आचार्यों का मत समेट कर अलङ्कारों को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। अलङ्कार–शास्त्र पर उद्भट इतना छा गये कि उनके आगे भामह तिरोहित हो गए थे। भामह का ग्रन्थ बहुत काल तक लुप्त रहा। परवर्ती अलङ्कारिकों ने मतभेद होने पर भी उद्भट का उल्लेख आदरपूर्वक किया है। ध्वन्यालोक [२५] तथा अलङ्कारसर्वस्व[२६] में वहुत सम्मानपूर्वक उद्भट का उल्लेख किया गया है। व्यक्तिविवेक टीका[२७] में तो इन्हें अलङ्कारतन्त्रप्रजापति कहा गया है।

उद्भट, दण्डी की अपेक्षा भामह से अधिक प्रभावित हैं। यद्यपि उन्होंने भामहालङ्कार का प्रायः अनुसरण किया है, तथापि ऐसे स्थल अनेक हैं जहाँ उनका भामह से मतभेद है और स्वतन्त्र चिन्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणस्वरूपप्रतीहारेन्दुराज [२८] का कथन है–

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"भामहो हि ग्राम्योपनागरिकाभेदेन द्विप्रकारमेवानुप्रासं व्याख्यातवान् । तथा, रूपकस्य ये चत्वारो भेदा वक्ष्यन्ते तन्मध्यादाद्यमेव भेदं द्वितीयं प्रादर्शयत् ।

उद्भट ने अनुप्रास के तीन भेद छेकानुप्रास, अनुप्रास एवं लाटानुप्रास किये हैं । वृत्त्यनुप्रास भी उद्भट द्वारा ही प्रतिपादित है, किन्तु उन्होंने इसे स्वतन्त्र अलङ्कार न मानकर अनुप्रास का ही एक भेद माना है । इन्होंने रूपक के चार भेद किये हैं, जबकि भामह ने दो (समस्तवस्तुविषयक तथा एकदेशविवर्ति) किये थे । इसी प्रकार ध्वन्यालोक–लोचन की अधोलिखित पंक्ति से भी उद्भट का स्वतन्त्र मत स्पष्टतः ज्ञात होता है–

"भामहेन हि गुरुदेवनृपतिपुत्रविषयप्रीतिवर्णनं प्रेयोलङ्कार इत्युक्तं . . . उद्भटमते हि भावालङ्कार एव प्रेय इत्युक्तः । [२६]

भामह के उपमारूपक तथा उत्प्रेक्षावयव, दण्डी के आवृत्ति, हेतु, सूक्ष्म, आशीः, यमक तथा चित्र अलङ्कार उद्भट को मान्य नहीं है। इन्होंने कुल ४१ अलङ्कारों को स्वीकार किया है, जिसमें प्राचीन आचार्यों के ३४ अलङ्कारों को अपनाया है तथा ७ अलङ्कारों की स्वयं उद्भावना की है । उद्भट का प्रमुख योगदान है पूर्ववर्ती आचार्यों के अनेक अलङ्कारों एवं उनके भेदों को व्यवस्थित रूप प्रदान करना तथा पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, प्रतिवस्तूपमा, काव्यलिङ्ग, दृष्टान्त तथा संकर अलङ्कारों की उद्भावना । इन्होंने अलङ्कारों के भेदों को परिष्कृत रूपमें परिभाषित किया है ।

उद्भट ने कतिपय अलङ्कारों को लेकर उनका परिगणन ६ बार किया है, जिसे कुछ विद्वान वर्गीकरण मानते हैं । डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी[३०] इसे वर्गीकरण नहीं मानते हैं । उनके अनुसार यह केवल उद्देश (नामतः संकीर्तन) है । मेरी दृष्टि में उद्भट के काव्यालङ्कार–सार–संग्रह में अलङ्कारों का वर्गीकरण मानना तर्कसंगत नहीं है ।

उद्भट द्वारा विवेचित अलङ्कारों का विवरण इस प्रकार है –

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रथम वर्ग– पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, तीन प्रकार के अनुप्रास (परुषा, उपनागरिका, ग्राम्या या कोमला), लाटानुप्रास, रूपक उपमा, दीपक (तीन प्रकार का), प्रतिवस्तूपमा ।

द्वितीय वर्ग– आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना समासोक्ति, अतिशयोक्ति ।

तृतीय वर्ग– यथासंख्य, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति ।

चतुर्थ वर्ग– प्रेय, रसवत् ऊर्जस्वित् पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त (दो प्रकार का) श्लिष्ट ।

पंचम वर्ग– अपह्नुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, उपमेयोपमा, सहोक्ति, संकर (चार प्रकार का) परिवृत्ति ।

षष्ठ् वर्ग– अनन्वय, संदेह, संसृष्टि, भाविक, काव्यलिङ्ग, दृष्टान्त ।

उद्भट के कनिष्ठ समकालीन आचार्य वामन ने अपने काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति के चौथे अधिकार में अलङ्कारों का निरूपण किया है। इन्होंने कुल ३१ अलङ्कार स्वीकार किये हैं, जिनमें २ शब्दालङ्कार हैं एवं २६ अर्थालङ्कार। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निरूपित पर्यायोक्त, रसवत्, प्रेयः ऊर्जस्वी, उदात्त, भाविकं तथा सूक्ष्म अलङ्कारों का विवेचन नहीं किया है । वामन के कुछ अलङ्कारों के लक्षण भामह से बहुत मिलते हैं, जैसे उपमा [31] और विभावना [32] के इसके अतिरिक्त भामह द्वारा निरूपित एवं उद्भट को अमान्य उपमारूपक और उत्प्रेक्षायवव [33] अलङ्कारों को वामन ने स्वीकार किया है, यद्यपि इन्हें स्वतन्त्र अलङ्कार न मानकर संसृष्टि का भेद माना है। वक्रोक्ति का अर्थालङ्कार में सन्निवेश सर्वप्रथम वामन ने ही किया है । व्याजोक्ति अलङ्कार की उद्भावना इनकी विशेष देन है। इन्होंने शब्दालङ्कारों का निरूपण करने के पश्चात् प्रतिवस्तूपमा से लेकर संसृष्टि तक के अर्थालङ्कारों को उपमा का ही प्रपञ्च बताया है । इससे स्पष्ट है कि वामन को शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार ये दो विभाग अभीष्ट हैं तथा साथ ही औपम्य तत्व के आधार पर शेष अलङ्कारों

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का भी परोक्षतः वर्गीकरण इन्होंने किया है। गुण एवं अलङ्कारों में परम्पर भेद का प्रतिपादन सर्वप्रथम वामन ने किया है–

काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः।
तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः।। –३।२।१–२

काव्यप्रकाश ने वामन के इस मत का खण्डन किया है।

वामन ने आक्षेप अलङ्कार का लक्षण बताने वाले सूत्र के दो अर्थ किये हैं तथा दो उदाहरण दिये हैं –

"उपमानस्याक्षेपः प्रतिषेधः उपमानाक्षेपः।
तुल्यकार्यार्थस्य नैरर्थक्यविवक्षायाम् यथा–
तस्याश्चेन्मुखमस्ति सौम्यसुभगं किं पार्वणेनेन्दुना।
... इत्यादि। उपमानस्याक्षेपतः प्रतिपत्तिरित्यपिसूत्रार्थः.।

यथा

"ऐन्द्रं धनुः पाण्डुपयोधरेण शरद् दधानार्द्रनखक्षताभम्।
प्रसादयन्ती सकलङ्कमिन्दुं, तापं रवेरभ्यधिकञ्चकार।।"

मम्मट इत्यादि परवर्ती आलङ्कारिकों के अनुसार आक्षेप के प्रथम प्रकार में प्रतीप तथा द्वितीय प्रकार में समासोक्ति नामक स्वतन्त्र अलङ्कार है।

इस प्रकार वामन के समय तक चर्चित अलङ्कारों की संख्या ५२ है। वामन ने, भामह, दण्डी इत्यादि द्वारा निरूपित २६ अलङ्कारों को अपनाया है तथा दो अलङ्कारों (वक्रोक्ति और व्याजोक्ति) की स्वयं उद्भावना की है। संभव है अनेक अलङ्कारों का अन्तर्भाव इन्हें गुणों में मान्य रहा हो। उदाहरणार्थ रसवत् अलङ्कार का अन्तर्भाव वामन के कान्तिगुण में, भाविक अलङ्कार का प्रसाद गुण में संभव है। यही कारण रहा होगा, जिससे रुय्यक को प्रसाद गुण से भाविक का भेद बताना आवश्यक लगा।

वामन द्वारा विवेचित अलङ्कार निम्न हैं –

यमक, अनुप्रास, उपमा, प्रतिवस्तु, समासोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, अपह्नुति

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूपक, श्लेष, वक्रोक्ति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, सन्देह, विरोध, विभावना, अनन्वय, उपमेयोपमा, परिवृत्ति, व्यर्थ, दीपक, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, व्याजस्तुति, . व्याजोक्ति, तुल्ययोगिता, आक्षेप, सहोक्ति, समाहित, संसृष्टि, उपमारूपक, उत्प्रेक्षावयव ।

रुद्रट–

ये भारतीय साहित्यशास्त्र के अत्यन्त प्रतिष्ठित आचार्य हैं । इनकी अमर कृति है काव्यालङ्कार । रुद्रट का समय ८५० ई० के आस पास है ।

उद्भट के पश्चात् और रुद्रट के पूर्व तक साहित्य की आलोचना पर नाट्यशास्त्र की परम्परा का पूरा प्रभाव पड़ चुका था, जिसके फलस्वरूप काव्य और नाटक का भेद समाप्त हो गया था । इन दोनों में मात्र इतना अन्तर माना जाने लगा था कि एक श्रव्य है तो दूसरा दृश्य । इसी के रस का विवेचन विशेष रूप से काव्यालोचन का भी विषय बन गया था। इसीलिए रुद्रट ने प्रधानतया अलङ्कारों का विवेचन करते हुए प्रासंगिक रूप से काव्याशास्त्र के अन्य अंगों की तथा विशेष रूप से रस विषय की मीमासां की है । इस समय ध्वनि सिद्धान्त का भी प्रस्फुटन हो रहा था किन्तु रुद्रट स्वयं अलङ्कारवादी आचार्य हैं। इन्होंने अलङ्कारों पर विस्तार से लिखा है तथा अलङ्कारों के वैज्ञानिक वर्गीकरण का आधार सर्वप्रथम इन्होंने ही उपस्थित किया एवं अलङ्कार में ही रस सौन्दर्य का भी समावेश किया है । यद्यपि वे रसयुक्त काव्य की रचना का उपदेश देते हैं [३४] तथा नवीन रस (प्रेयस्) [३५] की विवेचना करते हैं किन्तु फिर भी इन्हें डॉ. शंकरन के कथनानुसार [३६] समन्वयवादी आचार्य नहीं माना जा सकता क्योंकि रुद्रट के अनुसार काव्य का सार अलङ्कार है । [३७]

उद्भट और वामन के पश्चात् अलङ्कार चिन्तन में अधिक वैज्ञानिकता का समावेश हुआ । आचार्यों ने सजातीयता तथा विजातीयता के आधार पर अलङ्कारों का वर्गीकरण उसी प्रकार करना आरम्भ किया

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस प्रकार वैशेषिक सूत्रों में महर्षि कणाद ने पदार्थों का वर्गीकरण किया था। रुद्रट के काव्यालङ्कार में सर्वप्रथम यह वर्गीकरण उपलब्ध होता है। इन्होंने पहले तो अलङ्कारों को शब्द और अर्थ के दो भागों में बांटा, तत्पश्चात् अर्थालङ्कारों को (१) वास्तव (२) औपम्य (३) अतिशय तथा (४) श्लेष नामक चार वर्गों में विभाजित किया।

इन दोनों खण्डों और वर्गों में रुद्रट ने ६२ अलङ्कारों का विवेचन किया है, जिनमें से पूर्ववर्ती आचार्यों के २७ अलङ्कारों को ही लिया है शेष ३५ अलङ्कारों की कल्पना स्वतंत्र अलङ्कार के रुप में उन्होंने की है। इनमे से ५ अलङ्कारों का एक ही नाम से दो–दो बार परिगणन किया है, इसलिए कुछ विद्वानों के अनुसार उनके द्वारा विवेचित अलङ्कार ५७ ही हैं। इनका विवरण निम्नानुसार है [३८]

१. अमान्य–

(क) **दण्डी के** – आवृत्ति, आशीः, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, रसवत्, प्रेयस्, ऊर्जस्वी, भाविक, पर्यायोक्त, समाहित, विशेषोक्ति, हेतु, संसृष्टि

(ख) **भामह के** – उपमेयोपमा, अनन्वय, उपमारूपक, उत्प्रेक्षावयव।

(ग) **उद्भट के** – पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, प्रतिवस्तूपमा, काव्यलिंग, संकर (पृथगलङ्कार के रूप में)

(घ) **वामन की** – वक्रोक्ति, व्याजोक्ति।

(२) मान्य–

(क) **दण्डी के**– स्वभावोक्ति (जाति नाम से), उपमा, रूपक, दीपक, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति उत्प्रेक्षा, सूक्ष्म, लेश, क्रम, (यथासंख्य के नाम से) उदात्त (अवसर नाम से) अपह्नुति, श्लेष, विरोध, अप्रस्तुतप्रशंसा(अन्योक्ति नाम से) व्याजस्तुति, निदर्शना, सहोक्ति, परिवृत्ति, यमक, चित्र।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(ख) भामह के– अनुप्रास, सन्देह (संशय नाम से) ।

(ग) उद्‌भट के– दृष्टान्त ।
(वामन से कुछ नहीं)

(३) स्वकल्पित– १–२ समुच्चय, ३ भाव, ४ पर्याय, ५ विषम, ६. अनुमान, ७. परिकर, ८ परिसंख्या, ६. हेतु (नवीन), १०. कारणमाला, ११. अन्योन्य, १२–१३. उत्तर, १४. सार, १५. मीलित, १६. एकावली, १७. मत, १८. प्रतीप, १६. उभयन्यास, २०. भ्रान्तिमान, २१. प्रत्यनीक, २२–२३, पूर्व, २४. साम्य, २५. स्मरण, २६. विशेष, २७. तद्गुण २६. पिहित, २६. असंगति, ३०. व्याघात, ३१. अहेतु, ३२. अधिक, ३३. वक्रोक्ति, ३४. सहोक्ति, ३५. श्लेष (तीनों नवीन)

भोज–

भोज ने दो महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है–शृंगार–प्रकाश और सरस्वतीकण्ठाभरण। शृंगार–प्रकाश रस परक ग्रन्थ है। सरस्वती–कण्ठाभरण में काव्यशास्त्र के अन्य अङ्गों के साथ अलङ्कारों का भी विशद विवेवचन है। भोज द्वारा की गई अलङ्कार मीमांसा एक नयी परम्परा का शुभारम्भ करती है जिसमें अनेक प्राचीन परम्पराओं का समावेश भी है और नूतन उद्भावनाएं भी हैं। सरस्वती कण्ठाभरण के द्वितीय परिच्छेद में उन्होंने २४ शब्दालङ्कारों का अनेक भेदोपभेद के साथ निरूपण किया है, जिनकी सूची निम्नलिखित है–

जाति, गति, रीति, वृत्ति, छाया, मुद्रा, उक्ति, युक्ति, भणिति, गुम्फना, शय्या, पठिति, यमक, श्लेष, अनुप्रास, चित्र, वाकोवाक्य, प्रहेलिका, गूढ़, प्रश्नोत्तर, अध्येय, श्रव्य, प्रेक्ष्य, अभिनीति ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तृतीय परिच्छेद में भोज ने २४ अर्थालङ्कारों का अनेक भेदोपभेद के साथ वर्णन किया है, जिनकी सूची निम्नलिखित है–

जाति, विभावना, हेतु, अहेतु, सूक्ष्म, उत्तर, विरोध, सम्भव, अन्योन्य, परिवृत्ति, निदर्शना, भेद, समाहित, भ्रान्ति, वितर्क, मीलित, स्मृति, भाव, प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति, अभाव । इसी के चतुर्थ परिच्छेद में २४ उभयालङ्कारों की सूची इस प्रकार है –

उपमा, रूपक, साम्य, संशय, अपह्नुति, समाधि, समासोक्ति, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुतप्रशंसा, तुल्ययोगिता, लेश (दूसरे आलङ्कारिकों के अनुसार व्याज स्तुति), सहोक्ति, समुच्चय, आक्षेप, अर्थान्तरन्यांस, विशेषोक्ति, परिकर, दीपक, क्रम, पर्याय, अतिशयोक्ति, श्लेष, भाविक, संसृष्टि ।

भोज का यह ग्रन्थ, संग्रह ग्रंथ के रूप में अधिक प्रसिद्ध है । इसमें पूर्ववर्ती आचार्यों के १५०० उद्धरणों को उद्धृत किया गया है । ये उद्धरण अधिकांशतः नाट्यशास्त्र, भामह, वामन, भट्टि तथा राजशेखर आदि के ग्रन्थों से लिए गये हैं । इन्होने अलङ्कारों के तीन वर्ग किये हैं–बाह्य, आभ्यन्तर एवं उभय । बाह्य को शब्दालङ्कार आभ्यन्तर को अर्थालङ्कार एवं उभय को उभयालङ्कार या मिश्रालङ्कार कहा गया है । इन्होंने कई अलङ्कारों के अवान्तर भेदों का भी वर्णन किया है । उपमा एवं रूपक दोनों के २४–२४ भेद बताए गये है । इन्होंने आठ नवीन अलङ्कारों की उद्भावना की है । वे है छः प्रमाणलङ्कार, एवं संभव तथा वितर्क । परवर्ती आचार्यों में केवल अप्ययदीक्षित ने प्रमाणालङ्कारों का वर्णन किया है, किन्तु अन्य आचार्यों ने इन्हें स्वीकार नहीं किया । भोज ने कुछ ऐसे अलङ्कारों का भी निरूपण कर दिया है जिनमें विच्छित्ति का अभाव है और उच्चारण के भेद की तरह हैं । ऐसे अलङ्कारों में शब्दालङ्कार के अन्तर्गत स्वीकृत जाति, गति, रीति, वृत्ति, शय्या, भणिति, पठिति, अध्येय, श्रव्य, प्रेक्ष्य और अभिनव हैं ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भोज ने अलङ्कार के सम्बन्ध में जो मान्यताएं प्रकट की हैं वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं । इन्होंने अलङ्कार की तुलना में गुण को अधिक महत्व दिया है । इनके अनुसार अलङ्कृत होते हुए भी काव्य को गुण रहित नहीं होना चाहिए–

अलङ्कृतमपि श्रव्यं न काव्यं गुणवर्जितम् ।
गुणयोगस्तयोर्मुख्यो गुणालङ्कारयोगयोः ।। ५/५६ ।।

सरस्वतीकण्ठाभरण।

जिस प्रकार ज्योत्स्ना से चन्द्रमा तथा लावण्य से सुन्दरी सुशोभित होती है उसी प्रकार काव्य भी अनुप्रासादि अलङ्कार के द्वारा मनोहर बनता है । इस प्रकार के कथन के द्वारा भोज ने अलङ्कारों को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है ।

यथा ज्योत्स्ना चन्द्रमसं यथा लावण्यमङ्नाम् ।
अनुप्रासस्तथा काव्यमलङ्कर्तुमयं क्षमः ।। २/७६ ।।

इनकी मान्यता है कि उपमा आदि अलङ्कारों के अभाव में भी केवल अनुप्रास से ही काव्य का सौन्दर्य पूर्ण हो जाता है ।

उपमादिवियुक्तापि राजते काव्यपद्धतिः ।
यद्यनुप्रासलेशोऽपि हन्त तत्र निवेश्यते ।। २/१०६ ।। स० क०

इस प्रकार भोजराज के समय तक अलङ्कारों की संख्या ११५ हो जाती है । जिनमें ८७ अलङ्कार प्राचीन आचार्यों के अपनाए गये हैं तथा २८ इनके द्वारा उद्भावित हैं ।

मम्मट–

आचार्य मम्मट का काव्य–प्रकाश संस्कृत साहित्यशास्त्र का गौरव एवं समन्वयात्मक ग्रंथ है । इसमें पूर्ववर्ती आचार्यों की मान्यताओं का खण्डन–मण्डन करके उनकी समीक्षा की गई है तथा काव्यशास्त्र के एक प्रौढ़ सुगठित एवं सामंजस्यपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है । इन्होंने भरत, आनन्दवर्धन, उद्भट, वामन, रूद्रट एवं अभिनवगुप्त के ग्रन्थों से प्रेरणा ले कर अपनी मान्यता को व्यवस्थित किया है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काव्यप्रकाश के नवम एवं दशम उल्लास में अलङ्कारों का विस्तृत विवेचन किया गया है। मम्मट ने छः शब्दालङ्कारों तथा ६१ अर्थालङ्कारों का निरूपण किया है।

मम्मट ने भी भोज की भांति अलङ्कारों की त्रिविधता को स्वीकार किया है –

इति प्रतिपादिता शब्दार्थोभयगतत्त्वेन
त्रैविध्यजुषोलङ्काराः । –का०प्र० झलकीकर, पृ० ७६६

यह एक अलग बात है कि काव्यप्रकाशकार ने उभयालङ्कारों का सामस्त्येन एक जगह प्रतिपादन नहीं किया है। इनके द्वारा निरूपित शब्दालङ्कार निम्नलिखित हैं –**वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष, पुनरुक्तवदाभास एवं चित्र**। भोज द्वारा बढ़ाये गये २४ शब्दालङ्कारों का मम्मट ने अनुप्रास यमक एवं चित्र के अन्तर्गत समावेश कर दिया है। अलङ्कार निरूपण में ये आचार्य रुद्रट से प्रभावित हैं। उद्भट के द्वारा निरूपित सभी अलङ्कारों को मम्मट ने अपना लिया है। रुद्रट द्वारा स्वीकृत १५ अलङ्कारों भाव, अवसर, मत, उत्तर, उभयन्यास, पूर्व साम्य, पिहित, अहेतु एवं श्लेष के भेदों के अतिरिक्त अविशेष, उक्ति, व्याज, असंभव, अवयव एवं तत्त्व को इन्होंने नहीं अपनाया है। वृत्त्यनुप्रास, विनोक्ति, सम, सामान्य एवं अतद्गुण ये पांच अलङ्कार मम्मट द्वारा बढ़ाये गये हैं। इनका विवेचन सारगर्भित संक्षिप्त एवं अत्यन्त प्रौढ़ है। इन्होंने अलङ्कारों का वर्गीकरण नहीं किया है।

मम्मट ने अलङ्कार को काव्य का आवश्यक अंग नहीं माना है। इनके द्वारा की गई काव्य की परिभाषा में आये हुए 'अनलङ्कृती पुनः क्वापि' शब्द यही द्योतित करते हैं। इन्होंने अलङ्कारों को काव्य का अनित्य धर्म माना है तथा गुण को काव्य का नित्य धर्म माना है। इनके अनुसार गुण काव्य के स्वरूपाधायक धर्म हैं तथा अलङ्कार काव्य के उत्कर्षाधायक धर्म हैं।

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् ।
CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
हारादिवलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ॥ ८/६७ ॥ का० प्र०

मम्मट ने इन अलङ्कारों को निम्नलिखित वर्गों में निम्नांकित क्रम से विभक्त करके निरूपित किया–

१. शब्दालङ्कार वर्ग– वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष, चित्र, पुनरुक्तवदाभास।

२. अर्थालङ्कार वर्ग– उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, उत्प्रेक्षा, सन्देह, रूपक, अपह्नुति, श्लेष, समासोक्ति, निदर्शना, अप्रस्तुतप्रशंसा, अतिशयोक्ति, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, दीपक, मालादीपक, तुल्ययोगिता, व्यतिरेक, आक्षेप, विभावना, विशेषोक्ति, यथासंख्य, अर्थान्तरन्यास, विरोध, स्वभावोक्ति, व्याजस्तुति, सहोक्ति, विनोक्ति, परिवृत्ति, भाविक, काव्यलिंग, पर्यायोक्त, उदात्त, समुच्चय, पर्याय, अनुमान, परिकर, व्याजोक्ति, परिसंख्या, कारणमाला, अन्योन्य, उत्तर, सूक्ष्म, सार, असंगति, समाधि, सम, विषम, अधिक, प्रत्यनीक, मीलित, एकावली, स्मरण, भ्रान्तिमान, प्रतीप, सामान्य, विशेष, तद्गुण, अतद्गुण, व्याघात, संसृष्टि, संकर

३. उभयालङ्कार वर्ग – पुनरुक्तवदाभास।

उपरोक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि मम्मट ने रुद्रट के वास्तव, औपम्य अतिशय और श्लेष इन वर्गों तथा इनके क्रम को महत्त्व नहीं दिया केवल सादृश्य मूलक अलङ्कारों का भी परिगणन एक साथ नहीं किया। उनमें गिने जाने योग्य स्मरण और भ्रान्तिमान अलङ्कार को उल्लास के अन्त में याद किया है।

रुय्यक–

भरत से लेकर मम्मट तक अलङ्कारों का जितना भी विवेचन हुआ था, रुय्यक ने अपने ग्रन्थ में उन सबको समाहित कर लिया है तथा उसका परिष्कार किया है। संस्कृत अलङ्कारशास्त्र के इतिहास पर दृष्टिपात

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने से हम पाते हैं कि अलङ्कारशास्त्र की पूरी परम्परा में केवल तीन ही ग्रन्थ ऐसे हैं जो विशुद्ध रूप से मात्र अलङ्कारों का ही विवेचन प्रस्तुत करते हैं, वे हैं– उद्भट का काव्यालङ्कारसारसंग्रह, रुय्यक का अलङ्कार–सर्वस्व तथा अप्पयदीक्षित की चित्र–मीमांसा। इन तीनों में अलङ्कार सर्वस्व का महत्व इसलिए सर्वातिशायी है कि उसके पूर्व ध्वनि सिद्धान्त का उद्भव एवं चूड़ान्त विकास हो चुका था, जिसके आधार पर अलङ्कारों के सैद्धान्तिक विवेचन में रुय्यक को एक नयी दिशा मिली। इनके पहले वाग्देवता के अवतार कहे जाने वाले अलङ्कारसरणि के व्यवस्थापक आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में अलङ्कारों का जो अति विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया था वह निश्चित रूप से पाण्डित्यपूर्ण अधिक था सहजग्राह्य कम।

सर्वस्व के सूत्रों में केवल अलङ्कारों का लक्षण ही नहीं है अपितु उनके वर्गीकरण एवं निरूपण क्रम को सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया गया है। रुय्यक की मौलिक देन है –अलङ्कारों के सूक्ष्म भेद के निरूपण द्वारा उनके निष्कृष्ट लक्षण की प्रस्तुति। इसके अतिरिक्त परिणाम, उल्लेख, विचित्र, विकल्प, भावोदय, भावसंधि तथा भावशबलता इन सात अलङ्कारों की उद्भावना रुय्यक ने की है।

सर्वस्वकार का अलङ्कार विवेचन गागर में सागर भरने जैसा सारवत् तो है ही विश्वतोमुख भी है, जिसका प्रस्फुटन इसकी टीकाओं में हुआ है। प्रस्तुत प्रबन्ध में यथास्थान इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है। रुय्यक ने ६ शब्दालङ्कारों एवं ७५ अर्थालङ्कारों का विवेचन किया है। इन्होने अर्थालङ्कारों को पांच वर्गों में विभाजित किया है सादृश्य वर्ग, विरोध वर्ग, श्रृंखला वर्ग, न्याय मूलक वर्ग (इसके तीन वर्ग हैं–तर्क–न्याय मूलक, वाक्य–न्याय मूलक, लोक–न्याय मूल) तथा गूढ़ार्थ प्रतीति मूलक। इनके भी कई अवान्तर भेद हैं। यहां रुय्यक द्वारा विवेचित अलङ्कारों की तालिका दी जा रही है –

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(१) शुद्ध खण्ड–

वर्ग (१) शब्दालङ्कार वर्ग या पौनरुक्त्य वर्ग–

पौनरुक्त्यविच्छित्ति– (१) अर्थपौनरुक्त्य–पुनरुक्तवदाभास
(२) व्यञ्जन पौनरुक्त्य–छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास
(३) स्वर व्यंजन समुदाय पौन०–यमक
(४) शब्दार्थोभय पौन०–लाटानुप्रास
(५) स्थानविशेषश्लिष्टवर्ण पौन०–चित्र

वर्ग (२) अर्थालङ्कार वर्ग–

(क) सादृश्य विच्छित्ति

(अ) भेदाभेदतुल्यतामूलक–उपमा, अनन्वय।
(ब) अभेदप्राधान्यमूलक – उपमेयोपमा, स्मरण।
(1) आरोपाश्रित–रूपक परिणाम सन्देह, भ्रान्तिमान, उल्लेख और अपह्नुति ।
(2) अध्यवसायाश्रित–उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति ।
(स) गम्यौपम्यमूलक– तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त व निदर्शना ।
(द) भेदप्राधान्यमूलक–व्यतिरेक, सहोक्ति ।

(ख) विशेषण विच्छित्ति–

(अ) केवल विशेषण-विच्छित्ति–समासोक्ति, परिकर ।
(ब) सविशेष्य विशेषणविच्छित्ति–श्लेष ।

(ग) गम्यार्थताविच्छित्ति– पर्यायोक्त, व्याजस्तुति, आक्षेप ।

(घ) विरोध विच्छित्ति –

(अ) शुद्ध विरोध – विरोध ।
(ब) कार्यकारण भावाश्रित विरोध मूलक – विभावना, अतिशयोक्ति (२) असंगति, विषम, विचित्र व्याघात ।
(स) आश्रयाश्रयित्वमूलक– अधिक, विशेष ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(द) व्यतिहार मूलक – अन्योन्य ।

(च) शृङ्खला विच्छित्ति – कारणमाला एकावली, मालादीपक, सार ।

(छ) न्याय विच्छित्ति – काव्यलिङ्ग, अनुमान, यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति ।

(1) तर्कन्याय मूलक – परिसंख्या, अर्थापत्ति, विकल्प ।

(2) वाक्यन्याय मूलक – समुच्चय, समाधि ।

(3) लोक-न्याय मूलक – प्रत्यनीक, प्रतीप, मीलित, तद्गुण, अतद्गुण, उत्तर ।

(ज) गूढ़ार्थपरताविच्छित्ति –

(1) शुद्ध – सूक्ष्म, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति ।

(2) स्फुटार्थता – भाविक ।

(3) उदात्तता – उदात्त ।

(4) चित्तवृत्त्याश्रित – रसवत्, प्रेय, उर्जस्वि, समाहित, भावोदय, भावसंधि, भावशबलता।

(२) मिश्र खण्ड–

(1) संसृष्टि–

(क) शब्दलङ्कार-संसृष्टि ।

(ख) अर्थालङ्कार-संसृष्टि ।

(ग) उभयालङ्कार-संसृष्टि ।

(2) संकर

रुय्यक के परवर्ती आलङ्कारिक हैं शोभाकर मित्र । इनका अलङ्कार विवेचन भी प्रौढ़ है । अलङ्कार रत्नाकर की रचना सूत्र शैली में हुई है और ग्रन्थकार ने स्वयं ही सूत्रों पर वृत्तियां लिखी हैं एवं उदाहरण के रूप में अन्य कवियों के श्लोक उद्धृत किए हैं । स्थान–स्थान पर इन्होंने अपने मन्तव्य का सार परिकर श्लोकों के रूप में दिया है जिससे विषय में अधिक स्पष्टता आ गई है । इस ग्रंथ की रचना अलङ्कार

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वस्व की शैली में हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि शोभाकर अलङ्कार विषयक ग्रंथ लिखने के लिए सर्वस्वकार से होड़ कर रहे हैं और प्रौढ़ सूत्र शैली का निबन्धन कर उनसे आगे बढ़ जाना चाहते हैं। अलङ्कार रत्नाकर में १११ अलङ्कारों का निरूपण किया गया है जिनमें ३६ नवीन अलङ्कार हैं। वे हैं– अचिन्त्य, अतिशय, अनादर, उदाहरण, अनुकृति, अवरोह, अशक्य, आदर, आपत्ति, उद्भेद, उद्रेक, असम, क्रियातिपत्ति, गूढ़, तन्त्र, तुल्य, निश्चय, परभाग, प्रतिप्रसव, प्रतिमा, प्रत्यादेश, प्रत्यूह, प्रसंग, वर्धमानक, व्याप्ति, व्यासंग संदेहाभास, सजातीयव्यतिरेक, विकल्पाभास, विध्याभास, विनोद, विपर्यय, विवेक, वैधर्म्य, व्यत्यास और समता।

हेमचन्द्र– ये उद्भट वैयाकरण होने के साथ–साथ आलङ्कारिक भी थे। अलङ्कारशास्त्र संबंधी इनका ग्रन्थ है काव्यानुशासन जिसकी रचना सूत्र शैली में हुई हैं। इस ग्रन्थ पर इन्होंने स्वयं ही वृत्ति एवं टीका लिखी है। वृत्ति को 'अलङ्कार चूड़ामणि' एवं टीका को 'विवेक' नाम दिया है। इस ग्रन्थ में मौलिकता कम एवं संग्रह की प्रवृत्ति अधिक दृष्टिगोचर होती है। इनका ग्रंथ ८ अध्यायों में विभक्त है जिसके पंचम एवं षष्ठ अध्याय में अलङ्कारों की चर्चा की गई है। पंचम अध्याय में छह शब्दालङ्कारों का निरूपण किया गया है, वे हैं –अनुप्रास, यमक, चित्र, श्लेष, वक्रोक्ति एवं पुनरुक्तवदाभास। षष्ठ अध्याय में केवल २६ अर्थालङ्कारों का विवेचन किया गया है। इन्होंने कुछ अलङ्कारों में समान विशेषता वाले अन्य अलङ्कारों का भी समावेश कर दिया है जैसे संकर में संसृष्टि का, दीपक में तुल्ययोगिता का, परावृत्ति के अन्तर्गत पर्याय एवं परिवृत्ति का तथा निदर्शना अलङ्कार में प्रतिवस्तूपमा और दृष्टान्त का अन्तर्भाव किया गया है। उपमेयोपमा एवं अनन्वय का वर्णन उपमा के अन्तर्गत किया गया है इस प्रकार के संक्षेपीकरण का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है।

जयदेव– जयदेव का चन्द्रालोक अलङ्कार शास्त्र का अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। इसमें १० मयूख हैं जिसमें ३५० अनुष्टुप छन्दों में साहित्यशास्त्र के सभी अंगों का सहज ग्राह्य विवेचन किया गया है। इसके पंचम मयूख में अलङ्कारों का निरूपण है। इसकी प्रमुख विशेषता यह

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है कि एक ही श्लोक में अलङ्कारों के लक्षण एवं उदाहरण का समावेश कर दिया गया है उदाहरण के लिए रूपक अलङ्कार का लक्षण उदाहरण द्रष्टव्य है–

यत्रोपमानचित्रेण सर्वथाप्युपरज्यते ।
उपमेयमयी भित्तिस्तत्र रूपकमिष्यते ।।

इन्होंने अलङ्कारों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि की है । चन्द्रालोक में ८ शब्दालङ्कार एवं ९० अर्थालङ्कारों का विवेचन किया गया है । इनके द्वारा निरूपित शब्दालङ्कार हैं– अनुप्रास, पुनरुक्तवदाभास, यमक और चित्र । अनुप्रास सर्वथा नवीन अलङ्कार हैं । इन्होंने १५ नवीन अर्थालङ्कारों का विवेचन किया है, वे हैं– उन्मीलित, प्रौढ़ोक्ति, संभावना, प्रहर्षण, विषादन, आवृत्तिदीपक, विकस्वर, असंभव, उल्लास, पूर्वरूप, अनुगुण, अवज्ञा, पिहित, भाविकच्छवि एवं अत्युक्ति । रसवत् प्रेय आदि सात अलङ्कारों के प्रति उन्होंने अपना विरोध प्रकट किया है । इसी प्रकार संकर एवं संसृष्टि को भी वे पृथक् अलङ्कार नहीं मानते–

शुद्धिरेकप्रधानत्वं तथा संसृष्टिसंकरौ ।
एतेषामेव विन्यासान्नालङ्कारान्तराण्यमी ।।
चन्द्रा० ५–११९

उन्होंने मम्मट के मत –अनलङ्कृती पुनः क्वापि' का खण्डन करते हुए अलङ्कारों के महत्त्व पर जोर दिया है । इनके अनुसार काव्य में अलङ्कारों की स्थिति उसी प्रकार अनिवार्य है जिस प्रकार अग्नि में उष्णता की–

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती ।। १/८ ।। चन्द्रा०

विद्याधर–

इन्होंने एकावली नामक ग्रंथ में अलङ्कारों का विवेचन किया है। इस ग्रंथ के तीन विभाग हैं– कारिका, वृत्ति एवं उदाहरण, जो तीनों ही विद्याधर के ही द्वारा प्रणीत है । उत्कल के राजा नरसिंह देव की स्तुति

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में इस ग्रंथ के उदाहरण प्रणीत है । इसमें आठ उन्मेष हैं जिनमें काव्य के स्वरूप, वृत्ति, ध्वनिभेद, गुणीभूत व्यंग्य, गुण एवं रीति, शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार का विवेचन है । विद्याधर पर मम्मट एवं रुय्यक का बहुत अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अलङ्कारों के वर्गीकरण में इन्होंने रुय्यक का अनुसरण किया है । अलङ्कारों के विवेचन में भी ये रुय्यक के ऋणी हैं इन्होंने परिणाम, उल्लेख, विचित्र एवं विकल्प अलङ्कारों का लक्षण रुय्यक के ही शब्दों में किया है। एकावली पर मल्लिनाथ की तरला टीका बहुत लोकप्रिय हुई है। इनके द्वारा विवेचित अलङ्कारों की तालिका ग्रंथगौरव के भय से नहीं दी जा रही है । ३६

विद्यानाथ–

विद्याधर की भांति इन्होंने भी अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में प्रतापरुद्रयशोभूषण नामक ग्रंथ के सारे उदाहरणों की रचना की है । ये आन्ध्रप्रदेश के काकतीय वंश के राजा प्रतापरुद्रदेव के आश्रित थे । ग्रन्थकार ने स्वयं यह संकेत किया है कि उसने प्रतापरुद्रदेव के गुण–वर्णन के उद्देश्य से इस ग्रंथ की रचना की है–

प्रतापरुद्रदेवस्य गुणानाश्रित्य निर्मितः ।
अलङ्कारप्रबन्धोऽयं सन्तः कर्णोत्सवोऽस्तु वः ।।

प्रतापरुद्र० १/६

इस ग्रंथ में नौ प्रकरणों में नायक, काव्य, नाटक, रस, दोष, गुण शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार एवं मिश्रालङ्कार का विवेचन किया गया है। इन्होंने रुय्यक एवं मम्मट से पर्याप्त सामग्री ली है। परिणाम, उल्लेख, विचित्र एवं विकल्प नामक अलङ्कारों का विवेचन रुय्यक के ही आधार पर किया गया है, काव्यप्रकाश में इन चार अलङ्कारों का उल्लेख नहीं है । इनके ग्रंथ पर कुमारस्वामी ने 'रत्नापण' नामक टीका लिखी जो बहुत प्रसिद्ध हुई। विद्यानाथ ने ६ शब्दालङ्कारों एवं ६६ अर्थालङ्कारों का निरूपण किया है तथा मिश्रालङ्कारों में संकर तथा संसृष्टि का विवेचन किया है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विश्वनाथ (महापात्र)–

इनका ग्रंथ साहित्य–दर्पण है, जो काव्यशास्त्रीय विषयों के विस्तृत एवं सरल भाषा में प्रतिपादन के कारण लोकप्रिय है । इस ग्रंथ में विषय का सहज ग्राह्य विवेचन तो है ही साथ ही सुन्दर एवं मनोरम उदाहरणों की प्रचुरता है, जिसके कारण यह सहृदय–हृदय–हार बना हुआ है । इसमें अलङ्कारशास्त्र के अनेक अंगों के अतिरिक्त नाट्यशास्त्र का भी विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है ।

साहित्य–दर्पण के दशम् परिच्छेद में अलङ्कारों का निरूपण किया गया है। जिसमें आठ शब्दाङ्लकार ७० अर्थालङ्कार ७ रसवदादि अलङ्कार एवं दो मिश्रालङ्कार हैं । शब्दालङ्कारों में– पुनरुक्तवदाभास, अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, भाषासम, चित्र एवं प्रहेलिका का विवेचन किया गया है । इन्होंने सर्वप्रथम भाषासूत्र नामक अलङ्कार का निरूपण किया है, जिसमें कई भाषाओं के शब्दों का मिश्रण होता है। विश्वनाथ का अलङ्कार विवेचन, अलङ्कार सर्वस्व एवं काव्यप्रकाश से बहुत प्रभावित है, तथापि अनेक स्थानों पर इनकी मौलिकता दृष्टिगोचर होती है ।

अप्पय दीक्षित–

संस्कृत वाङ्मय के इतिहास में अप्पयदीक्षित बहुमुखी प्रतिभा के धनी माने जाते हैं । काव्यशास्त्र से संबंधित तीन ग्रंथों की रचना इन्होंने की है–वृत्ति वार्तिक, कुवलयानन्द, चित्रमीमांसा । वृत्तिवार्तिक में दो परिच्छेद हैं, जिनमें शब्द की अभिधा एवं लक्षणा शक्तियों का विवेचन किया गया है । कुवलयानन्द अलङ्कारशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिए बड़ा उपयोगी ग्रंथ है, इसमें प्रायः चन्द्रालोक से परिभाषाएं और उदाहरण लिए गए हैं । उन्हीं के शब्दों में –

येषां चन्द्रालोके दृश्यन्ते लक्ष्यलक्षणश्लोकाः ।
प्रायस्त एव तेषामितरेषां त्वभिनवा विरच्यन्ते ।। १/५ ।।

–कुवलयानन्द ।

CC-0.Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अप्पयदीक्षित ने इसकी रचना राजा वेंकटपति की प्रेरणा से की–

"अमुं कुवलयानंदमकरोदप्पयदीक्षितः ।
नियोगाद्वेंकटपतेर्निरूपाधिकृपानिधेः ।।

कुवलयानपद में इन्होंने अपना मन्तव्य देते हुए अन्यों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। चन्द्रलोक में १०० अलङ्कारों का निरूपण हुआ था जिसमें इन्होंने १७ अलङ्कार और बढ़ाये हैं। वे अलङ्कार हैं– प्रस्तुतांकुर, अल्प, कारक दीपक, मिथ्याध्यवसिति, ललित, अनुज्ञा, मुद्रा, रत्नावली, विशेषक, गूढ़ोक्ति, विवृतोक्ति, युक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, निरुक्ति, प्रतिषेध एवं विधि ।

इनका तीसरा ग्रंथ चित्र–मीमांसा अधिक महत्वपूर्ण है। इसके प्रारम्भ में अलङ्कार–लक्षणों की कारिकाएं दी गई हैं तथा उससे संबंधित अन्य आचार्यों के मतों की चर्चा का खण्डन भी किया गया है । इसमें दीक्षित ने ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य, और चित्रकाव्य इन तीन भेदों का संक्षेप में विवेचन किया है । चूंकि शब्द चित्र रमणीय नहीं होते हैं इसलिए इन्होंने केवल अर्थ चित्रों को ही ग्रहण किया है । इन्होंने उपमा को २२ अलङ्कारों का आधार बताया है । संस्कृत जगत् का यह दुर्भाग्य है कि चित्र–मीमांसा का मुद्रित संस्करण अतिशयोक्ति से आगे अनुपलब्ध है । चित्र मीमांसा में उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, स्मरण, रूपक, परिणाम ससन्देह, भ्रान्तिमान, उल्लेख, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति इन बारह अलङ्कारों का विवेचन हुआ है । इस ग्रंथ के अंत में आये श्लोक में यह लिखा है कि यह बीच में ही खण्डित हो गया है, वह श्लोक है –

अप्यर्धं चित्रमीमांसा न मुदे कस्य मांसला ।
अनूरुरिव घर्मांशोरर्धेन्दुरिव धूर्जटेः ।।

अर्थात् जिस प्रकार अनूरुं सारथी अरुण से सूर्य को तथा अर्ध–चन्द्र से शिव को सुख मिलता है उसी प्रकार आधी ही चित्रमीमांसा किसे आनन्द नहीं देती ।

कुछ पाण्डुलिपियों में एक अतिरिक्त पद्य भी आया है जिसमें प्रतिपाद्य अलङ्कारों की सूची दी गई है ।[१०]

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डितराज जगन्नाथ–

पण्डितराजजगन्नाथ काव्यशास्त्र पर गम्भीर एवं प्रौढ़ ग्रन्थ लिखने वाले अन्तिम आचार्य हैं। इनके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि ये सर्वश्रेष्ठ आचार्य हैं। काव्यशास्त्र पर इनकी अमर कृति है – 'रसगंगाधर', जो एक प्रामाणिक ग्रंथ है। संस्कृत साहित्यशास्त्र के क्षेत्र में ध्वन्यालोक और काव्यप्रकाश के पश्चात् रसगंगाधर का ही विशेष स्थान है। पण्डितराज यद्यपि परवर्ती ग्रन्थकार हैं तथापि प्राचीन संस्कृत पर उनकी पकड़ अद्भुत है। उन्होंने स्वयं कहा है –

निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं
काव्यम् मयात्र निहितं न परस्य किंचित्।
किं सेव्यते सुमनसां मनसापि गन्धः
कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण ।।

उनके ग्रंथ का अध्ययन करने पर उपरोक्त श्लोक में अत्युक्ति नहीं प्रतीत होती है। उनके श्लोक सरल और प्रवाहमयी शैली में लिखे गये हैं, जिनसे उनकी कवि प्रतिभा झलकती है। वे सर्वप्रथम निरूप्य विषय की परिभाषा देते हैं, तत्पश्चात् उसका विवेचन करते हैं और स्वनिर्मित उदाहरणों द्वारा उसको स्पष्ट करते हैं। फिर अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों की समीक्षा करते हैं। इनका गद्य स्पष्ट, सशक्त और प्रवाहमय है। उन्होने लब्धप्रतिष्ठ प्राचीन आचार्यों के मतों की भी यथावसर आलोचना की है तथा अपने स्वतन्त्र विचार रखे हैं। इन्होंने कई स्थानों पर मम्मट, रुय्यक, अप्पयदीक्षित आदि आचार्यों के अलङ्कार लक्षणों एवं उदाहरणों में दोष दिखला कर उनका स्वतन्त्र रूपसे विश्लेषण–विवेचन प्रस्तुत किया है। इन्होने अलङ्कारों का लक्षण अत्यन्त प्रौढ़ तथा नव्य न्याय शैली के गद्य में दिया है। रसगंगाधर में उपमा से उत्तर तक ७० अलङ्कारों की मीमांसा की गई है। इन्होंने शब्दालङ्कारों को छोड़ दिया है। अलङ्कारों का क्रम रुय्यक के अनुसार है। इन्होंने कुछ ऐसे अलङ्कारों का निरूपण भी किया है जो अलङ्कार–सर्वस्व तथा काव्यप्रकाश में नही हैं, किन्तु चन्द्रालोक में मिलते हैं। इन्होंने शोभाकर मित्र द्वारा निरुपित असम एवं उदाहरण

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नामक अलङ्कारों को भी अपनाया है। तिरस्कार नामक अलङ्कार की उद्भावना पण्डितराज के द्वारा की गई है। इन्होंने कुवलयानन्द के मिथ्याध्यवसिति के ही समान सत्याध्यवसिति की भी कल्पना की है।

जगन्नाथ ने शब्द–शक्तियों के दृष्टिकोण से अलङ्कारों का विवेचन प्रस्तुत करके साहित्यशास्त्र में नूतन धारा प्रवाहित की है। शब्द–शक्तियों के ही सन्दर्भ में अलङ्कारों का विवेचन किया गया है। उदाहरणस्वरूप लक्षणा शक्ति के आधार पर रूपक अलङ्कार का निरूपण किया है। उपमा के प्रसंग में ये शब्दबोध की भी चर्चा करते हैं। ये सब तथ्य पण्डिराज के प्रकाण्ड पाण्डित्य एवं विलक्षण प्रतिभा के द्योतक हैं। पण्डितराज जगन्नाथ का साहित्य–रचनाकाल् सन् १६४१ ई० से १६६५ ई० तक है।

(ख) रुय्यक का देश–काल एवं व्यक्तित्व

भारतीय वाङ्मय की श्रीवृद्धि (समृद्धि) में काश्मीर का बहुत बड़ा योगदान है। साहित्यशास्त्र के अनेक सम्प्रदाय; छन्द, ज्योतिष, व्याकरण एवं अनेक दर्शनों का उद्भव अथवा विकास भारत के उस भूभाग में हुआ है। उसी भूमि से राजानक रुय्यक का अविर्भाव ऐसे काल खण्ड में हुआ था, जो साहित्य–रचना एवं (साहित्यिक) आलोचना का सर्वोत्तम समय माना जाता है।

अधिकतर भारतीय मनीषियों ने अपने संबंध में लिखने में संकोच किया है। उनके परवर्ती विद्वानों, कवियों या टीकाकारों से जो कुछ ज्ञात होता है वह प्रशंसापरक, कवित्वपूर्ण तथा अपर्याप्त है।

रुय्यक एवं रुचक इन दो नामों को तथा अलङ्कारसर्वस्व के कृतित्व को लेकर विद्वानों में मतभेद है। डॉ. पी० वी० काणे, डॉ. एस० के० डे, डॉ. वी० राधवन्, सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी, डॉ. एस० एस० जानकी तथा डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी ने इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अलङ्कारसर्वस्व के त्रिवेन्द्रम संस्करण में प्रस्तुत ग्रन्थ का कर्त्ता मङ्खुक को बताया गया है।[४१] डॉ. रेवा प्रसाद द्विवेदी का यह मन्तव्य है कि सूत्र (अलङ्कारसूत्र) के रचयिता रुय्यक हैं तथा वृत्ति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के मंख । शेष सभी विद्वानों ने सूत्रकार एवं वृत्तिकार को अभिन्न माना है । उसी सरणि पर रुय्यक के व्यक्तित्व एवं प्रकृत ग्रन्थ के कृतित्व पर यहाँ निश्च–प्रच रूप से कुछ कहा जा रहा है ।

रुय्यक ने काव्यप्रकाश पर एक टीका भी लिखी है –'काव्यप्रकाशसंकेत'। इस टीका के द्वितीय प्रारम्भ पद्य में इन्होंने अपना नाम रुचक लिखा है ।[४२] इस टीका की पुष्पिकाओं में भी 'रुचक' नाम ही लिखा है ।[४३] अलङ्कारसर्वस्व की आदर्श पुस्तकों की कुछ पुष्पिकाओं में यही नाम मिलता है । श्री विद्या चक्रवर्ती ने रुचक नाम ही दिया है ।[४४] परवर्ती अनेक टीकाकारों एवं अलङ्कारशास्त्र के आचार्यों ने रुचक नाम से ही इनका उल्लेख किया है जिनमें कुमारस्वामी, [४५] अप्पयदीक्षित,[४६] राघवभट्ट, [४७] रत्नकण्ठ [४८] आदि प्रमुख हैं । अलङ्कारसर्वस्व तथा व्यक्तिविवेकव्याख्यान आदि की पुष्पिकाओं में ग्रन्थकार के रुय्यक एवं रुचक ये दोनों नाम मिलते हैं । सहृदयलीला की पुष्पिका इस संदर्भ में दर्शनीय है ।

कृतिः श्रीविपश्चिद्वरराजानकतिलकात्मजश्रीमदालंकारिकसमाजाग्रगण्य–श्रीराजानकरुय्यकस्य राजानकरुचकापरनाम्नोऽलङ्कारसर्वस्वकृतः ।[४९]

इन्हीं कारणों से अलङ्कार सर्वस्वकार के रुय्यक एवं रुचक दोनों नाम माने गये हैं । श्री कण्ठचरित के कर्ता तथा सर्वस्वकार के शिष्य मंखक ने इनका उल्लेख रुय्यक नाम से ही किया है । रुचक संस्कृत शब्द है एवं रुय्यक देशी । रुचक शब्द का अर्थ अशर्फी होता है । संभव है रुय्यक इनका लोक नाम रहा हो एवं रुचक साहित्यिक । किन्तु ये साहित्य जगत में रुय्यक नाम से ही प्रसिद्ध हैं । प्रस्तुत प्रबन्ध में इसी नाम से इनका उल्लेख किया जायेगा ।

रुय्यक का जन्म काश्मीर के एक ऐसे परिवार में हुआ था जहां सरस्वती की उपासना पीढ़ियों से होती आ रही थी । इस परिवार में शास्त्रों के अध्ययन–अध्यापन की परम्परा थी । ये राजानक तिलक के पुत्र थे, जिन्होंने काव्यालङ्कारसंग्रह पर उद्भटविवेक या उद्भट विचार नाम से सारगर्भित टीका लिखी थी । रुय्यक ने अपने काव्यप्रकाश–संकेत में कहा

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है कि इन्होंने श्रीराजानक तिलक से अलङ्कारों का मर्म जाना था।[५०] इस प्रकार वे इनके जनक भी थे और गुरु भी। अलङ्कार सर्वस्व में अनेक स्थलों पर रुय्यक ने अपने पिता के मत का अनुसरण किया है।[५१]

मंखक ने श्रीकण्ठचरित महाकाव्य में अपने गुरु रुय्यक पर कुछ प्रकाश डाला है। उन श्लोकों को उद्धृत करना समुचित प्रतीत होता है–

व्याख्यासु यस्य वदनं रदनांशुभिरीक्ष्यते ।
आकर्षदिव वाग्देव्या धौतक्षौमपटाञ्चलम् ।।
अर्पयन् कमपि स्पंदं धाम्नः सारस्वतस्य भूः ।
स एव सर्वशास्त्राणां साकारमिव जीवितम् ।।
विवृतीर्यो लिखत्यात्तलेखन्येकांगुलीतलः ।
ग्रन्थेभ्योऽर्थस्य विश्रान्त्यै सूत्रिकामर्पयन्निव ।।
यत्कृतिष्ववधानेन मूर्धा कस्य न वीप्सया ।
सारस्वतरसावर्तवलनेनेव चेष्टते ।।
तं श्रीरुय्यकमालोक्य स प्रियं गुरुमग्रहीत् ।
सौहार्दप्रश्रयरसस्रोतस्सम्भेदमज्जनम् ।।

श्री कण्ठचरित , २५/२६–३०

ऊपर उद्धृत श्लोकों से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि रुय्यक एक अध्यापक, विद्वान, व्याख्याकार एवं साहित्यकार थे। चिरन्तन आलङ्कारिकसमाजाग्रगण्य, सभी शास्त्रों के साकार जीवित इत्यादि विशेषणों से इनकी विद्वत्ता तथा प्रसिद्धि का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है।

समय–

रुय्यक के समय को लेकर कोई विवाद नहीं है, इसका कारण यह है कि उनके समय के काश्मीर–साहित्य के इतिहास का काल-निर्णय पूर्णतः हो चुका है। बूल्हर के अनुसार विक्रमांकदेवचरित का रचना–काल १०८५ ई० है तथा काव्यप्रकाश का ११०० ई० के लगभग। रुय्यक के

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अलङ्कार सर्वस्व में विक्रमांकदेवचरित से उद्धरण लिये गये हैं । काव्यप्रकाश पर इन्होंने संकेत टीका लिखी है तथा सर्वस्व में भी उसकी अनेक बार चर्चा आयी है । काश्मीर के राजा सुस्सल तथा जयसिंह के दरबार में अलङ्कार अथवा लंकक, मन्त्री थे– जो मंखक के बड़े भाई थे ।[५२] मंखक ने भी जयसिंह के साम–दण्ड मन्त्री के रूप में कार्य किया था । इसी (जयसिंह के समय ११२८–११५० के) आधार पर बूल्हर ने श्रीकण्ठचरित का रचना काल ११३५ से ११४५ ई० के बीच माना है । [५३] अलङ्कारसर्वस्व में श्रीकण्ठचरित के ५ श्लोक मिलते हैं, जो रुय्यक अथवा मंखक में से किसी एक द्वारा उद्धृत किये गये है । माणिक्यचन्द्र के काव्यप्रकाश–संकेत में (जिसका रचनाकाल ११५८–६० है) कई स्थलों पर अलङ्कारसर्वस्व का उल्लेख हुआ है । [५४] अतएव अलङ्कारसर्वस्व का रचनाकाल ११३५–११५० ई० के बीच माना जाता है । यह ग्रन्थ रुय्यक के प्रौढ़ावस्था की रचना है इसलिए उनका जन्म ११०० ई० के आसपास मानना चाहिए। हर प्रकार से इनका समय १२वीं शताब्दी का पूर्वार्ध ही मान्य है ।

(ग) अलङ्कारसर्वस्व के कर्तृत्व का प्रश्न

अलङ्कारसर्वस्व के तीन अंग हैं–सूत्र, उन पर वृत्ति तथा उदाहरण। इसके सूत्रों का उल्लेख परवर्ती आचार्यों ने कई प्रकार से किया है– कहीं सर्वस्व सूत्र, कहीं अलङ्कारसर्वस्वसूत्र, कहीं अलङ्कारसूत्र तो कहीं सूत्र के नाम से ।

अलङ्कारसर्वस्व के वृत्तिकार के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है । इसका मुख्य कारण यह है कि त्रिवेन्द्रम संस्करण में छपी समुद्र–बन्ध की टीका के प्रारम्भिक श्लोकों में मंखुक का नाम आया है । वे श्लोक निम्नांकित हैं –

कदाचिन्मंखुकोपज्ञं काव्यालङ्कारलक्षणम् ।
प्रदर्श्य रविवर्माणं प्रार्थयन्त विपश्चितः ।।
गम्भीरं नस्तितीर्षूणां मङ्खुकग्रन्थसागरम् ।
नौरस्तु भवतः प्रज्ञा स्थेयसी यदुनन्दन ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रन्थ के अन्त में वृत्ति की पुष्पिका इस प्रकार है –

"इति मङ्खुको वितेने कश्मीरक्षितिपसान्धिविग्रहिकः ।
सुकविमुखालङ्कारं तदिदमलङ्कारसर्वस्वम् ।।

समुद्रबन्ध ने अपनी व्याख्या के अन्त में यह श्लोक लिखा है –

"मङ्खुकनिबन्धविवृतौ विहितायामिह समुद्रबन्धेन ।
गुणलेशमात्रमित्रैर्भविषीष्टादोषदर्शिभिः सद्भिः ।।

इस प्रकार समुद्रबन्ध की टीका में मङ्खुक को ही ग्रन्थकार कहा गया है ।

काव्यामाला संस्करण की वृत्ति के प्रारंभिक श्लोक का उत्तरार्ध है–

"निजालङ्कारसूत्राणां वृत्त्या तात्पर्यमुच्यते ।"

जबकि त्रिवेन्द्रम संस्करण में पाठ है –

"गुर्वलङ्कारसूत्राणां.............।"

इस प्रश्न को से० कन्हैयालाल पोद्दार, डॉ. पी० वी० काणे, डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी तथा डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी ने उठाया है । डॉ. रेवा प्रसाद द्विवेदी ने अपने संस्करण में 'गुर्वलङ्कारसूत्राणां' पाठ लिया है जबकि विमर्शिनी में 'निजालङ्कार....' के आधार पर व्याख्या की गई है ।

इनका (डॉ० रे० प्र० द्विवेदी का) मन्तव्य है कि सूत्र के रचयिता रुय्यक हैं और वृत्ति के मंखक ।

रुय्यक के लगभग ७५ वर्ष बाद विमर्शिनीकार जयरथ हुए । इन्होंने "निजालङ्कारसूत्राणां" पाठ माना है, जिससे यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि इनकी राय में सूत्रकार एवं वृत्तिकार एक ही व्यक्ति थे । उक्त पंक्ति की व्याख्या है–

निजेति– परकीयाणां सूत्राणां तात्पर्यकथनानवबोधोऽपि स्यात् ।

–वि० पृ० ३

जयरथ ने सूत्रकार एवं वृत्तिकार को एक ही व्यक्ति मानकर 'ग्रन्थकृत्' के रूप में अनेक संदर्भों में उल्लेख किया है । [५५] इतना ही नहीं, उनके उल्लेखों से स्पष्ट है कि वे सूत्र और वृत्ति दोनों भागों को मिलाकर एक ही ग्रन्थ मान रहे हैं । [५६] ध्यान देने योग्य तथ्य यह भी

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है कि जयरथ ने कहीं भी मंखक का उल्लेख नहीं किया है। श्री विद्याचक्रवर्ती भी, जो सर्वस्व के दूसरे टीकाकार हैं, सूत्र एवं वृत्ति भाग का कर्ता एक ही व्यक्ति को मानते हैं। अपनी टीका के प्रारंभिक दूसरे ही श्लोक में उन्होंने लिखा है –

'रुचकाचार्योपज्ञे सेयमलङ्कारसर्वस्वे'

अलङ्कारसर्वस्व के मंगल श्लोक की व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है–

"निजानां स्वेनैवप्रणीतानामलङ्कारसूत्राणां।"

संजीविनी के अन्त में यह पंक्ति आयी है–

"इत्थं भूम्ना रुचकवचसां विस्तरः कर्कशोऽयम्।"

इस प्रकार श्री विद्या चक्रवर्ती का साक्ष्य एक ही कर्ता के पक्ष में है। इनके अतिरिक्त श्री शोभाकार मित्र ने अपने ग्रन्थ अलङ्काररत्नाकर में सर्वस्व के सूत्र एवं वृत्ति को एक ही कृति माना है तथा अनेक स्थलों पर खण्डन–मण्डन किय है। [५७] कुमारस्वामी, [५८] पण्डितराज जगन्नाथ,[५९] भट्टगोपाल, विद्याधर, विद्यानाथ एवं उनके टीकाकार मल्लिनाथ [६१] इत्यादि ग्रन्थकारों ने सूत्र एवं वृत्ति दोनों का कर्त्ता एक ही व्यक्ति को माना है।

ऐसा लगता है कि मंखक ने अपने गुरु रुय्यक के ग्रन्थ का प्रचार–प्रसार करने में विशेष रुचि ली होगी एवं ग्रन्थ के पुनर्लेखन के समय उसमें कुछ वृद्धि की होगी। संभवतः इसीलिए श्रीकण्ठचरित के अनेक श्लोक (लगभग ५) अलंङ्कारसर्वस्व में मिलते हैं।

जयरथ ने स्पष्ट कहा है कि वृत्ति में अप्रामाणिक संवर्धन एवं परिवर्तन किये गये हैं। उन्होंने अनेक प्रसंगों में मूल ग्रंथ में किए गए दोष–पूर्ण परिवर्तनों का उल्लेख किया है। [६२] स्थान एवं समय दोनों दृष्टियों से जयरथ, समुद्रबन्ध की अपेक्षा सर्वस्वकार के निकट हैं, अतएव उनकी मान्यता अधिक प्रामाणिक है। साथ ही शोभाकर से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक एवं अधिकतर आधुनिक विद्वानों की परम्परा रुय्यक को ही सूत्रकार एवं वृत्तिकार मानती है, जो अधिक विश्वसनीय है।

(घ) अलङ्कारसर्वस्व का प्रेरणा–स्रोत एवं उसका महत्व

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुय्यक के यश को अमर बनाने वाली कृति है अलङ्कारसर्वस्व।

अलङ्कारशास्त्र के उपलब्ध ग्रन्थों में भरत का नाट्यशास्त्र सर्वाधिक प्राचीन है। उसके बाद भामह, दण्डी, उद्भट तथा रुद्रट ने पद्यों में अलङ्कारशास्त्र विशेष रूप से अलङ्कारसम्प्रदाय को पल्लवित किया। वामन के काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति से एक नूतन शैली का शुभारम्भ हुआ। इस शैली में ग्रन्थकारों ने स्वयं सूत्र लिखे हैं तथा उन पर वृत्ति लिख कर अपने द्वारा रचित एवं अन्य कवियों के काव्य से उदाहरण दिये हैं। ध्वनिकाल तथा ध्वन्युत्तरकाल के आचार्यों ने मुख्य रूप से इस शैली को अपनाया है।

रुय्यक का अलङ्कारसर्वस्व वामन के ग्रन्थ की शैली में लिखा गया है। काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति तथा अलङ्कारसर्वस्व के मंगलश्लोकों के उत्तरार्ध में बहुत समानता है – वामन की पंक्ति है–

काव्यालङ्कारसूत्राणां स्वेषां वृत्तिर्विधीयते ।

इसी से मिलती–जुलती रुय्यक की पंक्ति है –

"निजालङ्कारसूत्राणां वृत्त्या तात्पर्यमुच्यते !

इसके अतिरिक्त विरोध तथा अनन्वय अलङ्कारों के लक्षण दोनों के ग्रन्थों में एक ही हैं। [६३]

रुय्यक ने काव्यप्रकाश पर 'संकेत' टीका लिखी थी तथा ये इसके कर्त्ता मम्मट के कनिष्ठ समकालीन माने जाते हैं। काव्यप्रकाश की अलङ्कार–कारिकाओं तथा अलङ्कारसर्वस्व के बहुत से सूत्रों में पर्याप्त समानता है। किसी–किसी अलङ्कार की परिभाषा देखकर ऐसा आभास होने लगता है कि काव्यप्रकाश की कारिकाओं को ही कुछ शब्दों में परिवर्तन करके सूत्र बना दिया गया है। उदाहरणार्थ–मालादीपक, काव्यलिंग, वक्रोक्ति, चित्र, अनन्वय, कारणमाला, अन्योन्य, उत्तर, सार, एकावली तथा समाधि अलङ्कारों के दोनों ग्रन्थों के लक्षण द्रष्टव्य हैं।

इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रुय्यक को सूत्र, वृत्ति तथा उदाहरण इन तीन अंगों में अलङ्कार–सर्वस्व के प्रणयन की प्रेरणा, वामन और मम्मट के ग्रंथों से मिली।

CC-0. Vashistha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वामन के सूत्रों तथा मम्मट की कारिकाओं से सर्वस्व के सूत्रों की अनेकत्र समानता तो है परन्तु बहुत से अलङ्कारों में अन्तर इतना स्पष्ट है कि रुय्यक के सूत्र अधिक वैज्ञानिक, सरल तथा संक्षिप्त दृष्टिगोचर होते हैं ।

सूत्र का लक्षण है –

"अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवत् विश्वतोमुखम् ।
सम्यक् संसूचितार्थं यत् तत् सूत्रमिति कथ्यते ।।

अलङ्कारसर्वस्व के सूत्र इस कसौटी पर खरे उतरते हैं । रुय्यक ने अलङ्कार सूत्रों में केवल अलङ्कारों का लक्षण ही नहीं दिया है, अपितु इनके वर्गीकरण एवं निरूपण क्रम को सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया है। यद्यपि इन सूत्रों में कुछ पारिभाषिक तथा अप्रसिद्ध अर्थ वाले शब्दों की उपस्थिति के कारण व्याख्या की आवश्यकता है परन्तु काव्यप्रकाश की कारिकाओं एवं अलङ्काररत्नाकर के सूत्रों की तरह पग–पग पर वृत्ति की वैसाखी का आलम्बन अपेक्षित नहीं है। सर्वस्व की भाषा में काव्यप्रकाश जैसी दुरवगाहता नहीं है। इसके सूत्रों में निहित पदावली सारवत् तो है ही, विश्वतोमुख भी है जिनमें अलङ्कारों के लक्षण का प्रतिपादन सहज एवं सर्वथा स्वाभाविक बन गया है। अलङ्कारसर्वस्व की प्रमुख विशेषताएं हैं – अलङ्कारों के निरूपण का समुचित क्रम तथा उनके लक्षणों की सरलता एवं सहज–ग्राह्यता ।

रुय्यक की मौलिक देन है–अलङ्कारों के परस्पर सूक्ष्म भेद के द्वारा उनके निष्कृष्ट लक्षण की प्रस्तुति । इन्होंने कुछ नवीन अलङ्कारों की उद्भावना भी की हैं, जिनमें परिणाम, उल्लेख, विचित्र, विकल्प, भावोदय, भाव–सन्धि तथा भावशबलता हैं । भट्टगोपाल कृत काव्यप्रकाश की साहित्यचूडामणि टीका में प्रायः प्रत्येक अलङ्कार के संदर्भ में सर्वस्व के सूत्र उद्धृत किये गये हैं । अलङ्कारसार तथा अलङ्कारभाष्य [६४] भी सर्वस्व की शैली में ही लिखे गये ग्रन्थ थे। श्री शोभाकार ने इसी शैली में अलङ्कार रत्नाकर की रचना की हैं, जिसमें उक्त तीन अंगों के अतिरिक्त परिकर श्लोक या अन्तरश्लोक भी हैं। सर्वस्व एवं अलङ्काररत्नाकर की पदावली

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा सूत्रों के स्वरूप में बहुत अधिक समानता है। शोभाकर ने सर्वस्वकार के द्वारा दिये गये विरोध एवं विपर्यय अलङ्कार के लक्षणों को ज्यों का त्यों अपनाया है। वृत्त्यनुप्रास, सन्देह, व्याजस्तुति, श्लेष तथा परिकर अलङ्कारों के लक्षणों में दोनों ग्रंथों में एक–दो शब्दों का ही अन्तर है। [६५] रुय्यक के परवर्ती आलङ्कारिकों में विद्यानाथ, विद्याधर, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ आदि का झुकाव काव्यप्रकाश की अपेक्षा अलङ्कारसर्वस्व की ओर अधिक है। इन आचार्यों ने अधिकांश अलङ्कारों का लक्षण देते समय अलङ्कारसूत्रों का अनुसरण किया है। मल्लिनाथ, कुमारस्वामी और राघवभट्ट जैसे लब्धप्रतिष्ठ टीकाकारों ने रुय्यक के सूत्रों का उल्लेख करते हुए अलङ्कारनिर्देश किया है। यदि ऐसा कहा जाय कि अलङ्कार–शास्त्र के परवर्ती आचार्यों पर काव्याप्रकाश की अपेक्षा अलङ्कार–सर्वस्व का प्रभाव अधिक है, तो अत्युक्ति नहीं होगी।

रुय्यक ने अपने सूत्रों पर स्वयं वृत्ति लिखकर उनका तात्पर्य स्पष्ट किया है –"वृत्त्या तात्पर्यमुच्यते। वृत्ति का प्राचीन लक्षण है –

"सूत्रमात्रस्य या व्याख्या सा वृत्तिरभिधीयते।"

अर्थात् विमर्शिनीकार जयरथ के अनुसार रुय्यक के अलङ्कारसूत्र इतने सारगर्भित हैं कि वृत्ति द्वारा उनका तात्पर्य न लिखकर विस्तृत व्याख्या शैली या भाष्य अपनाने पर ग्रंथ का आकार अत्यधिक विशाल हो जाता, फिर भी व्याख्याकार पार नहीं पाता–

"अन्यथा हि कथनमेषां बहुनापि ग्रन्थेन पारं न यायात्।

–वि० पृ० ३

सर्वस्व में जिस प्रकार अलङ्कारों का संक्षिप्त, स्पष्ट, सूक्ष्म और वैज्ञानिक विवेचन किया गया है, वैसा अन्यत्र नहीं देखा जाता, इसलिए ये (सूत्र) अद्वितीय हैं।

सूत्रों की रचना के विषय में अलङ्कारसर्वस्व के अन्यतम टीकाकार जयरथ की उक्ति सर्वथा अभ्यर्हणीय है जिसमें उन्होंने कहा है कि आज तक इस प्रकार के सूत्रों की रचना किसी ने नहीं की है,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"न परैरीदृंशि सूत्राणि कृतानि ।"
वि०, पृ० ३

अलङ्कारसर्वस्व के महत्व का ख्यापन इन उक्तियों से सुतरां सिद्ध हो जाता है ।

(ङ्) अलङ्कारसर्वस्व के संस्करण एवं उस पर हुए शोध–कार्य

राजानक रुय्यक प्रणीत अलङ्कारसर्वस्व के ६ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं । सबसे पहले श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी एवं के० पी० परब ने निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से काव्यमाला सीरीज में (३५ वें क्रमांक पर) १८६३ ई० में जयरथ की विमर्शिनी टीका के साथ इस ग्रंथ का सम्पादन किया । इसी संस्करण के आधार पर श्री एच० जैकोबी ने सन् १६०८ में मूल ग्रन्थ का जर्मन भाषा में अनुवाद किया । तत्पश्चात् श्री टी० गणपति शास्त्री [६६] ने अनन्तशयन संस्कृत ग्रंथमाला के अन्तर्गत ४० वें क्रम पर समुद्रबन्ध की व्याख्या के साथ सन् १६१५ में इस ग्रंथ का सम्पादन किया (इसी संस्करण की फोटो कापी इस लेखक के पास हैं) । श्री गौरीनाथ पाठक ने सन् १६२६ ई० में काशी से शारदा संस्कृत ग्रंथमाला के नवम प्रसून के रूप में दुरूह स्थलों पर प्रकाश डालने वाली 'महालक्ष्मी' टिप्पणी के साथ मूल ग्रंथ को मुद्रित कराया । निर्णय सागर वाला संस्करण सन् १६३६ ई० में, तथा अनन्तशयन ग्रंथमाला वाला संस्करण सन् १६२६ ई० [६७] में दूसरी बार प्रकाशित हुआ ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखन में इन्हीं संस्करणों का प्रयोग किया गया है । उपर्युक्त संस्करणों की तालिका अगले पृष्ठ पर दी जा रही है—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशक	संस्करण/सन्	स्वरूप	प्रकाशक/संशोधक
१. निर्णय सागर प्रेस, बम्बई	प्रथम १८६३	विमर्शिनी सहित	म०म०दुर्गाप्रसाद द्विवेदी और के०पी० परब
,,	द्वितीय १६३६	,,	पं०गिरिजाप्रसाद द्विवेदी
२. अनन्तशयन ग्र०मा० त्रिवेन्द्रम, केरल	प्रथम १६१५	समुद्रबन्धी टी.स.	टी.गणपति शास्त्री
,,	द्वितीय १६२६	,,	,,
३. शारदा ग्रन्थमाला काशी	प्रथम १६२६	मूल मात्र	पं० गौरीनाथ पाठक
४. मोतीलाल बनारसी दास, काशी	प्रथम १६६५	हिन्दी अनु० वाद तथा संजीविनी	डा.रामचन्द्र द्विवेदी
५. मेहरचन्द लक्ष्मण-दास, दिल्ली	प्रथम १६६५	संजीविनी	संपा० डॉ.कु०जानकी संशो० डॉ.वे०राघवन्
६. चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी	प्रथम १६७१	हिन्दी अनु० वाद तथा विमर्शिनी	डॉ.रेवाप्रसाद द्विवेदी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पादटिप्पणी

१. ऋग्वेद, ७।२६।३
२. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोइटिक्स, डॉ. एस० के० डे, पृ० २।३
३. ऋ० १।१६४!२०
४. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोइटिक्स, डॉ. एस० के डे, पृ० ३
५. निरुक्त नैघण्टुक काण्ड, पाद ३, आरम्भ, मोरसंस्करण, भाग २, पृ० २८३
६. नाट्यशास्त्र, १६।४०
७. वही, १६।४२
८. वही, १६।४६
६. वही, १६।४१
१०. वही, १६।४३
११. वही, १६।५३, १६।५७
१२. वही, १६।५६
१३. वही, १६।६०–७०
१४. "काव्यबन्धास्तु कर्तव्याः षट्त्रिंशल्लक्षणान्विताः ।"
इन लक्षणों को उन्होंने काव्य विभूषण तथा भूषणसंमित कहा हैं। द्रष्टव्य ना० शा० १७वाँ अध्याय, अन्तिम अंश ।
१५. इसमें सूक्ष्म नामक एक अन्य अलङ्कार भीं सम्मिलित है–वह कारिका है –
हेतुश्च सूक्ष्मो लेशोऽथ नालङ्कारतया मतः ।
समुदायाभिधानस्य वक्रोक्त्यनभिधानतः।। – काव्यलङ्कार २।८६
१६. न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम् । (काव्यालङ्कार २/१३)
१७. सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलङ्कारोऽनया विना ।। –काव्या०, २।८५

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१८. हेतुश्च सूक्ष्मो लेशोऽथ नालङ्कारतया मतः ।
समुदायाभिधानस्य वक्रोक्त्यनभिधानतः ।। काव्या०, २/८६
१६. सरूपवर्णविन्यासमनुप्रासं प्रचक्षते । काव्या०, २।८६
२०. द्रष्टव्य– काव्या०, ६।८
२१. काव्या०, २।६५
२२. म० म० पी० वी० काणे ने दण्डी को भामह का पूर्ववर्ती माना है ।
डॉ. रेवा प्रसाद द्विवेदी ने भी इन्हीं का अनुसरण किया है ।
किन्तु अधिकांश विद्वान भामह को पूर्ववर्ती मानने के पक्ष में हैं ।
२३. काव्यादर्श, २।२४५
२४. पन्थाः स एष विवृतः परिमाणवृत्त्या ।
संहृत्य विस्तरमनन्तमलङ्क्रियाणाम् ।। काव्या० २।३६८
२५. तत्रभवद्भिरुद्भटादिभिः....। ध्वन्यालोक निर्णयसागर सं० १३१
२६. इह तावद् भामहोद्भटप्रभृतयश्चिरन्तनालङ्कारकारा.....।
अलङ्कारसर्वस्व, पृ० ३
२७. इदं हि चिरन्तनैरलङ्कारतन्त्रप्रजापतिभिर्भट्टोद्भटप्रभृतिभिः शब्दार्थ-धर्मा एवालङ्काराः प्रतिपादिता नाभिधाधर्माः । –व्यक्तिविवेक टीका, पृ० ३
२८. काव्यालङ्कार–संग्रह पर लघुवृत्ति टीका, पृ०
२६. ध्वन्यालोक–लोचन, पृ० ८७ ।
३०. अलङ्कार–मीमांसा, पृ० १५२
३१. विरुद्धेनोपमानेन देशकालक्रियादिभिः । उपमेयस्य यत्साम्यं गुणलेशेन सोपमा । –काव्यालङ्कार, २।३०
तथा–उपमानोपमेयस्य गुणलेशतः साम्यमुपमा ।
काव्या० सूत्र० वृ०, ४।२१
३२. क्रियायाः प्रतिषेधे या तत्फलस्य विभावना ज्ञेया विभावनैवासौ समाधौ सुलभे सति । भामह २।७७
तथा–क्रियाप्रतिषेधे प्रसिद्धतत्फलव्यक्तिर्विभावना । –वामन, ४।३।१३

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३३. उपमानाक्षेपश्चाक्षेपः । –४। ३। २७

३४. तस्मात् तत् कर्तव्यम् यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तं । –काव्यालङ्कार, ५७। १७

३५. स्नेहप्रकृतिः प्रेयान् ।–वही ५७। १७

३६. सम आस्पेक्ट्स आफ लिटरेरी कृटिसिज्म, पृ० ३४

३७. सारं समाहित मनाः परर्मादादानः। –काव्यालङ्कार १२। ३६

३८. अलङ्कार–सर्वस्व–डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, पृ ३७ से उद्धृत ।

३९. एकावली में विवेचित अलङ्कारों की तालिका डॉ. ओमप्रकाश के ग्रंथ "हिन्दी अलङ्कार साहित्य" के पृष्ठ ३९–४० पर देखी जा सकती है ।

४०. उपमा सहोपमेयोपमायाथानन्वयः स्मरणम् ।
रूपक–परिणति–संशय–भ्रान्तिमद्–उल्लेख–निह्नवोत्प्रेक्षाः ।।
(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–संस्कृत पोइटिकस्)
वाल्यूम– I एस० के० डे०, पृ० २२४

४१. इति मंखुको वितेने कश्मीरक्षितिप सान्धिविग्रहिकः ।
–द्र० ग्रन्थ के अन्त में वृत्ति की पुष्पिका ।

४२. काव्यप्रकाशसंकेतो रुचकेनेह लिख्यते ।

४३. इति श्रीमद्राजानकामल्लकमम्मटरुचकविरचिते–(?)
निजग्रन्थकाव्यप्रकाशसंकेते प्रथम उल्लासः ।
अलवर पाण्डुलिपि (पीटर्सन्स सेकेंड रिपोर्ट, पृ० १०६)
तथा–समाप्तश्चायं काव्यप्रकाशसंकेतः । कृती राजानकरुचकस्य
–का० प्र० सं० ७५

४४. 'रुचकाचार्योपज्ञे' 'रुचकवचसां विस्तरः 'संजीवनी में तथा 'रुचकेन तयोरेव वर्त्मानुसरता' (पृ० ३४७) एवं' लिखिता रुचकग्रन्थाः सान्धिविग्रहिकेण धिक्'– संप्र० प्र० (द्वि० भाग), पृ० ३४८ आदि स्थलों में रुचक नाम से ही सर्वस्कार का स्मरण किया गया है ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

४५. रत्नापण, पृ० ३६३, ३६६, ४२५ तथा ४४८
४६. चित्रमीमांसा, पृ० ८५
४७. शाकुन्तलम् पर राघवभट्ट की टीका, पृ० १६१, १७६,१६३
–डॉ. दे० के अनुसार
४८. अस्यार्थः श्री राजानकरुय्यकविरचितालङ्कारसारिण्याम् ।
४६. का०मा०संस्करण की पुष्पिका में किंचित् शाब्दिक अन्तर है ।
५०. ज्ञात्वा श्रीतिलकात् सर्वालङ्कारोपनिषत्क्रमम् ।
काव्यप्रकाशसंकेतो रुचकेनेह लिख्यते ।। का०प्र० सं०(प्रारम्भ२)
५१. ग्रन्थकृच्च प्रायस्तन्मतानुवर्त्येव । विमर्शिनी, पृ० १५८ ।
इसके अतिरिक्त द्रष्टव्य, वही पृ० १४६, २५७
५२. श्रीकण्ठचरित २५–१५, २५–४३ एवं २५–६१
५३. काश्मीर रिपोर्ट, पृ० ५०
५४. द्र०–काव्यप्रकाशसंकेत, मैसूर संस्करण, पृ ३२१, ३५५
५५. विमर्शिनी–पृ० १, ५५, ७२, ७५, ७६, १२३, १२६, १२८, १३०, १३१, १३६, १५६, १६०, १६२, १६८, २५६, २५७ आदि ।
५६. वि० – पृ० १५८, २५६, २५७
५७. अलङ्काररत्नाकर –पृ० ४, २२, ३३, ४७, ५३ इत्यादि ।
५८. रत्नापण–पृ० ३६३, ३६६, ४२५, ४४८
५६. रसगंगाधर–पृ० २५१, ३४२, ३४३, ३५२, ४८२
६०. काव्यप्रकाश– साहित्यचूड़ामणि टीका (द्वितीय भाग), पृ० ३१८
६१. तरल–पृ० २१, १८६, १८७, २३२, २३७, २४६ इत्यादि ।
६२. द्रष्टव्य– अलङ्कारसर्वस्व– विमर्शिनी (काव्यमाला संस्करण १६३६) पृ० ६३, ८५, १३७, १५८, १६० इत्यादि ।
६३. (क) विरुद्धाभासत्वं विरोधः । का० सू० ४/३/१२
यही ज्यों का त्यों अलङ्कारसर्वस्व का सूत्र ४० है ।
(ख) एकस्योपमानोपमेयत्वेऽनन्वयः । क० सू० ४/३/४
अलङ्कारसर्वस्व के सूत्र १२ में एकस्य के बाद मात्र एव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जुड़ गया है ।

६४. ये दोनो ग्रंथ अभी तक अप्राप्य हैं । इनके कर्त्ता कौन थे यह भी अज्ञात है । जयरथ के पूर्ववर्ती शोभाकर ने अलङ्काररत्नाकर के पृ० ८ पर अलङ्कारसारकृत् के मत का उल्लेख किया है । जयरथ ने विमर्शिनी में पृ० ११८, १५३ पर अलङ्कारभाष्य का तथा पृ० ३६१, ३७७ अलङ्कारसार के मत का उल्लेख किया है ।

६५. उदाहरणार्थ–अलङ्काररत्नाकर के वृत्त्यानुप्रास वाले सूत्र में केवल 'एव' शब्द अधिक है । सन्देह अलङ्कार का लक्षण देते समय शोभाकर ने सर्वस्व के सूत्र में आये 'विषयस्य' के स्थान पर 'तस्य' का प्रयोग किया है, शेष शब्द वे ही हैं ।

६६. डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी तथा डॉ. रेवा प्रसाद द्विवेदी ने अपने–अपने ग्रंथों में यह संस्करण श्री के० साम्बशिव शास्त्री द्वारा सम्पादित बताया है, यद्यपि उक्त संस्करण प्रायः अनुपलब्ध है किन्तु प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक के पास उस संस्करण की सम्पूर्ण फोटो कापी हैं जो डॉ. सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि०वि काशी के ग्रंथागार से प्राप्त की गई है, तथा उसमें सम्पादक के रूप में श्री टी० गणपति शास्त्री का उल्लेख है । समझ में नहीं आता इन दोनों धुरन्धर विद्वानों से यह भूल कैसे हुई ?

६७. डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी ने अनंतशयन ग्रंथमाला का दूसरा संस्करण सन् १९२८ का बताया है जो कि ठीक नहीं है ।

६८. इस संस्करण के आधार पर १९०८ ई. में एच० जैकोबी ने अलङ्कार-स्सर्वस्व का जर्मन भाषा में अनुवाद भी किया था ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वितीय अध्याय

अलङ्कार-सर्वस्व की टीकाएं

अलक-

अलङ्कारसर्वस्व पर चार टीकाएँ लिखी गई थीं, जिनमें से प्राचीनतम टीका अलक की थी। रत्नकण्ठ ने काव्यप्रकाश की टीका सारसमुच्चय में अलक को उद्धृत किया है। इसके अनुसार काव्यप्रकाश के अन्तिम उल्लास के लेखक राजानक अलक ने अलङ्कारसर्वस्व पर भी टीका लिखी थी। विभिन्न पाण्डुलिपियों में अलक के अतिरिक्त अलट और अल्लट नाम भी प्राप्त होते हैं।[1] कश्मीरी विद्वानों के अनेक नाम 'ट' से समाप्त होने वाले मिलते हैं जैसे रुद्रट, मम्मट, कल्लट, मल्लट और लोल्लट। 'क' से समाप्त होने वाले नाम भी कश्मीरी परम्परा में बहुत हैं जैसे शकुंक, कुंतक, लंकक, मंखक आदि। डॉ. डे[2] एवं स्टेन[3] के अनुसार अलक अथवा अलट में से कौन सा नाम टीकाकार का रहा होगा इस संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। यह भी हो सकता है कि बहुत दिनों से दोनों ही प्रकार से टीकाकार का नाम प्रचलित रहा हो। पीटर्सन ने काव्य-प्रकाश को पूरा करने वाले एवं अलङ्कारसर्वस्व पर टीका लिखने वाले अलक को एक ही व्यक्ति मानने का सुझाव दिया है।[4] डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी का कहना है कि काव्यप्रकाश तथा सर्वस्व पर टीका लिखने वाले श्री विद्या चक्रवर्ती ने कहीं भी इन्हें एक मानने का संकेत नहीं दिया है यद्यपि उन्होंने अलक को काव्यप्रकाश का सह लेखक अवश्य माना है। रुय्यक ने काव्यप्रकाश पर संकेत नामक टीका लिखी है। उन्होंने मम्मट और अलक दोनों को काव्यं प्रकाश का कर्त्ता माना है। संकेत टीका की प्रथम तथा दशम परिच्छेद की पुष्पिकाएं तथा **"इत्येष मार्गो विदुषां"** आदि श्लोक पर रुय्यक-कृत संकेत यह प्रमाणित करता है कि काव्य प्रकाश दोनों की कृति है। इससे स्पष्ट है कि काव्य प्रकाश का सह लेखक अलक,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वस्वकार रुय्यक का पूर्ववर्ती अथवा वरिष्ठ समकालीन था। मेरी दृष्टि में यह सम्भव नहीं लगता है कि रुय्यक और अलक दोनों एक–दूसरे के टीकाकार हों। अनेक परवर्ती लेखकों ने काव्यप्रकाश के सह- लेखक के रूप में अलक का उल्लेख किया है; किन्तु उनमें से किसी ने यह सूचना नहीं दी है कि अलक, सर्वस्व के भी टीकाकार हैं। पण्डितराज जगन्नाथ, मल्लिनाथ, और कुमारस्वामी आदि के ग्रंथों में सर्वस्व और उसकी विमर्शिनी तथा संजीविनी का उल्लेख हुआ है, किन्तु रत्नकण्ठ को छोड़कर किसी ने भी अलक की टीका का संदर्भ नहीं दिया है। अतः यह मानना तर्कसंगत नहीं होगा कि काव्य–प्रकाश को पूरा करने वाले अलक ने सर्वस्व पर भी टीका लिखी होगी। जयरथ ने अनेक व्याख्याओं की चर्चा **'अन्यैः'** के अन्तर्गत की है किन्तु उन्होंने कहीं अलक का नाम नहीं लिया है और न ही टीका का उल्लेख किया है। प्रमाणों के अभाव में इस अलक के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इतना निश्चित है कि सर्वस्व के टीकाकार अलक काव्यप्रकाश के पूरक अलक से भिन्न हैं। इनकी टीका अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।

जयरथ–

अलङ्कारसर्वस्व की प्राप्त टीकाओं में प्राचीनतम है जयरथकृत विमर्शिनी। बाद के आलङ्कारिकों ने विमर्शिनीकार के रूप में इनका उल्लेख किया है। विमर्शिनी के अन्त में आए हुए चार श्लोकों से इनके संबेध में ६ महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है। उनमें से एक श्लोक है –

तदात्मजन्मा वैदग्ध्यबन्धुर्जयरथाभिधः ।
व्यधादिदमसामान्यं श्रवणाभरणं सताम् ।।

यह श्लोक हर पाण्डुलिपि में एक जैसा है। विमर्शिनी की कुछ काश्मीरिक पाण्डुलिपियों या सार–समुच्चय [६] के हस्तलेख में जयद्रथ के रूप में भी उल्लेख हुआ है। इनके अनुज का नाम जयद्रथ था, [७] जिन्होंने हरचरितचिन्तामणि [८] लिखी है। ऐसा लगता है कि लिपिकार के प्रमाद से यह त्रुटि हुई है। निश्चित रूप से विमर्शिनीकार का नाम जयरथ है।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जयरथ ने तन्त्रालोक पर भी टीका लिखी है, जिसके अन्त में अपनी वंशावली निम्नानुसार दी है –

१. पूर्ण मनोरथ [९] (९३० ई० के कश्मीर के राजा यशस्कर के मंत्री) ।
२. उत्पलरथ [१०] प्रथम
३. प्रकाशरथ [११]
४. सूर्यरथ [१२] (भाई धर्मरथ, उत्तमरथ, मनोरथ)
५. उत्पलरथ [१३] द्वितीय (भाई अमृतरथ तथा अन्य दो भाई भी, जिनका नामोल्लेख नहीं है, १०२८–१०६३ ई० तक के कश्मीर नरेश अनन्त के आश्रित)
६. सम्मरथ [१४] (भाई शिवरथ, शक्ररथ, नन्दिरथ, इनमें से शिवरथ ने संन्यास ले लिया)
७. गुणरथ [१५] (भाई देवरथ)
८. राजानक गुङ्गरथ [१६] (भाई लङ्करथ, पत्नी सत्त्वदाशी)
९. शृङ्गाररथ [१७] (शृंङ्गार के जन्म के उपरान्त गुङ्गरथ का यौवन में ही देहान्त हो गया)
१०. जयरथ [१८] (भाई जयद्रथ)

विमर्शिनी के अन्त में आये हुए एंक श्लोक के अनुसार जयरथ सतीसर के समीपवर्ती कश्मीर नरेश राजराज के मन्त्री शृङ्गार (शृङ्गाररथ) के पुत्र थे । वह श्लोक है–

राजराज इति भूभुजामभूदग्रणीर्गुणिगणाश्रयःपरम् ।
तां सतीसरसिराजहंसतामातनोत् किल घनागमेऽपि यः ।। [१९]

राजतरंगिणी से कश्मीरी राजाओं के संबंध में जो विस्तृत सूचना मिलती है उसमें 'राजराज' नाम के किसी राजा का उल्लेख नहीं है, अतः विद्वानों ने उसे राजदेव नामक राजा से अभिन्न माना है, जिसका शासन–काल १२०३–१२२६ ई० है । जयरथ के पिता इस नरेश के अमात्य तो थे ही, इस राजा ने जयरथ को भी 'विवेक' लिखने के लिए प्रोत्साहन दिया था । [२०] जयरथ ने अपनी टीका में पृथ्वीराज विजय से [२१] उद्धरण दिया है, जो ११९३ ई० में दिवंगत अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज पर विरचित

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कृत महाकाव्य है। अतएव जयरथ का समय १२ वीं शताब्दी के अन्त से लेकर १३ वीं शती ई० के मध्य तक मानना चाहिए।

जयरथ ने श्री शंखधर [२३] तथा श्री संगरथ से शिक्षा प्राप्त किया था। इनके दीक्षागुरु थे श्री सुभटरत्न, [२४] जिनके पिता का नाम त्रिभुवनदत्त तथा पितामह का नाम श्री विश्वदत्त था। जयरथ के पिता श्री शृंगाररथ ने भी श्री सुभटरत्न से ही दीक्षा ली थी। [२५] जयरथ ने बहुत कुछ अपने पिता से पढ़ा था। ये अन्य शास्त्रों मे पारंगत होने के साथ–साथ शैवागम, क्रमदर्शन तथा कुलदर्शन के विशेषज्ञ और अप्रतिम विद्वान् थे। अभिनवगुप्त के तन्त्रालोक पर अपनी 'विवेक' टीका के अन्त में आत्म–परिचय देते हुए वे लिखते हैं –

"पदे वाक्ये माने निखिलशिवशास्त्रोपनिषदि
प्रतिष्ठां यातोऽहं यदपि निरवद्यं जयरथः।
तथाप्यस्यामङ्ग क्वचन भुवि नास्ति त्रिकदृशि,
क्रमार्थे वा मत्तः सपदि कुशलः कश्चिदपरः।। [२६]

इसका अर्थ है –"यद्यपि मैंने (जयरथ ने) व्याकरण, मीमांसा और न्याय शास्त्र के साथ सम्पूर्ण शैवशास्त्र में प्रतिष्ठा प्राप्त की है फिर भी त्रिकदृष्टि और क्रमदर्शन में मुझसे अधिक कुशल पूरी वसुन्धरा पर कोई नहीं है।" जयरथ ने उपरोक्त पद्य में अपने वैदुष्य का जो बखान किया है, उसका अक्षरशः अनुमोदन तो नहीं किया जा सकता किन्तु उनकी विमर्शिनी एवं तन्त्रालोक की विवेक टीका का अध्ययन करने पर मानना पड़ता है कि ये एक परिश्रमी लेखक तथा उद्भट विद्वान् हैं।

रचनाएं–

अलङ्कारसर्वस्व पर विमर्शिनी टीका के अतिरिक्त अभिनवगुप्त के आकर ग्रन्थ तन्त्रालोक पर विवेक टीका की चर्चा पहले की जा चुकी है। इन दोनों टीकाओं में से किसकी रचना पहले हुई इसका निश्चय करना सरल नहीं है। तन्त्रालोक–विवेक में गूढ़ दार्शनिक विवेचन किया गया है तथा उसमें विमर्शिनी की अपेक्षा अधिक प्रौढता परिलक्षित होती है। विवेक

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

टीका में आह्निकों की समाप्ति पर टीकाकार ने अपने को **"कौमारिलनैयायिकमत– विमतिसतत्त्वविद्"** तथा **'निःशेषषड्विधाध्वप्रविभागसतत्त्वविद्"** कहा है। इतना ही नहीं, वह कौलादि मत का दीक्षित भक्त भी है। अतः इसकी प्रबल संभावना है कि जयरथ ने अलङ्कारसर्वस्व विमर्शिनी का प्रणयन पहले किया होगा तथा वानप्रस्थ योग्य आयु में पहुंच कर तन्त्रालोक जैसे गम्भीर दार्शनिक ग्रंथ पर विवेक टीका लिखी होगी।

उपरोक्त दोनों टीकाओं के अतिरिक्त इनका तीसरा ग्रन्थ है अलङ्कारोदाहरण। इसका प्रणयन विमर्शिनी के पश्चात् हुआ था। भण्डारकर प्राच्य विद्या संस्थान में नागरी लिपि की एक पाण्डुलिपि [२७] के अन्तिम श्लोक इस प्रकार हैं –

प्रतिज्ञामात्रमेवैतदित्युपेक्ष्यं विचक्षणैः।
अलङ्कारविमर्शिन्यां युक्तिरुक्तचरात्र यत्॥
संगकमुद्दिश्य निजं सत्यपि बाल्ये श्रुतार्थिनं पौत्रम्।
अलिखन्निखिलालंकृतिसिद्धान्तं जयरथः स्फुटार्थपदम्॥

इन श्लोकों से स्पष्ट है कि जयरथ ने अपने पौत्र को अलङ्कारसिद्धान्त का ज्ञान कराने के लिए इसकी रचना की थी। इस ग्रंथ में अलङ्कारसर्वस्व, विमर्शिनी तथा शोभाकर के अलङ्काररत्नाकर से अलङ्कारों के उदाहरण गृहीत हैं, अपनी विमर्शिनी में जिन अलङ्कारों का, जयरथ ने खण्डन किया है, उनका भी संग्रह बालक के ज्ञानार्थ इसमें कर दिया है। इसमें विषय का प्रतिपादन अत्यन्त सरल ढंग से किया गया है, जबकि विमर्शिनी में प्रौढ़ एवं पाण्डित्यपूर्ण ढंग से। अलङ्कारोदाहरण का अभी तक प्रकाशन नहीं हो सका है। डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी ने अपनी पुस्तक अलङ्कार–मीमांसा में इस ग्रन्थ का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है जिसका आधार पूना में सुरक्षित उपरोक्त पाण्डुलिपि है।

अलङ्कार-विमर्शिनी —

अलङ्कारसर्वस्व पर जयरथ द्वारा की गई यह टीका भाष्य जैसी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। पण्डितराज जगन्नाथ के रसगंगाधर में जिस प्रकार संदर्भों का आधिक्य है उसी प्रकार विमर्शिनी में भी है, जिसके कारण जयरथ का मौलिक अंश कितना है, यह ज्ञात कर पाना कठिन है। जयरथ के पूर्ववर्ती आलङ्कारिकों की एक दीर्घ एवं अविरल परम्परा है। मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, अलङ्कारसारकार, अलङ्कारभाष्यकार तथा अन्य अनेक आलङ्कारिक, इस सरणि पर निरन्तर चिन्तन-मनन करते आ रहे थे। विमर्शिनी का युग अलङ्कार-चिन्तन के चरम विकास का काल है। एक के बाद दूसरा आचार्य पूर्ववर्ती विद्वानों के अलङ्कारों के अनुशीलन और नूतन अलङ्कारों की उद्भावना में अपना योगदान देता चला जा रहा था। इस समय तक ध्वनि-सिद्धान्त की उद्भावना तथा प्रतिष्ठा हो चुकी थी। ऐसे में अलङ्कारों को कम महत्व का समझा जाना चाहिए था; किन्तु अलङ्कारों पर जितना चिन्तन उस समय हुआ उतनी प्रौढ़ता तथा विशदता के साथ बाद में नहीं हुआ। चाहे यह अलङ्कारसम्प्रदाय की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ हो अथवा सर्वतोमुखी चिन्तन की स्वतन्त्रता का फल रहा हो। अप्पयदीक्षित के कुवलयानन्द और पण्डितराज जगन्नाथ के रसगंगाधर में अलङ्कारों का प्रौढ़ विवेचन अवश्य हुआ है, किन्तु उसमें पहले की उपलब्धियों का आकलन अधिक तथा नूतन उद्भावनाएं कम हैं। यदि अभिनवगुप्त की लोचन टीका से अलङ्कार विमर्शिनी की प्रौढ़ता एवं गम्भीरता की तुलना की जाय तो भले ही अत्युक्ति लगे किन्तु निस्संन्देह अलङ्कारों के पाण्डित्य-पूर्ण विवेचन, गाम्भीर्य तथा मौलिक चिन्तन का जो स्वरूप विमर्शिनी में प्राप्त होता है, वह किसी अन्य आलङ्कारिक के टीका ग्रंथ में दृष्टिगोचर नहीं होता। सैकड़ों नवीन, आकर्षक और उपयुक्त छन्दों को उद्धृत करते हुए ग्रंथ के संक्षिप्त रूप से निर्दिष्ट प्रसंगों का उदाहरणपूर्वक विस्तृत विवेचन करना कम परिश्रम एवं प्रतिभा का कार्य नहीं है। जहां कहीं इन्हें सर्वस्व के उदाहरण में निर्बलता प्रतीत होती हैं वे झटिति अपनी ओर से कोई उपयुक्त पद्य प्रस्तुत कर देते हैं। उनके मन में मूल ग्रंथ के प्रति आदर है। [२८] वे प्रतिपक्ष के आक्रमणों से उसकी रक्षा करते हैं और अपने तर्कों से प्रतिपक्ष का खण्डन करने का विशेष प्रयास करते

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। जयरथ का लक्ष्य है रुय्यक के कथन पर हुए आक्षेपों का खण्डन करना तथा उनके मत को प्रतिष्ठित करना। उन्हीं के शब्दों में–

> "एवमन्येषामपि, समग्राणामभिनवालङ्काराणां
> चान्यैः अन्यालङ्कारयोगो योजयितुं शक्यत एवेति
> ग्रन्थविस्तरभयादस्मद्दर्शने तद्दूषणोद्धारस्यैव च
> प्रतिज्ञातत्वादस्माभिः प्रतिपद्ये न दूषितम्।"[२६]

अलङ्कारसर्वस्व के प्रणयन के कुछ ही समय पश्चात् शोभाकर मित्र ने अलङ्काररत्नाकर लिखा। ये भी काश्मीरी विद्वान् थे। इन्होंने सर्वस्व से भरपूर सहायता तो ली हैं, किन्तु साथ ही आदि से अन्त तक रुय्यक की स्थापनाओं का यथासंभव खण्डन करने की चेष्टा भी की है। जिस प्रकार अप्पयदीक्षित के मत का, पण्डितराज जगन्नाथ ने कहीं उचित रूप से तो कहीं चिढ़ वश अनुचित रूप से खण्डन किया है, उसी प्रकार शोभाकर ने रुय्यक का स्थान–स्थान पर खण्डन किया है। जयरथ ने शोभाकर द्वारा की गई आपत्तियों का उत्तर देते हुए रुय्यक के मत को उचित ठहराया है, जिसका एक उदाहरण अतिशयोक्ति अलङ्कार के प्रसंग से उद्धृत उपरोक्त पंक्तियाँ (एवमन्येषामपि........) हैं।

जयरथ की विमर्शिनी से ही अप्पयदीक्षित को कुवलयानन्द एवं चित्रमीमांसा लिखने की प्रेरणा मिली तथा पण्डितराज जगन्नाथ को रसगं–गाधर लिखने की। इन दोनों आचार्यों ने अलङ्कारसर्वस्व–विमर्शिनी एवं अलङ्काररत्नाकर को पग–पग पर उद्धृत किया है।

जयरथ अलङ्कारों के मर्मज्ञ हैं। अपनी कुशाग्र बुद्धि से जहां एक ओर उन्होंने शोभाकर आदि द्वारा की गई सर्वस्व की आलोचनाओं का खण्डन किया है वहां अनेक स्थलों पर रुय्यक के मन्तव्य पर भी प्रश्नचिह्न लगाया है। यह अलग बात है कि अपनी शालीनता तथा ग्रन्थकार के प्रति आदर–भाव के कारण **"चिन्त्यं चैतत्"** कहकर उन्होंने संकेत मात्र कर दिया है। अनेक स्थलों में उन्होंने लिपिकार का प्रमाद मान लिया है। बहुत से प्रसंगों में उन्होंने सर्वस्वकार की आलोचना **ग्रन्थकृता**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"पुनरेतच्चिरन्तनानुरोधात्कृतम्" कहकर की है। ऐसे अनगिनत स्थल हैं, जहां जयरथ ने अलङ्कारों के स्वरूप भेद तथा विभागोपविभाग आदि का विवेचन किया है जबकि रुय्यक ने नहीं किया है। लगभग ५० ऐसे स्थल हैं जहाँ पर जयरथ ने रुय्यक की मान्यताओं पर विमर्श किया हैं, जो सर्वस्वकार की आलोचना के साथ, स्वतन्त्र चिन्तन का परिपाक है। अपना विमर्श प्रस्तुत करने में जयरथ ने अपने पूर्ववर्ती अनेक आचार्यों के चिन्तन–मनन से प्रेरणा ली है। इन्होंने मूलग्रन्थ की प्रतिपद व्याख्या को उतना महत्व नहीं दिया है, जितना विमर्श को। उदाहरण के रूप में उद्धृत पद्यों के अर्थ की तो उन्होंने प्रायः उपेक्षा की है। कठिन प्रतीत होंने वाली पंक्तियों को भी सम्भवतः उन्होंने सरल समझ कर बिना व्याख्या किये छोड़ दिया है और विषय का विस्तार करने में अथवा अपना विमर्श उपस्थित करने में लग गये हैं। इस प्रकार वे टीकाकार कम और भाष्यकार अधिक हैं। उनकी टीका का नाम अलङ्कारविमर्शिनी नितान्त उपयुक्त है, जिसका परवर्ती आचार्यों ने केवल विमर्शिनी कह कर उल्लेख किया है।

प्रत्येक प्रसंग में भले ही नहीं तो भी जयरथ के अधिकांश विमर्श मूल ग्रंथ से स्वतंत्र, प्रौढ़ तथा विद्वत्तापूर्ण हैं। इनकी चर्चा प्रकृत प्रबंध में यथास्थान की गई है।

समुद्र–बन्ध–

काल–क्रम की दृष्टि से अलक और जयरथ के पश्चात् समुद्र–बन्ध का स्थान है। अनन्तशयनम् संस्कृत ग्रन्थावली त्रिवेन्द्रम् में इनकी टीका ई० सन् १९१५ एवं १९२६ में दो बार प्रकाशित हो चुकी है। उसके पश्चात् इसका प्रकाशन न होने से इसकी प्रतियां दुष्प्राप्य हो गई हैं। समुद्रबन्ध ने इस टीका को कोई विशेष नाम नहीं दिया हैं, किन्तु इसके अन्त के पद्य–

"मंखुकनिबन्धविवृतौ विहितायमिह समुद्रबन्धेन'

के अनुसार इसे विवृति कह सकते हैं।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समय–

केरल प्रान्त में स्थित कोलम्ब (आधुनिक क्विलोन) राज्य के राजा रविवर्मा उपनाम संग्रामधीर, समुद्रबन्ध के आश्रयदाता थे । इन्होंने कोलम्बाधिपति की प्रशंसा में इस टीका के प्रायः सभी उदाहरण–पद्यों की रचना की है । [३०] प्रद्युम्नाभ्युदय की [३१] प्रस्तावना के अनुसार राजा रवि वर्मा का जन्म १२६६–६७ ई० में हुआ था । ट्रावनकोर के भू० पू० महाराजा भी इन्हीं रवि वर्मा के वंशज हैं । सन् १३१२–१३ ई० में वेगवती नदी के किनारे कोलम्ब में इन्होंने (रवि वर्मा ने) अपने आप को मालाबार का राजा घोषित किया । इससे स्पष्ट है कि समुद्रबन्ध का समय ईसा की १३ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग से लेकर १४ वीं शती के प्रारम्भिक भाग तक मानना युक्तियुक्त है ।[३२]

इन्होंने मंखुक को सर्वस्वकार माना है, जिसकी विस्तारपूर्वक चर्चा प्रकृत प्रबन्ध में पहले की जा चुकी है । इनकी टीका में काव्य के विभिन्न सम्प्रदायों की मीमांसा, काव्य–लक्षण (विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्) के साथ समन्वय–स्थापन पूर्वक की गई है । इसमें बहुत से अलङ्कारों के भेदोपभेद का विवेचन किया गया है, जिसमें से अधिकांश मम्मट के अनुसार हैं । समुद्रबन्ध ने अपनी टीका में यमक, [३३] उपमा [३४] रूपक, [३५] उल्लेख, [३६] दीपक, [३७] सहोक्ति, [३८] शब्दश्लेष तथा अर्थश्लेष, [३९] अप्रस्तुतप्रशंसा, [४०] चतुर्विध जाति विरोध, [४१] अलङ्कारान्तरसंकीर्ण व्याजस्तुति, [४२] श्लिष्ट विचित्र, [४३] यथासंख्य, [४४] समुच्चय, [४५] तत्कर, [४६] अपह्नवमात्रपर्यवसायिनी व्याजस्तुति, [४७] भाविभाविक, [४८] उभयालङ्कार संसृष्टि, [४९] परिसंख्या और वृत्त्यनुप्रास–संकर के उपयुक्त उदाहरणों की स्वयं रचना करके ग्रन्थ का संवर्धन किया है । इन्होंने अलङ्कारशास्त्र के विभिन्न आचार्यों के मतों का उचित स्थानों पर उल्लेख किया है । अनेक [५०] स्थलों का शास्त्रीय विवेचन किया है । इनकी टीका के प्रारम्भ के मंगल पद्यों से यह ज्ञात होता है कि इन्हें अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता, सटीकता तथा प्राञ्जलता शिंगभूपाल की भाँति उत्कृष्ट रूप से प्राप्त थी ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समुद्रबन्ध की विवृति में यद्यपि पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख अधिक नहीं मिलता, किन्तु यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि वे भामह, उद्भट, वामन, रुद्रट, ध्वनिकार, आनन्दवर्धन, भट्टनायक, वक्रोक्तिजीवितकार, महिमभट्ट, भोज एवं मम्मट के ग्रंथों से सुपरिचित हैं। उन्होंने उद्भट की वृत्ति का भी उल्लेख किया है जो संभवतः भामह के काव्यालङ्कार पर लिखी गयी थी।

यद्यपि समुद्रबन्ध की विवृति, विमर्शिनी की भाँति प्रौढ़ पाण्डित्यपूर्ण या संजीविनी की तरह प्रसन्न नहीं है तथापि इसकी अपनी अनेक विशेषताएं हैं। डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी के शब्दों में– "काव्य के विभिन्न प्रस्थानों का काव्य–लक्षण (**विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्**) के साथ समन्वयात्मक विवेचन, अनेक अलङ्कारों के विभागोपविभाग का (प्रायः मम्मट के अनुसार) निर्देश तथा उपयुक्त उदाहरणों का निर्माण, अनेक स्थलों के शास्त्रीय व्याख्यान, विभिन्न आलंकारिकों के मतों का यथास्थान उल्लेख, सर्वस्व के सूत्र, वृत्ति तथा उदाहरण के मतों का यथास्थल उल्लेख, सर्वस्व के सूत्र, वृत्ति तथा उदाहरण के भागों पर विभिन्न व्याख्यानों का संकलन तथा पर्यालोचन समुद्र–बन्ध की प्रतिभा तथा व्युतपत्ति के प्रमाण हैं।" [५१]

जयरथ ने अपनी विमर्शिनी टीका में रुय्यक द्वारा दिये गये उदाहरणों की व्याख्या नहीं की है तथा अपनी ओर से बहुत से उदाहरण दिये हैं। श्री विद्या चक्रवर्ती ने सर्वस्व के उदाहरणों पर टीका लिखी है किन्तु अन्य कवियों के उदाहरण बहुत कम दिए हैं, जबकि समुद्रबन्ध ने अपनी 'विवृति' में रुय्यक के प्रायः सभी उदाहरणों की व्याख्या करने के साथ–साथ स्वनिर्मित श्लोकों से टीका को और विशद तथा उपयोगी बना दिया है। यह इसकी प्रमुख विशेषता है।

श्री विद्या चक्रवर्ती

अलंङ्कार–सर्वस्व की उपलब्ध तीनों टीकाओं में सबसे बाद की है श्री विद्या चक्रवर्ती की संजीविनी। काव्य–शास्त्र के अध्येताओं को सुविदित है कि श्री विद्या चक्रवर्ती ने मम्मट के काव्य–प्रकाश पर लघु टीका तथा वृहट्टीका अथवा सम्प्रदाय प्रकाशिनी [५२] भी लिखी है। इनकी लगभग दस

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृतियाँ हैं जिनकी चर्चा अगले पृष्ठों पर की जायेगी । सर्वप्रथम उनके वास्तविक नाम, वंश, कार्य–काल इत्यादि पर प्रकाश डालना उचित होगा।

काव्यप्रकाश की टीका सम्प्रदायप्रकाशिनी एवं अलङ्कारसर्वस्व की टीका संजीविनी की पुष्पिकाओं में श्री विद्या चक्रवर्ती नाम लिखा है, यद्यपि इसके साथ आलङ्कारिकचक्रवर्ति, ध्वनिप्रस्थानपरमाचार्य, प्राकृतपृथ्वीश्वर इत्यादि अनेक उपाधियाँ जुड़ी हुई हैं । इनके द्वारा रचित रुक्मिणी कल्याण महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका में बिना किसी उपाधि के केवल विद्याचक्रवर्ती नाम आता है । कलिंगराय सूर्य के सूक्तिरत्नहार [५३] में सकलविद्याधर, सकलविद्याचक्रवर्ती [५४] एवं सकलविद्याधरचक्रवर्ती [५६] के नाम से कई श्लोक उद्धृत किये गये हैं । डॉ. वी. राघवन् [५७] और श्री एस० श्रीकण्ठ शास्त्री [५८] ने यह माना है कि सकलविद्याचक्रवर्ती एवं सकलविद्याधर इन दोनों नामों से एक ही व्यक्ति को उद्धृत किया गया है । बृहट्टीका अथवा संप्रदाय प्रकाशिनी की एक पाण्डुलिपि [५९] में दशम उल्लास के अन्त की पुष्पिका में टीकाकार का नाम सकलविद्याधरचक्रवर्ती मिलता है ।

कादम्बरीसारसंग्रह [६०] के रचयिता त्रिविक्रम भट्ट ने अपने ग्रन्थ की पुष्पिका में कहा है कि वे सकलविद्याधरचक्रवर्ती के शिष्य थे । [६१] ग्रंथ की प्रस्तावना में भी उन्होंने अपने गुरु चक्रवर्ती को नमन किया है–

"अप्रबुद्धमपि सर्वतोमुखं मां प्रबोधितवते परात्मकम् ।
अक्रमस्फुरितसर्वशक्तये चक्रवर्तिगुरवे नमो नमः ।।
प्रतिजनयिता दुःखोच्छित्तेः प्रदर्शयितात्मनः ।
मनसि भविता नित्यं श्रीचक्रवर्तिकवीश्वरः ।।

निष्कर्ष यह है कि उपरोक्त अनेक नाम एक ही विद्याचक्रवर्ती के हैं ।

श्री चक्रवर्ती में प्रतिभा और विद्वत्ता का अद्भुत समागम था । वे शैवागम में विशेष आस्था रखते थे एवं साथ ही उपनिषद्, पुराण, भरतशास्त्र, काम–शास्त्र एवं षड्दर्शन का वैदुष्य तथा छह भाषाओं में कविता करने की सामर्थ्य उन्हें प्राप्त थी, जैसा कि उन्हीं के निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है –

शैवं विष्णुनिबद्धमौपनिषदं सांख्यं सपातञ्जलम् ।
शास्त्रं स्वात्महिताय वेद सकलैः साकं पुराणादिभिः ।।
भूषामां तु विनोदनाय भरतं नीतिं च वात्स्यायनं ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

षड्भाषाकवितां च लक्षणवतीं श्रीचक्रवर्ती कविः ।।
संजीविनी, पृ० ५६

शुष्क तार्किकों से इनका मेल नहीं था। सांख्य–दर्शन, शैवागम तथा प्राचीन काव्यों के प्रचार–प्रसार में इनका योग, भूत की भांति उन नैयायिकों के शिरारूढ़ होकर बोलता था –

सांख्यं वेश्मनि वेश्मनि श्रुतिशिरः कक्ष्यासु कक्ष्यासु च.,
द्वारि द्वारि शिवागमाः पथि पथि प्राचां कवीनां गिरः।
पठ्यन्ते यदसूयिभिर्जडतरप्रज्ञैर्जरत्तार्किकै
स्तत् सर्वम् खलु चक्रवर्तिकवितुर्विद्यायशोडिण्डिमः ।।
–वही।

श्री विद्या चक्रवर्ती ने अपनी प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा है। यहां पर उनकी संजीविनी से कुछ पंक्तियों को उद्धृत करना उचित होगा, जो उपर्युक्त श्लोक के नीचे लिखी गई हैं–

"महाराजवीरवल्लालास्थानजुषां विदुषां हि प्रसादाशिषो हि मय्येताः प्रथन्ते। कास्ताः ? संस्कृतसार्वभौमः, प्राकृतपृथ्वीश्वरः शौरसेनीशिरोमणिर्मागधीमकरध्वजः पैशाची परमेश्वरो अपभ्रंशराजहंसो आलङ्कारिकचक्रवर्तिन् ध्वनिप्रस्थानपरमाचार्यः सहजसर्वज्ञः परमयोगीश्वरः शैववैष्णवयोगसांख्यप्रमुखसमस्तस्वात्मविद्यातत्वनित्यनिष्णातः अश्रुताधिगतसमस्त विद्याकलापोऽद्वैतविद्याविद्वेषिवनदावानलः कलियुगस्कन्दः अभिनवभट्टाचार्यः वैदिकविद्याप्रतिष्ठापनपरमाचार्यः, काव्यमीमांसाप्रभाकरवादिमृगेन्द्रवेश्याभुजङ्ग इत्याद्याः। महाराजहोसलराजकुलद्वारि प्रशस्तिशिलाशासनप्रतिष्ठापनात् प्रभृति वयमुपशान्तरभसाः। अत्र तु ग्रन्थे काव्यमीमांसानिकषवतां ममोपयान्तु वत्सलाः सचेतसः।" संजी०, पृ० ५६–५७

इस प्रकार श्री विद्या चक्रवर्ती ने विस्तार से आत्मप्रशस्ति की है। यही प्रशंसा यदि किसी अन्य विद्वान् द्वारा की गई होती तो वह अधिक अच्छी लगती। फिर भी यदि हम सम्प्रदायप्रकाशिनी एवं संजीविनी टीकाओं तथा रुक्मिणीकल्याण महाकाव्य में उनकी प्रतिभा और पाण्डित्य का विचार करें तो हमें मानना पड़ेगा कि उनकी गर्वोक्ति निराधार नहीं है। उनकी उक्ति में सारगर्भिता परिलक्षित होती है।

वंश एवं समय–

श्री विद्या चक्रवर्ती वासुदेव के पुत्र थे जो होसल नृपति नरसिंह

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तृतीय (१२५४–६१ ई०) के राज कवि थे। इनके अग्रज महादेव, नरसिंह तृतीय के पुत्र बल्लाल तृतीय (१२६१–१२३४ ई०) के शिक्षक थे। श्री चक्रवर्ती ने अपने अग्रज से सभी शास्त्रों का अध्ययन किया था। उच्च कोटि की काव्य–रचना तथा प्रगाढ़ पाण्डित्य के कारण, होसल–नृपति इनका अत्यधिक सम्मान करते थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में अनेक प्रशस्तियां लिखीं, जिनमें उनके पराक्रम का वर्णन किया। श्री चक्रवर्ती के ही एक श्लोक से ज्ञात होता है कि ये प्रशस्तियां विशाल शिलाओं पर उकेरी गयी थीं तथा होसल–शासित क्षेत्र में जगह–जगह ये शिलालेख स्थापित किये गये थे–

"तेनोपनीयावरजो विनीतः प्रसिद्धनामा कविचक्रवर्ती।
बल्लालभूपस्य मनोभिरामैर्वाचां विलासैरतिवल्लभोऽभूत् ॥
उन्मीलितस्थापितभूमिपालदेशेषु पद्यैरुपवर्ण्य गीताः।
..............महाशिलासु वल्लालभूपस्य भुजप्रतापाः ॥ ६२

इनकी काव्य–कला पर मुग्ध होकर होसल–नरेश बल्लाल तृतीय ने इन्हें पर्याप्त पुरस्कार दिये तथा अनेक उपाधियों से सम्मानित किया, जिनका उल्लेख परिणाम अलङ्कार के अन्तर्गत संजीविनी के पृ० ५६–५७ पर किया गया है तथा वह अंश (महाराजबीरबल्लास्थानजुषां इत्यादि......) प्रकृत प्रबन्ध में पिछले पृष्ठ पर उद्धृत है। पूर्वोक्त गद्यांश में इनकी सत्रह उपाधियों का उल्लेख है।

श्री विद्या चक्रवर्ती एक ऐसे कुल में उत्पन्न हुए थे, जो पीढ़ियों से सरस्वती एवं लक्ष्मी का कृपा–भाजन था। रुक्मिणीकल्याण महाकाव्य के प्रथंम सर्ग में इन्होंने अपने पूर्वजों एवं उनके आश्रयदाता होसल–नृपतियों के संबंध में बड़े महत्त्व की सूचनाएं दी हैं। प्रथम सर्ग की पुष्पिका में श्री चक्रवर्ती ने इसका (इस सर्ग का) प्रतिपाद्य विषय "कविकाव्यवंशानुचरितोपवर्णन" बताया है। इस वर्णन से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि इनके पूर्वज, परम्परा से होसल–नृपतियों के सभा–कवि रहते आये थे तथा उनके द्वारा अत्यधिक सम्मानित रहे। उपर्युक्त वर्णन से होसलों एवं श्री चक्रवर्ती के वंश की जो सूचना मिलती है उसे अधोलिखित वंश–वृक्ष में दिखाया गया है –

रुक्मिणी कल्यान में वर्णित होसल–नृपतियों एवं उनके राज–कवियों की वंशावली –

CC-0.Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुक्मणीकल्याण में वर्णित
होसल–नृपतियों एवं उनके राज–कवियों की वंशावली

होसल–नृपति

बल्लाल द्विवतीय (1173–1220ई०)
(सेवुनों पर विजय प्राप्त करने वाले)

|

निरसिंह द्वितीय (1220–1235ई०)
(चोल, पाण्ड्य एवं अन्य राजाओं के विजेता)

|

सोमेश्वर (1234–1256ई०)
(जिन्होंने ताम्रपर्णी क्षेत्र पर अधिकार किया तथा पाण्ड्य राजकुमारी बिज्जलाम्बा से विवाह किया)

|

नरसिंह तृतीय (1254–1291ई०)
(नरसिंह तृतीय का विवाह पद्ममा से हुआ था, ज़िसके पिता पाण्ड्य–नृपति तथा विज्जलाम्बा के भाई थे)

|

बल्लाल तृतीय (1291–1342 ई०)(पाण्ड्य, चोल, कोंगु, केरल, कोंकण तथा कोञ्ची के राजाओं पर विजय प्राप्त करने वाले)

राज–कवि

विद्या चक्रवर्ती प्रथम
(अनेक शिलालेखों के रचयिता, शिव–भक्त, अग्निहोत्री ब्राह्मणों के एक रुढ़िवादी परिवार के उत्तराधिकारी)

|

वैद्यनाथ
(चतुर्दश भाषाओं के विद्वान् तथा अनेक राजाओं की सभा में सम्मानित)

|

विद्याचक्रवर्ती द्विवतीय
(सभी शास्त्रों में पारंगत, राजकुमारों के शिक्षक)

|

वासुदेव
(महान् वक्ता, शास्त्रार्थ–धुरंधर, रस–पूर्ण रचना करने वाले, पाण्ड्य नरेश द्वारा 'वल्लभ' नाम से आदृत)

|

महादेव
(बल्लाल तृतीय के शिक्षक, वेद के प्रकाण्ड विद्वान् तथा अतिरात्र यज्ञ के कर्ता)

विद्या चक्रवर्ती तृतीय
(अग्रज महादेव से शिक्षा प्राप्त, अनेक राजाओं की सभा में सम्मानित, अनेक शिला–लेखों के लेखक, संजीविनी,सम्प्रदायकप्रकाशिनी टीकाओं, रुक्मिणी कल्याण महाकाव्य एवं भरतसंग्रह आदि ग्रंथों के कर्ता)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार श्री विद्या चक्रवर्ती का समय १४ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध १३००–१३५० निश्चित किया जाता है ।

कृतियां

श्री विद्या चक्रवर्ती ने काव्यप्रकाश पर सम्प्रदायप्रकाशिनी अथवा बृहट्टीका तथा लघु टीका नाम से दो टीकाएं लिखी थीं, जिनका उल्लेख संजीविनी में मिलता है । उपमा के भेदों की चर्चा करते हुए वे कहते हैं–

> **"अनयोर्भेदप्रभेदवैचित्र्यसहस्रमस्माभिः सम्प्रदायप्रकाशिन्यां काव्यप्रकाशबृहट्टीकायां वितत्य दर्शितम् । लघुटीकायां च यथोपयोगमिति ततोऽवधार्यम् ।।"**

अर्थशक्तिमूलध्वनि के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं ।

> **"अत्र प्रपञ्चः सम्प्रदायप्रकाशिन्यां काव्यप्रकाशटीकायां अस्माभिः वितत्योपदर्शित इति ततोऽवधार्यः । इह तु ग्रन्थगौरवभयात् प्रस्तावानुपयोगाच्च न प्रतन्यते ।"**[६४]

इसी प्रकार "प्रसर्पत्तात्पर्यैरपि इत्यादि" श्लोक के नीचे 'रस, वाच्य, लक्ष्य या अनुमेय नहीं अपितु व्यंग्य हैं यह व्याख्या करते हुए कहते हैं–

"संप्रदायप्रकाशिन्यां काव्यप्रकाशटीकायां वितत्य कृत इति तत एवावधार्य इत्यलम् ।"[६५]

काव्यप्रकाश की उपर्युक्त संप्रदायप्रकाशिनी टीका में भी संजीविनी का उल्लेख है । उदाहरणार्थ "यः कौमारहरः" इस श्लोक में अलङ्कार की व्याख्या करते हुए श्री विद्याचक्रवर्ती कहते हैं–

> **"अत्र अलङ्कारचर्चास्माभिरलङ्कारसर्वस्व–सञ्जीवन्याम् अलङ्कारसर्वस्वटीकायां वितत्य उपरचितेति तत एवावधार्यम् ।"**[६६]

अपह्नुति अलङ्कार के विवेचन–प्रसंग में वे मम्मट की (अपह्नुति की) परिभाषा को ठीक ढंग से न समझने के लिए सान्धिविग्रहिक की आलोचना करते हुए कहते हैं–

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"सेयमलङ्कारमीमांसासूक्ष्मेक्षिका तेषामेव गोचरः यैरेव अलङ्कारसर्वस्वं सुपरिशील्य विशेषाय काव्यप्रकाशहृदयं निर्ज्ञातम् ।
अतः सर्वस्वसञ्जीवन्यामभिरतैः संप्रदायप्रकाशिन्यां
भूयो भूयोऽभिरन्तव्यं सचेतोभिः ।" ६७

इसके अतिरिक्त संप्रदायप्रकाशिनी एवं संजीविनी दोनों टीकाओं में उपसंहारात्मक श्लोक एक ही है जो अधोलिखित हैं –

"काव्यप्रकाशेऽलङ्कारसर्वस्वे च सचेतसाम् ।
येनादरो महांस्तेन व्याख्यातमुभयं सह ।।

इन आभ्यन्तर प्रमाणों से स्पष्टतः सिद्ध होता है कि विदयाचक्रवर्ती ने काव्यप्रकाश एवं अलङ्कारसर्वस्व इन दोनों ग्रन्थों पर साथ–साथ अथवा थोड़े ही समय के अन्तर से टीकाएं लिखी हैं ।

अलङ्कारसर्वस्व पर संजीविनी लिखने के साथ–साथ इन्होंने रुय्यक के सूत्रों का भाव स्पष्ट करने के लिए 'निष्कृष्टार्थ कारिका' लिखी है, जिसमें १३४ कारिकाएं हैं ।

इनके रुक्मिणी कल्याण महाकाव्य की चर्चा पिछले पृष्ठों पर की जा चुकी है । यह १७ सर्गों का है । श्री चक्रवर्ती ने व्याकरण संबंधी विषयों पर एक ग्रन्थ लिखा था–'प्रयोग दीपिका, जो पद्यबद्ध था। इसका एक उद्धरण संजीविनी में आया है –

तेऽस्त्यर्था धातवो ज्ञेया य उदासीन कर्तृकाः ।
विकुर्वाणप्रयुञ्जानकर्तृका भूकृन्अर्थकाः ।।

–संजीविनी, पृ० ४०

भरत के नाट्यशास्त्र के विषयों का संक्षेप में प्रतिपादन करने के लिए इन्होंने भरतसंग्रह लिखा था । यह भी श्लोकों में था । संजीविनी में उन्होंने अपने इस ग्रंथ से 'न्यंचत्कुंचितमुखम्' आदि श्लोक ६८ में आये हुए दृष्टि के भेदों के वर्णन–प्रसंग में उद्धरण दिये हैं ।

रुक्मिणीकल्याण महाकाव्य से हमें ज्ञात होता है कि श्री चक्रवर्ती ने भर्तृहरि के 'वाक्यपदीय' के तृतीय काण्ड प्रकीर्णक पर टीका लिखी थी,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिसका नाम था 'प्रकीर्णक दर्पण'। रुक्मिणी कल्याण के पहले सर्ग में अपना परिचय देते हुए श्री चक्रवर्ती ने लिखा है-

"वेदान्तयोगागमसङ्गृहीत्रा प्रकीर्णकस्याहितदर्पणेन।"

कुमार स्वामी ने बड़े आदर के साथ श्री विद्या चक्रवर्ती को तातपादैः" कह कर स्मरण किया है। प्रतापरुद्रयशोभूषण पर अपनी टीका 'रत्नापण' में उन्होंने संजीविनी के अतिरिक्त 'सर्वङ्कषा' का भी उल्लेख किया है[६६]। हो सकता है कि श्री चक्रवर्ती ने व्याकरण या काव्यशास्त्र के किसी ग्रंथ पर 'सर्वङ्कषा' नाम से टीका लिखी हो। किन्तु अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध न होने से निश्चपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पादटिप्पणी

१. श्री विद्या चक्रवर्ती ने सम्प्रदायप्रकाशिनी (द्वितीय भाग, पृ० ४४६) में अलर्क नाम भी दिया है ।
२. हिस्ट्री आफ संस्कृत पोयटिक्स, पृ १५०
३. जम्मू कैटलाग, पृ० २३
४. पीटर्सन रिपोर्ट (२), पृ० १७
५. अलङ्कार मीमांसा, पृ० ४५
६. पीटर्सन रिपोर्ट, २, पृ० १७
७. जयरथ जयद्रथाख्यौ सकलंजनानन्दकौ समगुणर्द्धी ।
अमृतशशिनाविवाब्धेरस्मात् कमलाश्रयादुदितौ ।। त०आ० (द्वादश भाग), पृ०४३३ ।
८. का० मा० ६१ के अन्तर्गत १८६७ ई० में शिवदत्त शर्मा द्वारा संपादित तथा ३२ वें अध्याय के ४५ वें श्लोक तक प्रकाशित । पूर्ण ग्रन्थ अभी उपलब्ध नहीं है ।
९. तन्त्रालोक, आह्निक ३७ उपसंहार–पद्य ८
१०. वही, पद्य–९
११. तन्त्रालोक, आह्निक ३७ उपंहसार पद्य ९
१२. वही, पद्य–१०
१३. वही, पद्य–११
१४. वही, पद्य–१९
१५. वही, पद्य–२३
१६. वही, पद्य–२५, ३६
१७. वही, पद्य–२६
१८. वही, पद्य–३८
१९. अलङ्कार–सर्वस्व विमर्शिनी, काशी संस्कृत ग्रंथमाला, २०६, पृ० ७५३

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२०. इह मम गतस्तन्त्रालोके विवेचयते यतो, निरवधिमभिप्रेतोत्साहः स एव निमित्तताम् । तन्त्रालोक द्वादश भाग, पृ० ४३२
२१. अलङ्कारसर्वस्व विमर्शिनी, पृ० २ ।
२२. तन्त्रालोक प्रथमाह्निक, अन्तिम पद्य ।
२३. वही, ३७ वें आह्निक के अन्त का परिचय, पद्य ४१
२४. वही, पद्य ३५
२५. वही, पद्य ४७
२६. तन्त्रालोक प्रथमाह्निक, पद्य–४७
२७. अलङ्कारोदाहरण–भण्डारकर प्राच्य विद्या संस्थान, पूना (डिस्क्रिप्टिव कैटलाग, जिल्द–१२)
२८. द्र० अलङ्कार–सर्वस्व, अतिशयोक्ति प्रसंग, पृ० २२४–२५ (काशी सं०ग्रं० मा० २०६)
२९. अलङ्कारसर्वस्व विमर्शिनी, पृ० ६८ काव्यमाला ।
३०. द्रष्टव्य– अलङ्कार–सर्वस्व, त्रिवेन्द्रम संस्क०, पृ० १७–१८, २२–२४, ३४–३५, ४५, ७०, ८१–८२, १०४, ११७, १३६, १४८, १५१, १६७, १८१, १८४, १९६, २०५, २१७ तथा २२६
३१. प्रद्युम्नाभ्युदय– (रविवर्मा–कृत), त्रिवेन्द्रम सं० सी० ८
३२. डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी ने अपनी अलङ्कार–मीमांसा में पृ० ७७ पर रवि वर्मा का समय १२६५ ई० बताया है । यह स्पष्ट नहीं किया है कि यह जन्म–समय है अथवा राज्यारोहण का । आगे निष्कर्ष ठीक निकाला है । लगता है बीच में कुछ छूट गया है। पुनश्च यही भूल डॉ० रेवा प्रसाद द्विवेदी कृत अलङ्कारसर्वस्व व्याख्या की भूमिका में पृ० १७ पर दुहराई गयी है, किन्तु इन्होंने भी समुद्रबन्ध का समय १३वी शताब्दी का उत्तरार्ध माना है ।
३३. द्रष्टव्य– अलङ्कारसर्वस्व, त्रिवेन्द्रम संस्क०, पृ० १०–१६
३४. वही, पृ० २२–२४
३५. द्रष्टव्य – अलङ्कारसर्वस्व, त्रिवेन्देम संस्क०, पृ० ३४–३५
३६. वही, पृ ४५

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३७. वही, पृ ७०
३८. वही, पृ ८१
३६. वही, पृ १०४
४०. वही, पृ ११७
४१. वही, पृ १३६
४२. वही, पृ १४६
४३. वही, पृ १५१
४४. वही, पृ १६७
४५. वही, पृ १८१
४६. वही, पृ १८४
४७. वही, पृ १६६
४८. वही, पृ २०५
४६. वही, पृ २१७
५०. वही, पृ ४८, ५८, ७६, १३३, १४६
५१. अलङ्कार–मीमांसा, पृ० ७५
५२. अनन्तशयन संस्कृत ग्रंथावली संख्या ८८ (त्रिवेन्द्रम से सन् १६३६ में प्रकाशित)
५३. त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज़, १४१
५४. वही, पृ ४३, १६५, १६८, २१७, २१८
५५. वही, पृ० ३१
५६. त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज़, पृ० २४६। किन्तु संग्रहकर्त्ता ने पृ० ३ पर दी गई कवियों की सूची में उक्त श्लोक सकलविद्याचक्रवर्ती का बताया है।
५७. 'सूक्तिरत्नहार आफ कलिंगराय सूर्य' जर्नल आफ ओरिएण्टल रिसर्च, मद्रास, वा० XIII पार्ट IV, पेज़ ३०१
५८. "सम फारगाटेन संस्कृत पोएट्स आफ कर्नाटक" बी०ओ०आर०आइ० वा० XXIII (सिल्वर जुबिली वा.) पेज–४२१
५६. पाण्डुलिपि संख्या आर १२८२६, गवर्नमेन्ट ओरिएण्टल मैनुस्कृप्ट लाइब्रेरी, मद्रास।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

६०. श्री वेंकटेश्वर ओरिएण्टल सीरीज़ नं० ६०, तिरुपति से १९५०
में प्रकाशित ।

६१. इति श्रीमत्सकलविद्याधरचक्रवर्तिचरणारविन्दशेखरस्य श्रीराजराजसूनोः
त्रिविक्रमभट्टस्य कृतौ कादम्बरीसारसंग्रहे प्रथमस्सर्गः ।
–वही, प्रथम सर्ग के अन्त की पुष्पिका ।

६२. रुक्मिणी कल्याण महाकाव्य, सर्ग प्रथम, श्लोक ५५–५६
–कु० एस०एस० जानकी द्वारा उद्धृत ।

६३. अलङ्कारसर्वस्व आफ रुय्यक विद संजीविनी आफ विद्याचक्रवर्तिन्,
कु०एस०एस० जानकी, पृ० ३७

६४. वही, पृ० २२

६५. अलङ्कारसर्वस्व आफ रुय्यक विद संजीविनी आफ विद्याचक्रवर्तिन्,
कु०एस०एस० जानकी, पृ० ११४

६६. संप्रदायप्रकाशिनी, पार्ट–१, त्रिवेद्रम् संस्कृत सीरीज, ८८, पृ० १९

६७. संप्रदाय प्रकाशिनी, पार्ट–२ त्रि०सं०सी० १००, पृ० २८९

६८. अलङ्कारसर्वस्व, पृ० २०१

६९. एतच्च संजीविनीसर्वङ्कषादावसकृदुक्तं तातपादैः ।
रत्नापंण, पृ० ३२

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तृतीय अध्याय

(क) अलङ्कार एवं ध्वनि

(सर्वस्व की भूमिका)

इस देश के मनीषियों ने काव्य को अकाव्य से व्यवच्छिन्न करने वाले जिन तत्त्वों का अनुसन्धान किया, संस्कृत काव्यशास्त्र में उनके नामकरण का एक मनोहर इतिहास प्राप्त होता है। यह इतिहास वैज्ञानिक भी है। अभिनवगुप्त ने साक्षात्कार की मानस-प्रक्रिया में वस्तु के प्रथम प्रतिबिम्ब को, आसपास स्थित अन्य पदार्थों के प्रतिबिम्बों से अछूता एवं 'स्व'-मात्र सीमित होते हुए भी समग्र माना था –

"चित्रं निरालम्बनमेव मन्ये प्रमेयसिद्ध्यै प्रथमावतारम् ।"

यह उक्ति संस्कृत-काव्य-चिन्तन पर चरितार्थ होती है। सर्वप्रथम भरत मुनि ने कहा- "रसः काव्यार्थः" अर्थात् काव्य की मूल भूत वस्तु रस है। इसे यों भी कह सकतें हैं कि काव्य ऐसी वस्तुओं को प्रस्तुत करता हैं, जिनमें सहृदयों का चित्त रमता है, जो प्रिय हैं तथा संवेदन को उद्बुद्ध कर देती हैं, जिससे हम अपनी प्रिय वस्तुओं का मानस और अभौतिक संभोग करते है। वस्तु-प्रतिबिम्ब हमारी चेतना पर अंकित होता है और बिम्बगत असाधारणता त्याग कर वह हमारे लिए एकमात्र प्रेयोविषय बन कर उपस्थित होता है। इसी (प्रेयोविषयीभूत) प्रतिबिम्ब घन के सुदीर्घ अंकन को काव्य प्रस्तुत करता है, जिससे सहृदयों को रसानुभूति होती है।

भामह, दण्डी तथा वामन आदि का अलङ्कार चिन्तन मौलिक है तथा ये ध्वनि-तत्त्व का अपने-अपने सम्प्रदाय-विशेष में अन्तर्भाव करते हैं। आनन्द- वर्धन के पश्चात् मम्मट और रुय्यक तक अलङ्कारों का स्वरूप व्यवस्थित होने के साथ-साथ विकसित हुआ एवं इन आचार्यों ने ध्वनिवाद को दृष्टि में रखते हुए अलङ्कारों का स्थान भी निश्चित किया। मम्मट-रुय्यक के पश्चात् अप्पय दीक्षित एवं पण्डितराज तक क़िसी आचार्य ने अलङ्कारों के छोटे-मोटे भेद या अभेद के आधार पर इनकी संख्या

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में वृद्धि या ह्रास किया। अलङ्कार विशेष के लक्षणों को लेकर विवाद हुआ, किन्तु इस काल में मौलिक और सूक्ष्म–रूप से उतना अलङ्कार–चिन्तन नहीं हुआ, जितना कि शास्त्रार्थ और परछिद्रान्वेषण। इस काल के कतिपय आचार्य अपवाद स्वरूप भी हैं जैसे कि पण्डितराज जगन्नाथ। इन्होंने अलङ्कार–चिन्तन करते हुए पूर्वतर्ती आलङ्कारिकों के मन्तव्य की मीमांसा की है तथा अनेक स्थलों पर मौलिक विचार भी प्रस्तुत किए हैं।

संस्कृत समीक्षाशास्त्र के ६ सम्प्रदाय है –

(१) रससम्प्रदाय (२) अलङ्कार–सम्प्रदाय
(३) रीतिसम्प्रदाय (४) ध्वनिसम्प्रदाय
(५) वक्रोक्तिसम्प्रदाय (६) औचित्यसम्प्रदाय

इन सम्प्रदायों के उद्भावक अथवा प्रमुख आचार्य क्रमशः भरत, भामह–उद्भट,[१] वामन, आनन्दवर्धन, कुंतक तथा क्षेमेन्द्र माने जाते हैं। अलङ्कारसर्वस्व के टीकाकार समुद्रबन्ध ने काव्य के स्वरूप निर्धारण में इन सम्प्रदायों का स्पष्ट संकेत किया है। वे काव्य का सामान्य लक्षण बताते हैं।

"विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्।"[२]

शब्दार्थ का यह वैशिष्ट्य मूल रूप से तीन प्रकार का हो सकता है– धर्म, व्यापार तथा व्यंग्य से–

"इह विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्। तयोश्च वैशिष्ट्यं धर्ममुखेन, व्यापारमुखेन, व्यंग्यमुखेन वेति त्रयः पक्षाः आद्येऽप्यलङ्कारतो गुणतो वेति द्वैविध्यम्। द्वितीयेऽपि भणितिवैचित्र्येण भोगकृत्वेन वेति द्वैविध्यम् इति पंचसु पक्षेषु आद्य उद्भटादिभिरङ्गीकृतः, द्वितीयो वामनेन, तृतीयो वक्रोक्तिजीवितकारेण, चतुर्थो भट्टनायकेन, पञ्चम आनन्दवर्धनेन ॥"

–समुद्रबन्ध, पृ० ३–४

उपर्युक्त त्रिविध पक्ष में पहला धर्ममूलक वैशिष्ट्य् दो प्रकार का है– नित्य और अनित्य। आचार्य वामन गुण को काव्य का नित्य धर्म मानते हैं। तथा अलङ्कार को अनित्यधर्म। इस प्रकार धर्ममूलक शब्दार्थ

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वैशिष्ट्य के आधार पर अलङ्कार सम्प्रदाय तथा रीतिसम्प्रदाय का परिगणन किया गया है। व्यापारमूलक वैशिष्ट्य भी दो प्रकार का है। आचार्य कुंतक ने काव्य में भङ्गीभणिति को प्रधान माना है। वे वक्रोक्ति सम्प्रदाय के उद्भावक हैं। आचार्य भट्टनायक ने अभिधा, भावना तथा भोग नामक तीन व्यापारों में अन्तिम व्यापार (जो रसचर्वणा रूप है) को प्रधान माना है [३]। आनन्द– वर्धन से पहले भरत मुनि के रस सूत्र की व्याख्या, लोल्लट, शंकुक आदि आचार्यों के मत की अपेक्षा भट्टनायक के सिद्धान्त द्वारा ही अधिक युक्तियुक्त रूप में हो पाती थी। सम्भवतः इसीलिए समुद्रबन्ध ने इस सम्प्रदाय का संकेत भोगव्यापारवादी भट्टनायक के आधार पर किया है। सर्वप्रथम आचार्य आनन्दवर्धन ने व्यंग्यमुखेन शब्दार्थ वैशिष्ट्य की व्याख्या की। समुद्रबन्ध की उपर्युक्त पंक्तियों में उद्धृत अन्ति मत में आनन्दवर्धन के ध्वनिसम्प्रदाय का संकेत है। समीक्षाशास्त्र के ये विभिन्न सम्प्रदाय सहृदय को आनन्द की, रस की अनुभूति क्यों और कैसे होती है – इसी की शास्त्रीय शब्दों में व्याख्या करते हैं।

महिमभट्ट का अनुमितिवाद भी शास्त्रीय दृष्टि से साहित्य–समीक्षा का एक प्रस्थान है। इस (अनुमिति) सम्प्रदाय का यह दुर्भाग्य है कि ध्वनिसम्प्रदाय की उद्भावना के पश्चात् उसका जन्म हुआ। इसीलिए सर्वस्वकार ने स्वतंत्र सम्प्रदाय के रूप में इसे मान्यता नहीं दी। समुद्रबन्ध के शब्दों में –

"व्यक्तिविवेककाराभिमतस्त्वनुमानपक्षः सिद्धान्तप्रदर्शनसमनन्तरं विचारासहत्त्वेन दूषितत्त्वात् मंखुकस्य पूर्वपक्षत्त्वेनाप्यनभिमत इत्याहुः।"

–समुद्र०, पृ. ८

समुद्रबन्ध का उपरोक्त वर्गीकरण दोषपूर्ण है। उनके तीन आधारों में से अन्तिम दो आधार व्यापारमूलक तथा व्यंग्यमूलक हैं। प्रश्न यह है कि भणिति तथा भोग, यदि व्यापार हैं, तो व्यंजना भी उसी प्रकार एक व्यापार है। फिर व्यंग्यमूलक वैशिष्ट्य को एक अलग आधार क्यों माना जाय ? कुंतक, वक्रोक्ति–"विचित्रैवाभिधा"– को, अलङ्कार्य शब्दार्थ

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का अलङ्कार[4] कहते हैं। अलङ्कारसम्प्रदाय के प्रथम आचार्य भामह ने वक्रोक्ति के संबंध में जो मत दिया है, उसी का प्रतिष्ठापन वक्रोक्तिजीवितकार ने किया है, तब इनके मत को प्रथम आधार (धर्ममूलक वैशिष्ट्य) से पृथक् क्यों रखा जाय ? इस प्रकार समुद्रबन्ध का वर्गीकरण दोषपूर्ण तो है किन्तु विभिन्न दृष्टिकोणों को जानने के लिए उसकी उपयोगिता अवश्य है।

जिस प्रकार भारतीय धर्म तथा दर्शन में विविधता में एकता तथा बाहय वृत्तिता (स्थूल दृष्टि) से अन्तःवृत्तिता उत्तरोत्तर विकसित हुई उसी प्रकार संस्कृत समीक्षाशास्त्र में स्थूल से सूक्ष्म अथवा बाह्य से आभ्यन्तर तत्त्व को ढूंढ़ने का प्रयास दृष्टिगोचर होता है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और अमरुक आदि संस्कृत के कुछ कवियों के काव्य रसपूर्ण होने के कारण अन्तर्मुखी चेतना को दर्शाते हैं तो माघ, भारवि और श्रीहर्ष के काव्यों में बहिर्मुखी चेतना की प्रधानता है। कवियों की भांति साहित्यालोचकों ने भी अलङ्कार गुण आदि काव्य के अनेक तत्वों की विवेचना के पश्चात् आत्मतत्त्व स्थानीय ध्वनि का प्रतिपादन किया। इसे ही काव्य की आत्मा माना गया। ध्वनि के त्रिविध अंगों में से वस्तु और अलङ्कार की अपेक्षा रस-ध्वनि को प्रधानता दी गई। हमारे दार्शनिकों ने जैसे ब्रह्म को रस कहा है – "रसो वै सः" उसी प्रकार साहित्य समीक्षकों ने रस को ब्रह्म माना है – 'रसो वै सः'।

रुय्यक ध्वनिवादी आचार्य हैं। उनका सिद्धान्त–पक्ष आनन्दवर्धन का ध्वनि सिद्धान्त है। वस्तु–ध्वनि, अलङ्कार–ध्वनि तथा रस–ध्वनि की त्रयी, ध्वनिवाद की प्रमुख स्थापना है, जिसमें रस को आत्मतत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इस त्रिविध व्यंग्य की अनुभूति व्यंजना व्यापार के माध्यम से होती है।

आनन्दवर्धन से पहले के आचार्यों ने यद्यपि ध्वनि गुणीभूतव्यंग्य आदि शब्दों से ध्वनितत्त्व की चर्चा नहीं की है किन्तु विभिन्न अलङ्कारों के निरूपण में ध्वन्यालोक में विवेचित गुणीभूतव्यंग्य के अनेक भेदों का विवेचन, उन्होंने प्रकारान्तर से किया था। वे व्यंग्य वस्तु को पर्यायोक्त आदि अलङ्कारों की कुक्षि में निक्षिप्त करना चाहते थे। ध्वन्यर्थ की अनुभूति तो वास्तविक

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है जो आदि कवि की रामायण से लेकर आज तक के काव्यों में परिलक्षित होता है। अलङ्कारवादी समीक्षकों ने भी इस अनुभवसिद्ध अर्थ (ध्वन्यर्थ) का अपलाप नहीं किया है, किन्तु उन्होंने ध्वनि [५] शब्द के द्वारा इस तत्त्व को हृदयंगम नहीं किया था, तथा आत्मा के रूप में उसे पहचान नहीं पाये थे। वे इसे शब्दार्थ शरीर से, चार्वाक की भांति अभिन्न मानते थे –

"वाच्यसंबलनाविमोहितहृदयैस्तु तत्पृथग्भावो विप्रतिपद्यते, चार्वाकैरिवात्मपृथग्भावः ...."

–लोचन पृ० ४५

परन्तु शब्दार्थ को जो काव्य का शरीर बताया गया हैं, इसमें शरीर शब्द का ग्रहण ही यह संकेत करता है कि इसको (शरीर को) अनुप्राणित करने वाला आत्मा इससे परे होना चाहिए। वह आत्मा ही ध्वनि है। जहाँ शब्द, अर्थ स्वयं को गुणीभूत करके प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं ऐसे काव्य को ध्वनिकाव्य माना जाता है। अनुप्रासादि शब्दालङ्कार तथा उपमा आदि अर्थालङ्कार केवल वाच्य और वाचक के चारुत्व हेतु हैं। अलङ्कार की अलङ्कारता वाच्यवाचक के उपस्करण द्वारा काव्यात्मा का उपस्करण करने से ही सार्थक होती है। इस दृष्टि से कटककुण्डल आदि लौकिक अलङ्कारों तथा उपमादि काव्यालङ्कारों में भेद है। लौकिकं अलङ्कार (हारादि) का अलङ्कार्य के साथ केवल संयोग सम्बन्ध होता है तथा ये अलङ्कार्य–परतन्त्र नहीं होते। उन्हें इच्छानुसार धारण किया जा सकता है और उतारा जा सकता है। ऐसा करने से शरीर या आत्मा की कोई हानि नहीं होती, किन्तु काव्य के अलङ्कारों का शब्दार्थ से संयोग सम्बन्ध नहीं होता, बल्कि ये (उपमादि अलङ्कार) शब्दार्थ के साथ समवेत होते हैं। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि अलङ्कारों और शब्दार्थ का अयुतसिद्ध संबंध है। [६] सर्वस्वकार का कथन है कि लौकिक अलङ्कार और काव्यालङ्कार का वैधर्म्य यह सूचित करता है कि इनमें से दूसरा (काव्यालङ्कार) स्वतन्त्र न होकर अलङ्कार्य–परतन्त्र [७] है। उद्भट के काव्यालङ्कारसार–संग्रह के टीकाकार प्रतिहारेन्दुराज का कहना है कि अलङ्कार का सम्यक् स्वरूप निर्धारण अलङ्कार्य परतन्त्रता द्वारा ही किया

CC0: Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जा सकता है। यदि ये अलङ्कार्य की परतन्त्रता से रहित हों तो स्वयं में अनलङ्कार हो जायेगें।

अलङ्कारस्य खलु अलङ्कारपरतन्त्रतया निरूपणे क्रियमाणे सुष्ठु स्वरूपं निरूपितं भवति स्वात्मनि अवस्थितस्य तस्यानलङ्कारत्वात्, समुद्गकस्थितहारकेयूरपारिहार्यादयलङ्कारवत्।

–लघु वृत्ति, पृ० २

इस प्रकार अलङ्कार (एवं गुण) सदा वाच्य–वाचक पर अथवा अभिधा पर आश्रित हैं जबकि ध्वनि वाच्य–वाचक–भाव से भिन्न, व्यंग्य भाव पर आश्रित है, इसलिए ध्वनि का अलङ्कारों में अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता। अभिनवगुप्त कहते हैं –

"गुणालङ्काराणां वाच्य–वाचकभावप्राणत्वात् अस्य च तदन्यव्यङ्ग्यव्यञ्जकभावसारत्वात् नास्य तेष्वन्तर्भावः।"

–लोचन, पृ० १०६

राजानक रुय्यक ध्वनिवादी हैं और इनका कहना है कि व्यंग्यार्थ काव्य का प्राण हैं, वह कभी भी अलङ्कार नहीं बन सकता। अलङ्कार सदा उपस्कारक रहते हैं तथा रसादि (प्रधान हाने के कारण) उपस्कार्य होते हैं–

"तस्माद् विषय एव व्यंग्यनामा जीवितत्त्वेन वक्तव्यः। यस्य गुणालङ्कारकृतचारुत्त्वपरिग्रहसाम्राज्यम्। रसादयस्तु जीवितभूता नालङ्कारत्वेन वाच्याः। अलङ्काराणामुपस्कारकत्त्वाद् रसादीनां च प्राधान्येनोपस्कार्यत्त्वात्।[६]

–अ०स०, पृ०२७

विमर्शिनीकार जयरथ का मन्तव्य है कि मुख्य वृत्ति से अलङ्कार का व्यपदेश उसी अवस्था में किया जा सकता है, जब वे (अङ्लकार) व्यंग्य अर्थ (रसादि रूप) का उपस्कारक बनें, क्योंकि अलङ्कार्य रूप में वही प्रतिष्ठित है। जहां व्यंग्यार्थ स्फुट न होने के कारण अलङ्कार केवल

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्दार्थ'–मात्र निबन्धन होते हैं वहां उनका उपयोग केवल उक्तिवैचित्र्य के रूप में है। अभिनवगुप्त का कथन है कि उपमादि अलङ्कार वाच्यार्थ के उपस्कारक भले ही हों, किन्तु उनका अलङ्कारत्त्व इसे (वाच्यार्थ को) अभिव्यक्ति का सक्षम माध्यम बना देने में ही है। हारादि लौकिक अलङ्कार यद्यपि शरीर पर धारण किये जाते हैं किन्तु वे अन्ततः आत्मा का ही उपस्कार करते हैं। निष्प्राण शरीर पर मनों आभूषण धारण करा देने पर भी चेतना के अभाव में ये अलङ्कार अनलङ्कार ही रहेंगे। 'मैं अलङ्कृत हूं' इस प्रकार का बोध यही सूचित करता है कि अलङ्कार्य वस्तुतः 'अहं' अर्थात् आत्मा है, काया नहीं। इस प्रकार स्पष्ट है कि ध्वनि ही काव्य की आत्मा है और यही सिद्धान्त सहृदय–हृदयावर्जक है–

"तस्माद् व्यंग्य एव वाक्यार्थीभूतः काव्यजीवितमित्येष एव पक्षो वाक्यार्थविदां सहृदयानावर्जकः।

–अ०स०, पृ० २७

जयरथ ने ध्वनि प्रकरण के अनुसार व्यंजना व्यापार के विरुद्ध विप्रतिपत्तियों की चर्चा की है एवं उन्हें बारह प्रकार का बताया है–

"तात्पर्याशक्तिरभिधा लक्षणानुमितिर्द्विधा
अर्थापत्तिः क्वचित् तन्त्रं समासोक्त्याद्यलङ्कृतिः।
रसस्य कार्यता भोगो व्यापारान्तरबाधनम्
द्वादशेत्थं ध्वनेरस्य स्थिता विप्रतिपत्तयः ।। "[10]

वि. पृ० २५

संक्षेप में ये बारह प्रकार के ध्वनि विरोधी निम्नानुसार हैं–

(१) तात्पर्य–मीमांसक (२) अभिधा–प्राचीन मीमांसक
(३–४) जहत्स्वार्था तथा अजहत्स्वार्था लक्षणा
(५–६) द्विविध अनुमान [11]– लिङ्ग को देखकर लिङ्गी तथा लिङ्गी को देखकर लिङ्ग का अनुमान। जैसे–कोकिल स्वर का अनुमान
(७) अर्थापत्ति– अनुमानवाद का ही दूसरा रूप जो सम्भवतः उद्भट को अभीष्ट था।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(८) तन्त्र– वक्ता के इच्छानुकूल भिन्न–भिन्न अर्थ।

(९) समासोक्ति आदि– प्राचीन आलङ्कारिक ।

(१०) रसकार्यता– रस निष्पत्ति के संबंध में उत्पत्तिवादी (लोलट आदि) आचार्यों का मत जिसकी चर्चा अभिनवगुप्त ने की है ।

(११) भोग–भट्ट नायक का मत ।

(१२) व्यापारान्तरबाधनम्–डॉ. राघवन मानते हैं कि यह मत वक्रोक्तिजीवितकार से सम्बद्ध है । वक्रोक्ति का अन्तर्भाव अलङ्कार पक्ष में ही हो गया है । [१२] ध्वनिकार ने उपर्युक्त मत में से अनेक पर विचार किया हैं । मम्मट ने अखण्डतार्थतावादी वैयाकरणों आदि अनेक आचार्यों के मत का विश्लेषण काव्य–प्रकाश के पांचवें उल्लास में किया है ।

राजनक रुय्यक ने भट्टनायक, कुंतक तथा महिमभट्ट आदि के मतों का पूर्वपक्ष के रूप में उल्लेख करके उनका खण्डन किया है । डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी [१३] ने इस पर विस्तार से लिखा है । मम्मट एवं रुय्यक द्वारा किये गये ध्वनिविरोधी मतों का खण्डन साहित्यशास्त्र के अध्येताओं को सुविदित ही है इसलिए प्रस्तुत प्रबन्ध में इसे दर्शाना इस लेखक को अनावश्यक लग रहा है, अतएव उसमें न जाकर ध्वनिवादी आचार्यों (विशेषकर रुय्यक) के अनुसार ध्वनि सिद्धान्त में अलङ्कार का क्या स्थान हैं – इसकी चर्चा यहां की जा रही है ।

रस-ध्वनि के उपासक ध्वनिकार ने काव्य की अंतिम कोटि में अलङ्कार निबन्धन को निक्षिप्त किया है । उनका अलङ्कार संबंधी विचार मुख्य रूप से रस के साथ उसके संबंध निर्धारण पर आधृत है । उनके अनुसार रस अंगी है औंर अलङ्कार उसके अंग हैं ।[१४] आनन्दवर्धन के अनुसार अलङ्कार-प्रयोग की कसौटी निम्नलिखित कारिका में दी गई है–

"रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत् ।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः ।।

– ध्वन्यालोक, २/१६

इसका तात्पर्य यह है कि रसादि ध्वनि में जिस अलङ्कार की रचना रस से आक्षिप्त हो (रस उसे स्वयं खींच ले) तथा जो

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(अलङ्कारयोजना) बिना किसी अन्य प्रयत्न के हो सके वहीं मान्य है। वहीं मुख्य रूप से रस का अंग होता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जिस अलङ्कार की रचना आयास पूर्वक की गई हो, रसाक्षिप्त न हो, ध्वनि में वह मान्य नहीं है।[१५] प्रतिभाशाली कवि को भी यमक जैसे शब्दालङ्कारों की योजना में आयास करना पड़ता है, अतः ध्वनिकार इन्हें रस का अंग मानने के पक्ष में नहीं हैं। इन्होंने काव्यालङ्कारों की उपमा कटकादि लौकिक अलङ्कारों से दी है, किन्तु रसाभिव्यक्ति के लिए वे इन्हें अन्तरंग मानते हैं, बहिरंग नहीं–

"तस्मान्न तेषां बहिरंगत्वं रसाभिव्यक्तौ।

–ध्वन्या०, पृ० १०७

ध्वनिकार के अनुसार वाच्यालङ्कार, अंगी रस की चारुता के हेतु हैं।[१६] ये चारुत्व–हेतु सीमित नहीं किये जा सकते, ये तो अनन्त हैं इसलिए अलङ्कारों को भी नियत नहीं किया जा सकता[१७]

"अनन्ता हि वाग्विकल्पास्तत्प्रकारा एव चालङ्काराः।

ध्वन्या०, ३/३७ पर वृत्ति।

आनन्दवर्धन तथा अभिनवगुप्त ने रस के साथ अलङ्कार का संबंध निर्धारण करते हुए यह स्पष्ट कहा था कि अलङ्कारों का अनावश्यक अनवसर एवं बिना विचारे विन्यास अलङ्कारत्त्व के लिए अनिष्टकारक है। अलङ्कारों का सोच समझकर किया गया निवेश ही उन्हें अलङ्कारत्व प्रदान करके सार्थक बना सकता है।[१८] शृंगार रस के प्रकरण में समीक्षापूर्वक अलङ्कार–विन्यास की चर्चा करते हुए ध्वनिकारं कहते हैं कि रूपकादि अलङ्कारों की विवक्षा रसपरत्वेन (रस को प्रधान मानकर) ही होनी चाहिए, प्रधान रूप से कदापि नहीं। उचित अवसर पर उनको अपनाना और त्यागना चाहिए, आदि से अन्त तक उनके निर्वाह का आग्रह नहीं करना चाहिए। यदि कहीं बिना आयास के आद्यन्त निर्वाह हो जाय तो भी वह अंग रूप में ही रहे प्रधान न होने पाये इस दिशा में सावधानी रखनी चाहिए। यही (समीक्ष्य विनिवेश) रूपकादि अलङ्कारों के अंगत्व का

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साधन है ।[१६] ध्वनिकार के इसी मत को क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रंथ औचित्यविचार–चर्चा में सिद्धान्त रूप में प्रतिष्ठित किया है। इन्होंने अलङ्कार का अलङ्कारत्व केवल उसी स्थिति में माना है जबकि उनका उचित स्थान पर विनिवेश हुआ हो–

"उचितस्थानविन्यासादलङ्कृतिरलङ्कृतिः"

औ० वि० च० ६

रुय्यक के ग्रंथ का मुख्य उद्देश्य है ध्वनि विरोधियों के मतों का खण्डन करके ध्वनि की पुनःस्थापना एवं ध्वनिवाद की दृष्टि से अलङ्कारों का विवेचन प्रस्तुत करना ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तृतीय अध्याय

(ख) अलङ्कारों का शब्दार्थोभय विभाग तथा इसका नियामक तत्व

अलङ्कारों का विभाजन मुख्य रूपसे शब्द तथा अर्थ के दो भागों में प्राचीन काल से किया जाता रहा है। ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने काव्य के तीन भेद किये हैं– ध्वनि, गुणीभूत–व्यंग्य तथा चित्र। आनन्दवर्धन द्वारा बताई गई काव्य श्रेणियों के अन्तर्गत, रसादि तात्पर्य से रहित अलङ्कारकाव्य को तृतीय श्रेणी यानि चित्रकाव्य में रखना होगा। उन्होंने इसे दो भागों में रखा है – शब्द चित्र तथा वाच्य चित्र। अनुप्रास, यमक खड्गबन्ध इत्यादि शब्द चित्र काव्य में आते हैं तथा उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कार वाच्य चित्र के अन्तर्गत आते हैं। आलेख्य–प्रख्य (चित्र के समान) तीसरी श्रेणी का यह काव्य मुख्य न होकर काव्यानुकार [20] है। काव्यमीमांसाकार ने अलङ्कार के शब्द और अर्थ के भेद को ध्यान में रखकर ही काव्य–कवि के आठ भेदों में अलङ्कार–कवि के दो भेद–शब्दालङ्कार कवि एवं अर्थालङ्कार कवि किये है –

"द्विधालङ्कारकविः शब्दार्थ–भेदेन।

काव्य–मी०, पृ० ४२

भरत ने जिन चार अलङ्कारों का उल्लेख किया है, उनमें यमक शब्दालङ्कार है और शेष तीन अर्थालङ्कार हैं। इसके पश्चात् भामह तथा उद्भट ने शब्दालङ्कारों में अनुप्रास तथा लाटानुप्रास को स्थान दिया तथा कुछ अर्थालङ्कारों की उद्भावना की जिनका उल्लेख प्रकृत प्रबन्ध में पहले किया जा चुका है। इनमें से किसी आचार्य ने न तो अलङ्कारों के विभाग का स्पष्टतः उल्लेख किया है और न ही उनका आधार बताया है। भामह के पूर्ववर्ती कुछ आचार्य शब्दालङ्कार को [21] तथा कुछ आचार्य अर्थालङ्कार [22] को श्रेष्ठ मानते थे। किन्तु भामह दोनों प्रकार के अलङ्कारों को समान महत्व देते थे [23] जिस प्रकार परवर्ती कवि माघ [24] ने दोनों पर समान जोर दिया है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अग्निपुराणकार भी शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार में से किसी एक को श्रेष्ठ मानने के पक्ष में नहीं था। उसे दोनों प्रकार के अलङ्कार समान रूप से मनोहर लगते थे –

केचिदर्थस्य सौन्दर्यमपरे पदसौष्ठवम् ।
वाचामलङ्क्रियां प्राहुस्तद्द्वयं नो मतं मतम् ।।

भामह कृत परिभाषा है– "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्" इनका मन्तव्य है कि अलङ्कार, शब्द और अर्थ के वक्रतापूर्ण सौन्दर्य पर आश्रित हैं। उन्हीं के शब्दों में –

"वाचां वक्रार्थशब्दोक्तिरलङ्काराय कल्पते ।

–काव्या० ५/६६

इस प्रकार भामह, अलङ्कारों को शब्द तथा अर्थ के दो भागों में विभक्त करने के पक्ष में थे और ये दोनों ही प्रकार उन्हें समान रूप से अभीष्ट थे। किन्तु भामह और उद्भट ने– इस विभाग का आधार क्या है – इसका निर्देश कहीं भी नहीं किया है। दोनों ही आचार्यों ने शब्द तथा अर्थ के अलङ्कारों को एक साथ वर्ग क्रम से लिखा है। उनमें कोई वैज्ञानिक वर्गीकरण का क्रम परिलक्षित नहीं होता। दण्डी ने यह निर्देश किया कि गुण दोष तथा अलङ्कार तीनों ही शब्दगत तथा अर्थगत होते हैं–

शब्दार्थालङ्क्रियाः चित्रमार्गाः सुकरदुष्कराः ।
गुणा दोषाश्च वाक्यानामिति संक्षिप्य दर्शिताः ।।

काव्यादर्श, ३/८६

काव्यादर्श के तृतीय परिच्छेद में शब्दालङ्कारों का भी विशद विवेचन किया गया है।

सारांश यह कि भामह और उनके अनुयायी उद्भट ने शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार का पृथक्–पृथक् विवेचन नहीं किया है, उन्हें एक साथ मिला कर रखा है। सर्वप्रथम दण्डी के काव्यादर्श में इनका पृथक् परिगणन प्राप्त होता है। यद्यपि दण्डी ने गुणों के शब्दगत तथा अर्थगत होने का

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निर्देश किया हैं, किन्तु इस विभाजन का विकसित विवेचन सर्वप्रथम वामन ने किया है। उन्होंने आश्रयाश्रयिभाव के आधार पर गुणों का विभाजन शब्दगत तथा अर्थगत रूप में किया। उन्होंने अलङ्कारों का विभाजन भी दो भागों में किया। आलङ्कारिक नामक चतुर्थ अधिकरण के पहले अध्याय में केवल शब्दालङ्कारों–यमक तथा अनुप्रास– [२६] का निरूपण किया गया है। दूसरे अध्याय में अर्थालङ्कारों का विवेचन है। वामन ने गुणों को शब्द तथा अर्थ का बताने के लिए आश्रयाश्रयिभाव सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। यद्यपि अलङ्कारों के विभाजन का भी आधार यही है, किन्तु वामन ने स्पष्टतः यह कहीं भी नहीं लिखा है। डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी का विचार है कि गुण हों या अलङ्कार दोनों के लिए ही आश्रयाश्रयिभाव का सिद्धान्त वामन को समान रूप से अभिमत है। [२८] वामन के अनुसार शब्दालङ्कार 'वाचकद्वार' है और अर्थालङ्कार 'वाच्यद्वार'। जिस प्रकार पदगत ओज शब्द गुण है, उसी प्रकार अनेकार्थ पद, यमक है जो शब्दालङ्कार है। साम्य अर्थतत्त्व. है, इसी के आधार पर उपमा की परिभाषा की गई है। [२९] अतः अलङ्कार को 'वाच्यद्वारक' कहा जा सकता है।

वामन के पश्चात् अग्निपुराणकार, भोज तथा प्रकाशवर्ष ने शब्दगुण तथा अर्थगुण का विवेचन करने के अतिरिक्त, जिसमें दोनों का सम्मिलन हों, उन्हें उभयगुण के रूप में निरूपित किया है। इसी प्रकार रुद्रट, भोज, तिलक, मम्मट, रुय्यक तथा विश्वनाथ ने अलङ्कारों का उभयभेद भी स्वीकार किया है। शताब्दियों से यह विवाद का विषय रहा है कि श्लेष अर्थालङ्कार है अथवा शब्दालङ्कार। इस संबंध में अपना मत अभिव्यक्त करते हुए रुद्रट ने श्लेष को उभयालङ्कार माना है – श्लेषोऽर्थस्यापि।[३०]

सरस्वतीकण्ठाभरण में भोज ने एक स्वतन्त्र परिच्छेद [३१] में उभयालङ्कार का विवेचन किया है जो एक पृथक् परम्परा का सूचक है। उन्होंने चौबीस उभयालङ्कारों का निरूपण किया है। भोज द्वारा निरूपित उभयालङ्कारों में से श्लेष और संसृष्टि को तो बाद में आलङ्कारिकों ने भी स्वीकार किया है, किन्तु अन्य अलङ्कारों को उभयालङ्कार नहीं माना

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। भोज के अनुसार यदि कोई शब्द, औपम्य या किसी अन्य अर्थ के बोध में सहायक है, तो ऐसे स्थलों में उभयालङ्कार ही माना जायगा–

शब्देभ्यो यः पदार्थेभ्य उपमादिः प्रतीयते ।
विशिष्टोऽर्थः कवीनां ता उभयालङ्क्रियाः प्रियाः ।।[३१]

–सरस्वतीकण्ठाभरण, ४/१

इस प्रकार भोज के काल तक अलङ्कारों के तीन विभाग किए जाते थे– शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार तथा उभयालङ्कार। किन्तु अलङ्कारों के उपरोक्त विभाजन का सिद्धान्त विकसित नहीं हुआ था, यद्यपि भोज से पहले वामन ने गुणों के विभाग (शब्दुण तथा अर्थगुण) को स्थिर करने के लिए अश्रयाश्रयिभाव को आधार बनाया था।

अलङ्कार विभाग के दो सिद्धान्त साहित्यशास्त्र में बहुचर्चित हैं। पहला है आश्रयाश्रयिभाव तथा दूसरा है अन्वयव्यतिरेकभाव। समुद्रबन्ध का कहना है कि उद्भट आदि प्राचीन आचार्य पहले सिद्धान्त के पक्षधर थे।[३२] इनके अनुसार अन्वयव्यतिरेकवाद युक्तिहीन होने के साथ–साथ प्राचीन आचार्यो के मन्तव्य के विपरीत भी है –

अन्वयव्यतिरेकपक्षे न केवलं युक्तिविरोधः उद्भटादिपूर्वाचार्य–विरोधोऽपि ।

सर्वस्वकार कहते हैं –

तस्मादाश्रयाश्रयिभावेनैव चिरन्तनमतानुश्रुतिः –

–अ०स० पृ० ५७

इससे स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि प्राचीन आचार्य आश्रयाश्रयिभाव के पक्षधर थे और उद्भट भी उनमें से एक थे। यद्यपि परम्परा उद्भट को इस सिद्धान्त का प्रतिपादक या समर्थक मानती है किन्तु उपलब्ध काव्यालङ्कारसार–संग्रह में ऐसा कोई संकेत नहीं प्राप्त होता जिससे उद्भट को इस सिद्धान्त का उद्भावक आचार्य कहा जाय। रुय्यक के पिता राजानक तिलक ने अन्वयव्यतिरेक तथा आश्रयश्रयिभाव दोनों मानदण्डों की चर्चा अपनी टीका विवृति में की है। उन्होंने उद्भट के पुनरुक्तवदाभास

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को उभयालङ्कार की श्रेणी में रखा है तथा अलङ्कारों के तीन भेदों का भी प्रतिपादन किया है।[३३] मम्मट और रुय्यक दोनों ही आचार्य उपर्युक्त सिद्धान्तों के विवेचन के लिए राजानक तिलक के ऋणी हैं। जयरथ का कथन है कि तिलक ने अपनी टीका विवृति [३४] में आश्रयाश्रयिभाव के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन किया है। काव्यालङ्कार सारसंग्रह की उपर्युक्त प्रकाशित टीका में यद्यपि आश्रयाश्रयिभाव शब्द नहीं आया है तथापि दो स्थलों पर इस सिद्धान्त का निरूपण प्राप्त होता है। [३५] रुय्यक अपने पिता राजानक तिलक के अनुयायी हैं और इन्होंने आश्रयाश्रयिभाव सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

मम्मट अन्वयव्यतिरेकभाव के पक्षधर आचार्यों में प्रमुख हैं। उनके अनुसार न केवल अलङ्कार अपितु दोष तथा गुण के भी (शब्द तथा अर्थ के) उभय विभाग का आधार अन्वयव्यतिरेकभाव है –

> **इह दोषगुणालङ्काराणां शब्दार्थगतत्वेन यो विभागः सोऽप्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामेव व्यवतिष्ठते।**[३६]

इस प्रकार स्पष्ट है कि दोनों सिद्धान्तों की चर्चा राजानक तिलक की विवृति में प्राप्त होती है, जिनमें से दूसरे (अन्वय) सिद्धान्त को मम्मट ने अपनाया तथा उसका विकास किया, जबकि रुय्यक ने पहले सिद्धान्त (आश्रया०) को स्वीकार किया है।

अन्वयव्यतिरेकभाव–

काव्यप्रकाशकार ने शब्दालङ्कारों या अर्थालङ्कारों के निर्णय का आधार अन्वयव्यतिरेक भाव को माना है। अन्वय का अर्थ है– एक की सत्ता में दूसरे की सत्ता "यत्सत्वे यत्सत्वमन्वयः" इसी प्रकार यदि कोई वस्तु किसी के न रहने पर न रहे तो उसे व्यतिरेक संबंध कहते हैं– यदभावे यदभावो व्यतिरेकः।

किसी शब्द विशेष के रहने पर अलङ्कार विशेष रहे और उसके हटते ही उस अलङ्कार का अभाव हो जाय तो उसे शब्दालङ्कार माना जायगा क्योंकि वह अन्वयव्यतिरेक भाव से नियन्त्रित होता है। इसके विपरीत

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदि किसी शब्द को हटाकर उसी अर्थ का दूसरा शब्द रख देने पर भी अलङ्कार बना रहे तो उसे अर्थालङ्कार माना जाता है –

योऽलङ्कारो यदीयावन्वयव्यतिरेकावनुविधत्ते स तदलङ्कारः ।।[३८]

–का० प्र० पृ० ५६५

अन्वयव्यतिरेकभाव को मानने वाले आचार्य मम्मट तथा उसके अनुयायियों का कहना है कि दूसरा (आश्रया०) एक अस्पष्ट सिद्धान्त है, जिसका स्वरूप अनिश्चित है । केवल शब्द या केवल अर्थ पर आश्रित अलङ्कार बहुत कम मिलेंगे । इसके अतिरिक्त सभी शब्दालङ्कारों का अर्थ से और सभी अर्थालङ्कारों का शब्द से सम्बन्ध रहता ही है । शब्द के बिना अर्थ हो ही नहीं सकता अतः आश्रयाश्रयिभाव के आधार पर अलङ्कारों का शाब्दत्व या आर्थत्व निश्चित नहीं किया जा सकता इसलिए आश्रयाश्रयिवाद को मानना युक्तियुक्त नहीं है। अन्वयव्यतिरेकवादी के अनुसार आश्रयाश्रयिभाव (अन्वय०) पर ही आधारित है –

योऽलङ्कारो यदाश्रितः स तदलङ्कार इत्यपि कल्पनायामन्वयव्यतिरेकावेव समाश्रयितव्यौ । तदाश्रयणमन्तेरण विशिष्टस्याश्रयाश्रयिभावस्या-भावादित्यलङ्काराणां यथोक्तनिमित्त एव परस्परव्यतिरेको ज्यायान् ।

– का० प्र०, पृ० ५६७

आश्रयाश्रयिभाव का सिद्धान्त–

राजानक रुय्यक का मन्तव्य है कि जो अलङ्कार, शब्द या अर्थ में से जिस पर आश्रित होता है, वह उसका अलङ्कार है– **"योऽलङ्कारो यदाश्रितः स तदलङ्कारः ।"** इस प्रकार यदि कोई अलङ्कार शब्द पर आश्रित है तो शब्दालङ्कार अर्थ पर आश्रित है तो अर्थालङ्कार ओर दोनों पर आश्रित है तो उभयालङ्कार माना जायेगा। कटकादि लौकिक अलङ्कारों पर भी यह बात घटित होती है । [३९] भुजा पर आश्रित होने के कारण ही कटक को इसका (भुजा का) अलङ्कार कहा जाता है । कुण्डल को कानों का तथा नूपूर को पैरों का अलङ्कार इसीलिए कहा जाता है कि ये कानों और पैरों में धारण किये जाते हैं, उन पर आश्रित हैं । सर्वस्व

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की वृत्ति में प्रयुक्त 'लोकवद्' पद को स्पष्ट करते हुए जयरथ ने लिखा है –

लोके हि योऽलङ्कारो यदाश्रितः स तदलङ्कारतयोच्यते, यथा कुण्डलादिः कर्णाद्याश्रितस्तदलङ्कारः ।

–वि०, पृ० २५७

सर्वस्वकार ने स्पष्ट रूप से कहा है कि शब्दादि के अलङ्कारत्व का नियमन केवल आश्रयाश्रयिभाव द्वारा ही किया जा सकता है। अन्वयव्यतिरेक को शब्दादि की अलङ्कारता का प्रयोजक मानने से श्रौतोपमा आदि को भी शब्दालङ्कार वर्ग में मानना पड़ेगा –

"लोकवदाश्रयाश्रयिभावश्च तत्तदलङ्कारनिबन्धनम् ।
अन्वयव्यतिरेकौ तु तत्कार्यत्वे प्रयोजकौ न तदलङ्कारत्वे ।
तदलङ्कारप्रयोजकत्वे तु श्रौतोपमादेरपि शब्दालङ्कारत्वप्रसङ्गात् ।"

अ० स०, पृ० २५६–२५७

विमर्शिनीकार ने रुय्यक की उपर्युक्त अवधारणा पर टीका करते हुए लिखा है कि यद्यपि शब्द, अर्थ तथा उभय के अलङ्कार शोभा की वृद्धि समान रूप से करते हैं तथापि कोई शब्द, अर्थ अथवा उभय का अलङ्कार किस आधार पर माना जाता है, इस प्रतिनियम का निर्णायक उसी प्रकार आश्रय श्रयिभाव है जैसे लौकिक अलङ्कारों का। जो अलङ्कार जिस पर आश्रित होता है उसे लोक में उसी का अलङ्कार (जैसे कटक आदि को हाथ पर आश्रित होने से हाथ का) कहते हैं, न कि सुवर्ण से निर्मित होने के कारण। इसी प्रकार अलङ्कारशास्त्र में भी शब्द, अर्थ आदि पर आश्रित रहने वाले अलङ्कारों को उन–उन (शब्द अर्थ तथा उभय) का अलङ्कार माना जाता है।[४०]

"लोके हि कर्णाश्रितः कुण्डलादिः कर्णालङ्कार उच्यते न पुनः सुवर्णकारणहेतुकत्वात्तदलङ्कारः ।"

–वि० पृ० १२४

विमर्शिनीकार इसे (आश्रया० को) उपस्कार्योपस्कारकभाव भी कहते

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं क्योंकि यह सिद्धान्त सौन्दर्य विधान के तत्व पर आश्रित है। जिस अलङ्कार द्वारा शब्द का उपस्करण होता है उसे शब्दालङ्कार तथा अर्थ का उपस्करण होने पर अर्थालङ्कार माना जायेगा –

"आश्रयाश्रयिभावेनेति । उपस्कार्योपस्कारकभावेनेत्यर्थः ।
तेन योऽलङ्कारो यदुपस्कारकः स तदलङ्कार इति पिण्डार्थः।
–वि०, पृ० २५७

पण्डितराज जगन्नाथ ने अन्वयव्यतिरेकभाव का खण्डन किया है। उनके अनुसार इससे आश्रय का ज्ञान नहीं बल्कि हेतु का ज्ञान होता है जिसका (हेतू का) अपने कार्य के साथ वैसा ही संबंध रहता है जैसे घट से दण्डादि का। दण्डादि में घट की सत्ता नहीं होती है, किन्तु शब्द तथा अर्थ में अलङ्कार की सत्ता रहती है। अतः अन्वयव्यतिरेक के द्वारा, किसी अलङ्कार का आधार शब्द है अथवा नहीं –यह नहीं जाना जा सकता–

"अन्वयव्यतिरेकाभ्यां हि हेतुत्वावगमो घटं प्रति दण्डदेरिवास्तु ।
न तु आश्रयत्वावगमः । स पुनस्तद्वृत्तिज्ञानत्वाधीनः ।
–रसगं० पृ० ४०२

निष्कर्ष यह है कि अन्वयव्यतिरेक सिद्धान्त तर्क प्रणाली के कार्य–कारण भाव पर आधारित है इसलिए काव्य के अलङ्कारों के विवेचन के लिए वह उपयुक्त सिद्धान्त नहीं हो सकता। आश्रयाश्रयिभाव का सिद्धान्त ही युक्तिसंगत एवं ग्राह्य सिद्धान्त है क्योंकि वह अलङ्कार द्वारा सौन्दर्य– विधान, उस सौन्दर्य की सहृदय द्वारा अनुभूति तथा कवि की विवक्षा पर आश्रित है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पादटिप्पणी

१. (क) अलङ्कारतन्त्रप्रजापतिभिर्भामहोद्‌भटप्रभृतिभिः ।

न्य० वि० का० (काशी), पृ० १८

(ख) इह हि भामहोद्‌भटप्रभृतयश्चिरन्तनालङ्कारकाराः ।

–अ० स०, पृ० ३

२. समुद्र०, पृ० ३

३. तत्राप्यभिधाभावकत्वलक्षणव्यापारद्वयोत्तीर्णो रसचर्वणात्मा भोगापरपर्यायो व्यापारः प्राधान्येन विश्रान्तिस्थानतयांगीकृतः ।

–अ०स०, पृ० ११

४. उभावेतावलङ्कार्यौ तयोः पुनरलंकृतिः ।
वक्रोक्तिरेव वैग्ध्यभंगीभणितिरुच्यते ।।

व०जी०, १, १०

५. देखिए रसगंगाधर, (निर्णय सागर), पृ० ५५४–५५५

६. देखिए, विमर्शिनी, पृ० २०

७. लौकिकालङ्कारवैधर्म्येण काव्यालङ्काराणामलंकार्यपारतन्त्र्यध्वननार्थम् ।

अ०स०, पृ०२०

८. वाच्यवाचकचारुत्वहेतुभ्य उपमादिभ्योऽनुप्रासादिभ्यश्च विभक्त एव ध्वनेर्विषय........।

ध्वन्यालोक, कारिका, १/१३, पर वृत्ति ।

९. दे० वि०, पृ० ३१–३२

१०. इस पद्य का लेखक कौन था यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है ।

११. द्विविध अनुमान से लेखक का क्या अभिप्राय था, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है ।

१२. भोजराज़ शृंगार–प्रकाश, पृ० १४६–५०

१३. दे०, अ०स० मीमांसा, पृ० १३०–३७

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१४. अगांश्रितास्त्वलङ्कारा मन्तव्याः कटकादिवत् । २/६/ (ध्वन्य०)

१५. निष्पत्तावाश्चर्यभूतोऽपि यस्यालङ्कारस्य रसाक्षिप्ततयैव बन्धः शक्य–क्रियो भवेत् सोऽस्मिन् अलक्ष्यक्रमव्यंग्ये ध्वनावलङ्कारो मतः। तस्यैव रसाङ्गत्वं मुख्यमित्यर्थः।
ध्वन्या०, २/१६, की वृत्ति।

१६. अलङ्कारो हि बाह्यालङ्कारसाम्यादंगिनश्चारुत्वहेतुरुच्यते।
ध्वन्या० २/१७ की वृत्ति।

१७. इस संबंध में दण्डी का कथन है –"ते चाद्यापि प्रकल्प्यन्ते, कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति।"

१८. ध्वन्यात्मभूते शृंगारे समीक्ष्य विनिवेशतः।
रूपकादिरलङ्कारवर्ग एति यथार्थताम्॥
ध्वन्या०, २/१७

१९. विवक्षा तत्परत्वेन नाङ्गित्वेन कदाचन।
काले च ग्रहणत्यागौ नाति निर्वहणैषिता॥
निर्व्यूढावपि चाङ्गत्वे यत्नेनप्रत्यवेक्षणम्।
रूपकादिरलङ्कारवर्गस्याङ्गत्वसाधनम्॥
ध्वन्या०, २/१८, १९

२०. चित्रं शब्दार्थभेदेन द्विविधं च व्यवस्थितम्।
तत्र किञ्चच्छब्दचित्रं वाच्यचित्रमतः परम्॥
ध्वन्या०, ३/४३

२१. रूपकादिरलङ्कारस्तथान्यैर्बहुधोदितः।–काव्या, १/१/१३

२२. रूपकादिमलङ्कारं बाह्यमाचक्षते परे।
सुपां तिङांच व्युत्पत्तिं वाचां वाञ्छन्त्यलङ्कृतिम्।
–वही, १/१/१४

२३. शब्दाभिधेयालङ्कारभेदादिष्टं द्वयन्तु नः।
–वहि, १/१/१५

२४. शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते॥
–शिशुपाल०, २/८६

२५. डे, कॉन्सेप्ट आफ रीति एण्ड गुण, पृ० ८४ तथा १०८

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२६. तत्र शब्दालङ्कारौ द्वौ यमकानुप्रासौ । –का० सू०, पृ० ४/१
२७. सम्प्रत्यर्थालङ्काराणां प्रस्तावः । वही, ४/२
२८. देखिए अलङ्कार–सर्वस्व–मीमांसा, पृ० १५८
२६. देखिए का० सू०, पृ० ४/२/१
३०. शब्दालङ्कार एवायं श्लेषो नत्वर्थालङ्कारोऽपीति तं प्रत्याह श्लेषोऽर्थस्यापि ।

–नमिसाधु पृ० १५ काव्या०

३१. इस पर जगद्धर की टीका का पृ० ३६६ भी द्रष्टव्य है ।
३२. काव्यप्रकाश के टीकाकार सारबोधिनीकार ने उद्भट को अन्वयव्यतिरेकवाद का समर्थक बताया है–सारबोधिनीकारस्तु–उद्भटाचार्यमते अप्यैवमिति दर्शयति योऽलङ्कार इति ।

–(का० प्र० झलकीकर), पृ० ७६८

३३. तत्र आदयः (पुनरुक्तवदाभासः) उभयस्य शब्दस्यार्थस्य च । ततस्त्रयः शब्दस्य । शेषास्त्वर्थस्यालङ्काराः । –विवृति, पृ० १
३४. एतच्चोद्भटविवेके राजानकतिलकेन सप्रपञ्चमुक्तम् । –विमर्शिनी, पृ० २५७
३५. उक्त दोनों स्थल निम्नलिखित हैं –

(अ) अत्र शब्दमुखेनार्थस्य विचित्रत्वेऽपि मुख्यतः कविप्रतिभासंरम्भगोचरस्य शब्दस्य वैचित्र्यमिति शब्दालङ्कारत्वं युक्तं ग्रन्थगौरवभयात्तु न प्रतनुमः । किञ्चत्तु श्लेषस्थाने वक्ष्यामः । विवृति, वृ० ११

(ब) एवं चेह चतुर्थं रूपकं श्लेषव्यतिरेकश्च यदुक्तं तस्योक्तनयेन शब्दालकृङ्ारत्वमेव युक्तम् । एवमादौ शब्दमूलालङ्कारो न शब्दास्यालङ्कार इति चेत् उक्तमत्र वैचित्र्यमलङ्कार इति । यद् वैचित्र्यं तस्यालङ्कार इति यथोक्तमेव साधु ।

– विवृत्ति पृष्ठ ४०

३६. श्री विद्या चक्रवर्ती ने इस पर टीका करते हुए लिखा है–इह हि न केवलं अलङ्काराणां यावता दोषादीनां सर्वेषामेव धर्माणां यो विभागः स तत्तच्छब्दार्थान्वयव्यतिरेकाभ्यामेव व्यवस्थितिं लभते ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—सं० प्र० (द्वितीय भाग), (अनन्तशयनं), पृ० २२८–२२९

३७. सति शब्दे शब्दालङ्कारोऽस्ति। असति नास्तीत्यादि भावानुभावानु-विधानम् । सं० प्र० (द्वितीय भाग), पृ० ४२७

३८. काव्यानुशासन (नि० सा०), पृ० ३५१ तथा का०प्र० (अनन्तशयनम्) पृ० ४२७ का पांठ निम्नलिखित है —भावाभावावनविधत्ते अतः अन्वयव्यतिरेकवाद के अतिरिक्त भावाभाववाद को भी इस सिद्धान्त की संज्ञा दी जा सकती है ।

३९. (अ) अलङ्कार्यालङ्करणभावस्य लोकवदाश्रयाश्रयिभावेनोपपत्तेः।
(ब) आश्रयाश्रयिभावेनालङ्कारत्वस्य लोकवद् व्यवस्थानात् ।
—अ०स०, पृ० १२४

४०. वि०, पृ० २५७

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्थ अध्याय
औपम्य मूलक अलङ्कार

नाट्यशास्त्र में भरत ने अलङ्कारों की गणना में उपमा को सर्वप्रथम रखा था।[१] उसके बाद से आज तक वे आचार्य किसी न किसी अलङ्कार को प्रधानता देते रहे हैं। भामह वक्रोक्ति तथा अतिशयोक्ति को प्रधानता देते हैं तो दण्डी ने काव्य को स्वभावोक्ति एवं वक्रोक्ति में विभाजित करते हुए[२] श्लेष को वक्रोक्ति की श्रीवृद्धि में कारण माना था।[३] उन्होंने हेतु सूक्ष्म तथा लेश अलङ्कारों को भी वाणी का उत्तम भूषण कह कर इनकी प्रशंसा की है।[४] वामन ने प्रतिवस्तु आदि अनेक अलङ्कारों को उपमा का ही प्रपंच बताया है।[५] रुद्रट ने अर्थालङ्कारों के चार मूल तत्व माने हैं - वास्तव, औपम्य, अतिशय तथा श्लेष।[६] अनेक अलङ्कारों को उन्होंने औपम्य के ही भेद के रूप में स्वीकार किया है कुन्तक ने वक्रोक्ति को व्यापक काव्य तत्व के रूप में प्रतिष्ठित किया तथा साथ ही वे उत्प्रेक्षा[८] व अतिशयोक्ति जैसे अलङ्कारों को प्रथमोल्लेख के लिए जीवातु मानते हैं। महिमभट्ट ने 'सर्वेष्वलङ्कारेषूपमा जीवितायते' कह कर उपमा के महत्व को माना है। रुय्यक ने अनेक स्थलों पर यह निर्देश किया है कि बहुत से अर्थालङ्कारों का मूलतत्व उपमा है।[९] विद्यानाथ[१०] ने अपने ग्रन्थ प्रतापरुद्रयशोभूषण तथा विद्याधर[११] ने एकावली में, उपमा के संबंध में रुय्यक का अनुसरण किया है। पश्चाद्वर्ती आचार्य अप्पयदीक्षित ने उपमा को सर्वाधिक महत्व दिया है। इस संबंध में उनकी दो उक्तियां देखने योग्य हैं -

उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान् ।
रंजयति काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः ।। चित्रमी० पृ०६

तथा- तदिदं चित्रं विश्वं ब्रह्मज्ञानादिवोपमाज्ञानात् ।
ज्ञातं भवतीत्यादौ निरूप्यते निखिलभेदा सा ।। चित्रमी० पृ०६

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री केशव मिश्र ने राजशेखर का श्लोक उद्धृत किया है, जिसके अनुसार उपमा कवियों की माता, काव्य सर्वस्व तथा अलङ्कार शिरोरत्न है -

अलङ्कारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम् ।
उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम ।।

अलङ्कार शेखर, पृ० ३२ पर उद्धृत ।

प्राचीन आचार्यों में से अनेक ने उपमा के बहुत से भेदोपभेद किए हैं तथा अनेक अलङ्कारों का अन्तर्भाव उसी में कर दिया है । उनकी यह प्रवृत्ति इस बात की परिचायिका है कि उपमा ही अलङ्कारों का प्राण है - "**प्राणत्वेनावतिष्ठते** ।"[२] अलङ्कार-सम्प्रदाय के इतिहास का अवगाहन करने पर यह तथ्य उजागर होता है कि वामन से पहले के आचार्यों ने उपमा का विवेचन तो किया है किन्तु उसके उतनी प्रधानता नहीं दी है जितनी वामन और उनके पश्चाद्वर्ती आचार्यों ने दी है । काव्यप्रकाश में उपमा के अनेक भेद-प्रभेद किए गये हैं । रुय्यक ने कहा है–"उपमैवानेकालङ्कारबीजभूता" । सम्भवतः इन्ही दोनों आचार्यों से प्रभावित होकर शोभाकर, हेमचन्द्र, वाग्भट, जयदेव, अप्पय दीक्षित आदि परवर्ती आलङ्कारिकों ने स्वभावोक्ति, वक्रोक्ति, अतिशयोक्ति और श्लेष जैसे अलङ्कारों को विशेष महत्व न देकर उपमा की प्रशंसा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में की है । अधिकांश अलङ्कारों में व्यापक तत्व, औपम्य है । अलङ्कार सम्प्रदाय का जैसे-जैसे विकास हुआ वैसे-वैसे अतिशय और वक्रता का महत्व कम होता गया । 'ध्वन्यालोक-लोचन' में आचार्य अभिनवगुप्त ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि अतिशयोक्ति को सर्वालङ्कारसामान्य अथवा काव्य का प्राण नहीं माना जा सकता । उनके अनुसार अतिशय तत्व का महत्व अवश्य है, किन्तु औचिती उसकी अपेक्षा अधिक व्यापक काव्य-तत्व है, इसलिए इसे ही काव्यजीवित मानना तर्कसंगत है -"यदि तावदतिशयोक्तेः सर्वालङ्कारेषु सामान्यतारूपता सा तर्हि तादात्म्यपर्यवसायिनीति। तद् व्यतिरिक्तो नैवालङ्कारो दृश्यते इति कविप्रतिभानं न तत्रापेक्षणीयं स्यात्। अलङ्कार मात्रं च न किंचित्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दृश्यते । अथ सा काव्यजीवितत्वेन तु विवक्षिता। तथाप्यनौचित्येऽपि निबध्यमाना तथा स्यात् । औचित्यवती जीवितमिति चेद् औचित्यनिबन्धनं रस भावादिमुक्त्वा नान्यत् किंचिदस्तीति तदेवान्तर्भासि मुख्यं जीवितमभ्युपगन्तव्यं नतु सा ।" (लोचन)

औपम्य का स्वरूप

साहित्यशास्त्र का एक महत्वपूर्ण तत्व है 'सादृश्य' । इतिहासादि की भांति वस्तु का यथावत् वर्णन करना कवि का उद्देश्य नहीं होता है। ध्वन्यालोक में आनन्दवर्धन ने लिखा है कि इतिवृत्त के वर्णन मात्र से कोई कवि कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता है --

न हि कवेरितिवृत्तमात्रवर्णनेन आत्मपदलाभः । इतिहासादेरेव तत्सिद्धेः।

प्राचीन आलङ्कारिकों ने इस प्रकार के वर्णन को 'वार्ता' कहा है- वार्तामेनाम् प्रचक्षते। एक कुशल कवि यदि मुख का वर्णन करना चाहता है तो वह मुख का बाह्य और स्थूल वर्णन न करके मुखदर्शन से उत्पन्न अपनी सौन्दर्य भावना को अभिव्यक्त करता है। अलङ्कार वर्णन की शैली ही तो है, कवि अपनी प्रतिभा से ऐसी वर्णन शैली (अर्थात् उपयुक्त अलङ्कार) का आश्रय लेता है कि वर्ण्य-विषय सजीव हो उठता है ।

इस विषय में रुय्यक का कथन है कि कवि समर्पित धर्म की वर्णना अलङ्कार है । वस्तु के स्थूल सौन्दर्य से भिन्न है कवि की यह सौन्दर्य-भावना, उनकी पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

कविसमर्पितानां धर्माणां ह्यलङ्कारत्वात् ।
न हिमांशुलावण्यादीनामिव वस्तुसन्निवेशिनाम् ।।"

अ०स०, पृ० २६८

वस्तु की सौन्दर्य भावना को उभारने में कवि की वर्णना ही समर्थ होती है । तभी तो किसी प्राचीन आचार्य ने कहा है -

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"यानेव शब्दान् वयमुल्लिखामः
यानेव चार्थान् वयमालपामः ।।
तैरेव विन्यासविशेषभव्यैः
सम्मोहयन्ते कवयो जगन्ति ।।"

भाविक अलङ्कार के प्रसंग में रुय्यक भी यही कहते हैं -

"इह क्वचिद्वर्णनीयस्य वर्णनवशादेव प्रत्यक्षायमाणत्वम् ।"

अ०स०, पृ० २२६

रुद्रट ने कहा है कि औपम्य के द्वारा कवि एक वस्तु से स्वरूप में समान दूसरी वस्तु का बिम्ब उपस्थित कर देता है। उनके द्वारा दी गई औपम्य की परिभाषा द्रष्टव्य है-

सम्यक् प्रतिपादयितुं स्वरूपतोवस्तु तत्समानमिति ।
वस्त्वन्तरमभिदध्यात् वक्ता यस्मिंस्तदौपम्यम् ।।

काव्यालङ्कार, ८/१

कवि जब मुख की सुन्दरता का वर्णन करता है तो कमल, चन्द्रमा आदि ऐसी वस्तुओं से मुख का सादृश्य बताता है जो अपने सौन्दर्य के लिए लोक में जाने जाते हैं। इसीलिए औपम्य के लिए यह आवश्यक होता है कि उपमान सदा प्रसिद्ध हो। यदि अप्रसिद्ध वस्तु से सादृश्य दिखाया जायेगा तो वह सहृदयहृदय का स्पर्श नहीं कर सकता, अतः उसे दोष पूर्ण माना जाता है।

यह सादृश्य कई बार निषेध अपह्नव, अतिशय, कार्य-कारण-भव आदि के द्वारा आता है। रुय्यक के वर्गीकरण का यदि अवलोकन करें तो यह ज्ञात होगा कि सादृश्य का बोध विभिन्न रूपों से हो सकता है। सर्वप्रथम सादृश्य (यानि औपम्य) वाच्य या गम्यमान (अर्थात् निगूढ़) माना जा सकता है। जैसे उपमालङ्कार में जब मुख को चन्द्रमा के समान बताया जाता है, तो औपम्य निगूढ नहीं बल्कि स्पष्ट रहता है, किन्तु तुल्ययोगिता दीपक एवं समासोक्ति में प्रस्तुत और अप्रस्तुत की यह सहधर्मिता प्रकारान्तर से अभिव्यक्त होती है। समासोक्ति में मानो नायक, नायिका के व्यवहार

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का स्पष्ट रूप में वर्णन नहीं करता है उसे कार्य या विशेषण में निगूढ़ रखता है। अतः जहां कवि की वर्णना का उद्देश्य साक्षात् सादृश्य होता है वहां वह औपम्य को वाच्य रखता है। वाच्यौपम्य वाले अलङ्कारों में उपमा प्रधान है।

दण्डी ने ठीक ही कहा है कि संसार में कोई दो वस्तुएं पूर्णतया समान नहीं होती हैं किन्तु जिस किसी तरह से कुछ भी समानता जहाँ स्फुट व्यक्त होती है उसका नाम उपमा है।

यह ऐसा प्रसंग है कि यदि इस पर विस्तार से प्रकाश डाला जाय तो एक लघु शोध प्रबन्ध बन जायेगा। अतः अब उपमा मूलक अलङ्कारों का संक्षिप्त इतिहास देते हुए रुय्यक एवं उनके टीकाकारों के मन्तव्य की मीमांसा करनी उचित होगी।

अर्थालङ्कारों में उपमा का ही विवेचन सर्वप्रथम क्यों किया जा रहा है, इस विषय में रुय्यक की पंक्ति द्रष्टव्य है-

"उपमैवानेकप्रकारवैचित्र्येणानेकालङ्कारबीजभूतेति प्रथमं निर्दिष्टा।"

इसी की व्याख्या करते हुए श्री विद्या चक्रवर्ती ने उदाहरणों द्वारा सिद्ध किया है कि कैसे उपमा ही बहुत से अलङ्कारों का बीजभूत है - यहां पर उनकी उन पंक्तियों को उद्धृत करना सर्वथा उचित प्रतीत होता है -

"मुखं चन्द्र इवेत्युपमा, मुखं मुखमिवेत्यनन्वयः। मुखं चन्द्र इव स तदिवेत्युपमेयोपमा। दृष्ट्वा मुखं चन्द्रमनुस्मरामिति स्मरणम्। मुखमेव चन्द्र इति रूपकम्। मुखचन्द्रेण तापः परिशाम्यतीति परिणामः। किं चन्द्र आहोस्वित् पद्ममिति सन्देहः। चन्द्र इति चकोरा नन्दन्तीति भ्रान्तिमान्। चन्द्र एव न मुखमित्यपह्नुतिः। नूनं चन्द्र इत्युत्प्रेक्षा। चन्द्रः पश्येत्यतिशयोक्तिः। अस्यां प्राविषि मुखं चन्द्रबिम्बं च विच्छायमित्येका तुल्ययोगिता। शरदि रम्यमिति त्वन्या। इदं च तच्च रम्यमिति दीपकम्। मुखमेव रम्यं चन्द्र एव हृद्य इति प्रतिवस्तूपमा। भुवि मुखं दिवि चन्द्र इति दृष्टान्तः। मुखदूषणं चन्द्रमसो मलिनीकरणमिति निदर्शना। चन्द्रादधिकं मुखं मुखादधिकश्चन्द्र इति व्यतिरेकः।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चन्द्रेण सह मुखमिति सहोक्तिः। न मुखेन विना चन्द्रः समीचीन इति विनोक्तिः। कलाभिरामं पूर्णं मुखमिति समासोक्तिः। कलाभिरामौ मुखचन्द्राविति श्लेषः। नमस्ते चन्द्र प्रसन्नोऽसीत्यप्रस्तुतप्रशंसा। मुखे रोषो न दोषः, न हीन्दोर्निन्दायै कलङ्करेखेत्यर्थान्तरन्यासः।"

उपमा अलङ्कार में प्रमुख तत्व हैं उपमेय, उपमान, साधारण धर्म तथा उपमा वाचक शब्द। यहाँ इनके संबंध में कुछ लिखना सर्वथा अपेक्षित है। कुछ आचार्यों का मन्तव्य है कि उपमान सदैव उपमेय से उत्कृष्ट गुण वाला होता है और उपमेय उनकी तुलना में हीन गुण वाला। चन्द्रमा से मुख की उपमा इसीलिए दी जाती है कि चन्द्र अधिक सुन्दर है। आचार्य वामन की निम्नलिखित पंक्ति में यही बात कही गई है-

उपमीयते सादृश्यमानीयते येनोत्कृष्टगुणेनान्यत् तदुपमानं, यदुपमीयते न्यूनगुणं तद् उपमेयम्।

का०अ० सू० वृत्ति, पृ० ५४

रुय्यक के टीकाकार श्री विद्या चक्रवर्ती ने भी यही कहा है-

"उपमिमीते साधर्म्यं नयतीत्युपमानमप्राकरणिकोऽर्थः। तच्च नियमेनाधिकगुणमेव भवति गुणाधातृत्वात्। उपमीयते साधर्म्यं नीयते इत्युपमेयं प्राकरणिकोऽर्थः। तच्च नियमेनाधेयगुणत्वान्यूनगुणमेव भवति।

संजी०, पृ० ३८

श्री विद्याचक्रवर्ती के अनुसार अप्राकरणिक अर्थ (उपमान) प्राकरणिक अर्थ (उपमेय) में गुणाधान करता है इसलिए वह सदैव श्रेष्ठ गुण वाला होता है और उपमेय हीन गुण वाला, क्योंकि गुणाधान उसी में होता है डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी ने ठीक ही कहा है कि वामन तथा श्री विद्या चक्रवर्ती का यह मत तर्कसंगत नहीं है।[१४] कवि की प्रवृत्ति उपमेय में गुंण का आधान करने के लिए नहीं होती है, बल्कि वह अपने उपमेय का सदृश उपमान पाना चाहता है जिससे उपमेय के सम्पूर्ण सौन्दर्य को बिम्ब विधा से उद्घाटित कर सके। गोस्वामी तुलसीदास की चौपाइ। 'उपमा खोजि, खोजि कवि लाजे' में कवि की उपमान ढूंढने की इसी मानसिक

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रक्रिया का अवलोकन होता है। मेघदूत का कान्ता-विरह में आकुल यक्ष जब अपनी प्रेयसी के रूप सौन्दर्य और भाव सौन्दर्य के लिए उपमान ढूंढ़ने की कल्पना करता है, तो पहले पहल उसे उसके (प्रिया के) अंग की समता श्यामा लताओं में, दृष्टिपात की हरिणी के नयनों में, मुखकान्ति की चन्द्रमा में, केश पाश की मयूरों के चित्र-विचित्र पंखों में, भ्रू विलास की स्रोतस्विनी की तरल तरंगों में दिखायी पड़ती है किन्तु अन्त में वह अनुभव करता है कि ये सारे सादृश्य[१५] कहीं एक साथ नहीं मिलते। कवि की सादृश्य ढूंढने की इस प्रक्रिया और अन्त में उसकी निराशा से यह तथ्य उजागर होता है कि वह उपमेय को हीन गुण नहीं मान रहा है, वास्तव में जिस लावण्य को उसने देखा था उसका विशद् रूप से सहृदयों को अनुभव करा देना ही उसका उद्देश्य है और इसी के लिए वह विभिन्न उपमानों का आश्रय लेता है।

साधारण धर्म

किसी पदार्थ में रहने वाले गुण को 'धर्म' कहते हैं। वह सदैव किसी पदार्थ पर आश्रित होता है, उसकी स्वतः स्थिति होती है, किन्तु पृथग् स्थिति नहीं होती। 'धर्म' इसीलिए साधारण कहा जाता है क्योंकि इसकी उपमानोपमेय दोनों में समान रूप से स्थिति होती है। जाति-गुण-क्रिया तथा द्रव्य के रूप में धर्म चार प्रकार का होता है। कोई भी धर्म धर्मी बन सकता है और इसी प्रकार धर्मी धर्म बन सकता है। जयरथ के अनुसार आश्रय, धर्मी है और आश्रयी धर्म -

"धर्मिधर्मभावस्याश्रयाश्रयिभावेन भावात्"

वि०, पृ० ३२

तीन रूपों में साधारण धर्म का निर्देश किया जा सकता है अनुगामी रूप में, वस्तु प्रतिवस्तु भाव के रूप में तथा बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव के रूप में। अनुगामी रूप में साधारण धर्म तब होता है जब उपमेय तथा उपमान में एक रूप से रहता है। साधारण धर्म एक होने पर भी भिन्न-भिन्न वाक्यों में जब पृथक् शब्दों से निर्दिष्ट रहता है तो उसे वस्तु प्रतिवस्तु

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाव कहते हैं । यदि उपमेय वाक्य तथा उपमान वाक्य में धर्म भिन्न-भिन्न हो तो वह बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव कहलाता है ।[९६] रुय्यक ने इस आधार पर उपमा तथा अन्य अनेक अलङ्कारों के भेद किये हैं जिनका जयरथ ने अपनी विमर्शिनी में विस्तार किया है ।[९७] सर्वस्व के सभी टीकाकार यह कहते हैं कि रुय्यक ने ही सबसे पहले उपमा के तीन भेदों की उद्भावना की है ।[९८] जयरथ ने रुय्यक के सिद्धान्त सूत्र को लेकर अधिकांश सादृश्यालङ्कारों में साधारण धर्म की इस त्रिविधता पर आधारित भेदों का विवेचन उदाहरण पूर्वक किया है, जिनकी व्याख्या यथा स्थान प्रस्तुत प्रबन्ध में की गई है । साधारण धर्म का निर्देश दो प्रकार से हो सकता है[९९] सकृत् और असकृत् । पहले को अनुगामितया अथवा ऐक्यरूपेण निर्देश भी कहा जा सकता है । सर्वस्वकार ने दूसरे को वस्तु प्रतिवस्तुभावेन पृथक् निर्देश कहा है । इसमें जब साधारण धर्म का दो बार निर्देश होता है तो उन दोनों में शाब्दिक या वास्तविक भेद में से कोई एक अवश्य होगा । जहां केवल शाब्दिक भेद होता है वहां साधारण धर्म इसलिए भिन्न प्रतीत होते हैं कि उनके संबंधी पृथक्-पृथक् होते हैं । जहां वास्तविक भेद या स्वरूप भेद होता है, वहां वास्तव में उन दोनों साधारण धर्मों में किसी प्रकार की एकता न होने पर भी सादृश्य प्रतीति कराने की इच्छा या कवि विवक्षा उनमें एकता का प्रत्यायन करती है । पण्डितराज जगन्नाथ ने इसीलिए बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव को सादृश्यमूलक अभेदाध्यवसाय कहा है क्योंकि इसमें भेद होने पर भी अभेद का आभास होता है ।

उपमेयगतानामुपमानगतानां चासाधारणानामपि धर्माणां सादृश्यमूलेनाभेदाध्यवसायेन साधारणत्वकल्पनादुपमासिद्धिः । ...... अयमेव बिम्बप्रतिबिम्बभाव इति प्राचीनैरभिधीयते ।

रसगगाधर, पृ० १५६

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपमा

पूर्व-इतिहास

ऋग्वेद[२०] में यद्यपि उपमा शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है, परन्तु अलङ्कार रूप में इसका विवेचन गार्ग्य मुनि ने सबसे पहले[२१] किया था। गार्ग्य का कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं होता किन्तु यास्क के ग्रंथ निरुक्त में उनका कई स्थानों पर उल्लेख हुआ है। निरुक्त की रचना के समय वैयाकरणों के मध्य शाकटायन तथा गार्ग्य दो आचार्यों एवम् उनके सम्प्रदायों की प्रतिष्ठा थी। यास्क ने कई जगह शाकटायन के साथ मतभेद और गार्ग्य से सहमति प्रकट की है। निरुक्त के तीसरे अध्याय में गार्ग्य के उपमा लक्षण को यास्क ने इस प्रकार उद्धृत किया है [२२] -

> "अर्थात उपमा। यदतत्तत्सदृशमिति गार्ग्यः। तदासां कर्म। ज्यायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा कनीयांसं वा प्रख्यातं वोपमिमीते, अथापि कनीयसा ज्यायांसम् ।।"

अर्थात् 'उससे भिन्न' (उपमेय) का 'उस' (उपमान) के साथ सादृश्य उपमा है। उपमा का 'कर्म' है गुण के आधार पर अप्रख्यात का प्रख्यात के साथ सादृश्य दिखाना।

वेद में उपमा के अनेक उदाहरण प्राप्त हेते हैं , किन्तु इसका सर्वप्रथम शास्त्रीय विवेचन भरत के नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है। उसका लक्षण है -

> **यत् किंचित् काव्यबन्धेषु सादृश्येनोपमीयते ।**
> **उपमा नाम विज्ञेया गुणाकृति समाश्रया ।**
>
> ना०शा०, १६/४४

अर्थात् काव्यबन्ध में सादृश्य या समानता के कारण गुण और आकृति के आश्रय से जो तुलना की जाती है उसे उपमा कहते हैं।

इस लक्षण में 'गुणाकृतिसमाश्रया' पद की व्याख्या अपेक्षित है। अभिनवगुप्त[२३] के अनुसार 'इव' आदि जिन शब्दों द्वारा गुण द्योतित हों वे गुणाकृति हैं। ये शब्द उपमा के आश्रय हैं क्योंकि उनसे गुण-सादृश्य

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का बोध होता है । इस व्याख्या के अनुसार उपमा अलङ्कार में इव आदि शब्दों की उपस्थिति अनिवार्य है, परन्तु यह वास्तविकता नहीं है । भरत ने 'किंचित् सदृशौ उपमा' के उदाहरण [२४] में जो पद्य दिया है, उसमें इव आदि वाचक शब्द नहीं हैं । 'गुणाकृति समाश्रया' का एक अर्थ यह भी संभव है कि उपमा में सादृश्य का आश्रय गुण तथा आकृति है । 'मतंगजा विराजन्ते जंगमा इव पर्वताः' इस उदाहरण में मतंगजों और पर्वतों में आकृति सादृश्य भी है और जंगमत्व रूपी गुण भी सदृश है । 'गुणाकृति' पद का तीन प्रकार से विग्रह किया जा सकता है - गुण तथा आकृति, गुण अथवा आकृति एवं गुण- गर्भित आकृति ।

उपमा चार प्रकार से दी जा सकती है - एक की एक से, एक की अनेक से । अनेक की एक से तथा अनेक की अनेक से । चारों के क्रमशः उदाहरण निम्नलिखित हैं -

(क) तुल्यं ते शशिना वक्त्रं

(ख) श्येन - वर्हिण-भासानां तुल्यार्थः ।

(ग) शशांकवत्प्रकाशन्ते ज्योतींषि ।

(घ) घना इव गजाः'

नाट्यशास्त्र में उपमा के पाँच भेदों की चर्चा भी की गई है - प्रशंसा, निन्दा, कल्पिता, सदृशी तथा किंचित् सदृशी । इन पांचों के केवल उदाहरण दिये गये हैं , लक्षण नहीं दिये गये हैं । उन्होंने इस प्रसंग के अन्त में कहा है कि संक्षेप में उपमा के इतने ही भेद जानने चाहिए, जिन भेदों की चर्चा यहां नहीं की गई है विद्वानों को उन्हें काव्य और लोक से[२५] स्वयं ही ग्रहण कर लेना चाहिए ।

भरत ने उपर्युक्त पांचों प्रकार की उपमा के उदाहरण दिये हैं, ग्रन्थ गौरव के भय से उन्हें यहां नहीं दिया जा रहा है ।

भामह

भरत के पश्चात् भामह ने उपमा का विवेचन करते हुए देश, काल एवं क्रिया आदि के आधार पर उपमान एवं उपमेय में गुण लेश से साम्य होने पर यह अलङ्कार स्वीकार किया है ।[२६]

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भामह के लक्षण में आये हुए 'विरुद्धेन' 'देशकाल क्रियादिभिः' तथा 'गुणलेशेन' आदि पदों की व्याख्या अपेक्षित है । गार्ग्य ने 'तद्' के साथ 'अतद्' के सादृश्य को उपमा माना था, उनका 'तद्' प्रख्यात था और 'अतद्' अप्रख्यात । इस प्रकार तद् और अतद् परस्पर विरुद्ध हुए । इसीलिए भामह की राय में उपमान उपमेय के विरुद्ध अर्थात् उपमेय से भिन्न होना चाहिए । यहां 'विरुद्ध' का अर्थ विरोधी' या 'विपरीत' नहीं है, बल्कि 'भिन्न' है. । उनका आशय यह है कि उपमान और उपमेय अलग-अलग हों और अलग-अलग जाति के हों । 'आपका मुख उसके मुख के समान सुन्दर है इस वाक्य में विरुद्धत्व नहीं है इसलिए कोई चमत्कार भी नहीं है।

उपमेय-उपमान में भिन्नता तो अनेक प्रकार की होगी किन्तु साम्य 'गुण लेश' का ही होगा । यही 'गुण लेश' की समानता उपमा की आधारभित्ति है । भरत ने इसी साम्य को 'गुणाकृतिसमाश्रय' बताया था। उपमेय-उपमान में देश, काल, क्रिया आदि का विरोध (अर्थात् अन्तर) होगा किन्तु किंचित् गुणलेश का साम्य भी होगा ।

उपमा के वाचक यथा एवं इव शब्द हैं 'यथेवशब्दौ सादृश्यमाहतुर्व्यतिरेकिणोः। श्लोकार्ध में द्विवचन का प्रयोग यह बताने के लिए है कि वाचक शब्द केवल दो ही हैं । भरत ने वाचक के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है । यास्क ने कर्मोपमा के छह वाचक बताये हैं [२७] जिनमें से लौकिक संस्कृत में केवल दो शेष रह गये ।

भामह ने प्रतिवस्तूपमा को वाचक-लुप्तोपमा का एक रूप माना है। इसमें 'यथा' 'इव' के बिना भी 'समान-वस्तु-न्यास' से गुण-साम्य प्रतीति होती है।[२८] भामह ने समकालीन आचार्यों द्वारा स्वीकृत उपमा के कुछ भेदों जैसे निन्दोपमा, प्रशंसोपमा, आचिख्यासोपमा तथा मालोपमा का खण्डन किया हैं । उनका तर्क है कि 'सामान्य-गुण-निर्देश'[२९] से सभी भेदों का विवेचन स्वतः हो गया इसलिए उनके उपमानों के आधार पर अलग भेद करने से अनावश्यक विस्तार ही होगा । भामह का यह तर्क उद्भट के ग्रंथ में उपमा का व्याकरणानुसार भेद-विस्तार करने का आधार बन गया है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अग्निपुराणकार[30]

अग्निपुराण का समय विवादास्पद है। उपमा विवेचन में अग्निपुराण एवं काव्यादर्श में बहुत समानता है इसलिए इस प्रसंग में इन दोनों ग्रंथों का अध्ययन आगे - पीछे रख कर किया जा रहा है।

अग्निपुराण में 8 अर्थालङ्कारों का निरूपण है - स्वरूप, सादृश्य, उत्प्रेक्षा, अतिशय, विभावना, विरोध, हेतु तथा सम। सादृश्य अलङ्कार के चार प्रकार विवेचित हैं - उपमा, रूपक, सहोक्ति तथा अर्थान्तरन्यास। उपमा का लक्षण है "जहां उपमान और उपमेय में अन्तर होते हुए भी सदृश्य का वर्णन किया जाय वहां उपमा अलङ्कार होता है। किंचित् सादृश्य के आधार पर ही लोक में इस सौन्दर्य का उपयोग होता है।" इस प्रकार अग्निपुराण के उपमा लक्षण में उसका आधार है - दो भिन्न वस्तुओं में किंचित् समानता। आचार्यों ने इसी आधार पर अतत्तत्सदृश" का आगे विस्तार किया है।

उपमा के दो भेद किये गये हैं 'समासोपमा तथा असमासोपमा' इनके भी तीन तीन उपभेद हो सकते हैं - वाचक, उपमेय तथा वाचकोपमेय उभय पदों के आधार पर। इस प्रकार उपमा के अठारह भेद[31] अग्निपुराण में वर्णित हैं जिनकी चर्चा यहां आवश्यक नहीं प्रतीत होती।

दण्डी

दण्डी ने बड़े विस्तारपूर्वक उपमा तथा उसके प्रपंच[32] का वर्णन काव्यादर्श के द्वितीय परिच्छेद में किया है। इनका उपमा लक्षण अत्यन्त व्यापक है। इनके अनुसार "जहां पर किसी भी प्रकार से गुण एवं क्रियादि के द्वारा सादृश्य की प्रतीति होती है वहां उपमा अलङ्कार होता है।"

इस लक्षण में 'यथा कथं चित' तथा 'प्रतीयते' दो शंब्दों के कारण उपमा में सादृश्य मात्र का समावेश हो गया और वैज्ञानिकता लुप्त हो गयी। इसकी तुलना में भामह का लक्षण अधिक वैज्ञानिक है और उन्होंने उपमा के भेद करने की आवश्यकता भी नहीं समझी। भरत के 'यत्किंचित्'[33] एवं अग्निपुराण के "किंचिदादाय"[34] के ही समान है दण्डी का 'यथा कथं

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चित्' । इसका सारांश यह है कि सादृश्य कविकल्पित ही होता है तथा उसका आधार उपमेय, उपमान का गुण, क्रिया आदि) कोई भी धर्म हो सकता है । 'प्रतीयते' शब्द का तात्पर्य यह है कि वाच्यत्व के अतिरिक्त भी उपमा के साधन हो सकते हैं । इनके उपमा-लक्षण में आया हुआ शब्द 'उद्भूत', उद्भट के 'चेतोहारि' वाग्भट के 'चमत्कारि' हेमचन्द्र तथा अप्पय दीक्षित के 'हृद्यं' जगन्नाथ के 'सुन्दरम्' आदि का ही पर्याय है । इस प्रकार दण्डी के अनुसार जहां उपमेय और उपमान में किसी भी समान धर्म के आधार पर कवि रमणीय सादृश्य की कल्पना कर लेता है वहां उपमा अलङ्कार होता है ।

दण्डी द्वारा निरूपित उपमा के अनेक भेद आगे चल कर स्वतन्त्र अलङ्कार के रूप में स्वीकृत हुए । इनके अलङ्कार विभाग में कोई तर्क दृष्टिगोचर नहीं होता, उसे 'अर्थानुरोधेन विभाग' ही मानना चाहिए । परवर्ती आचार्य उद्भट ने 'व्याकरण-प्रयोगानुरोधेन' उपमा के भेद किए, जिनको सभी आचार्यों ने वैज्ञानिक पाकर अपना लिया ।

उद्भट

उद्भट ने काव्यालङ्कारसारसंग्रह में विस्तार से अलङ्कार विवेचन किया है । अर्थालङ्कारों का परिगणन करते समय इन्होंने उपमा को रूपक के पश्चात् रखा है । इनका उपमा विवेचन भामह से पूर्णतया प्रभावित है और इन्होंने सात श्लोकों में उपमा के भेद व्याकरण के अनुसार प्रतिपादित किए हैं । उद्भट के अनुसार "उपमा अलङ्कार में उपमेय एवं उपमान के बीच वह चित्ताकर्षक सादृश्य होता है, जिसके देश-काल-जाति-गुण क्रिया आदि परस्पर भिन्न होते हैं ।"[३५]

इनके लक्षण में दो गुणों पर विशेष जोर दिया गया है - वे हैं - 'साधर्म्य' तथा 'विभिन्न' । साधर्म्य, सादृश्य तथा साम्य ये समानार्थक शब्द हैं, संभवतः इसीलिए काव्यशास्त्रियों ने इनका प्रयोग स्वेच्छा से ही किया है । भामह ने एक स्थान पर[३६] उपमा का लक्षण देते समय 'साम्य' शब्द का प्रयोग किया था, दूसरे स्थान[३७] पर 'सादृश्य' का । ऐसा लगता है कि भामह की राय में 'सादृश्य' तथा 'गुणलेशेन साम्य' समान अर्थ वाले

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं । उद्भट ने भामह के सादृश्य के अर्थ में साधर्म्य शब्द का प्रयोग किया है।

उपमा का लक्षण करते समय भामह ने 'देश-काल-क्रियादिविरुद्धत्व' [३८] का समावेश किया था, उद्भट ने प्रायः उसी शब्दावली में इस विशेषता का आग्रह किया है । अपनी लघु वृत्ति नामक टीका में इन्दुराज ने इस विशेषता को और भी स्पष्ट किया है-

"कालादयोऽत्र शब्दप्रवृत्तिनिमित्तभूता विवक्षिताः । .... मिथः परस्परं विभिन्नाः कालादयः[३९] प्रवृत्तिनिमित्तभूता ययोः शब्दयोस्तथाविधौशब्दोवाचकौ ययोः उपमानोपमेययोः इति बहुव्रीहिगर्भो बहुव्रीहिः । 'गौरिवायं गौः' इत्यभिधाने तु न प्रवृत्तिनिमित्तभेदः गोत्वस्यैवैकस्य प्रवृत्तिनिमित्तत्वात् । तेनैवंविध उपमानोपमेयभावो न भवति ।

उपमा के लक्षण में चेतोहारि पद आवश्यक नहीं था,[४०] यह विशेषता तो अलङ्कार का सामान्य लक्षण है ।

उद्भट ने उपमा के दो भेद किये हैं -पूर्णा तथा लुप्ता । पूर्णोपमा ३ प्रकार की है वाक्य में, समास में तथा तद्धित में । वाक्यावसेया दो प्रकार की है - श्रौती तथा आर्थी । श्रौती पूर्णोपमा वाक्यावसेया के आधार हैं यथा[४१], इव[४२] आदि अव्यय शब्द । इसको अव्ययोपदर्शिता कहा जा सकता है । भामह ने भी 'यथा' 'तथा' 'इव' वाचक शब्दों का उल्लेख किया था ।

वाक्यावसेया पूर्णोपमा का दूसरा भेद है - आर्थी, जिसमें सदृश आदि पदों का संयोग[४३] रहता है । समासावगम्या उपमा केवल आर्थी होती है परन्तु तद्धितावसेया के दो भेद हैं श्रौती तथा आर्थी । सारांश यह कि उद्भट के अनुसार पूर्णोपमा के पांच भेद हुए - वाक्यावसेया के दो (श्रौती तथा आर्थी) समासावसेया का एक (आर्थी), तद्धितावसेया के दो (श्रौती तथा आर्थी) ।

संक्षेप में सार्धम्य का वर्णन करने वाली उपमा को इन्होंने लुप्तोपमा कहा है । इन्दुराज ने इसीलिए इसको संक्षेपोपमा कहा है । वाक्य, समास,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुब्धातु, कृत् तथा तद्धित के आधार पर इसके भी पांच भेद होते हैं।

इन्दुराज के अनुसार काव्यालङ्कार-सार-संग्रह में पूर्णोपमा के पांच तथा लुप्तोपमा के बारह (कुल सत्रह) भेदों का विवेचन हुआ है।

उपमा के इस भेदोपभेद-विस्तार का आधार एक निश्चित वैज्ञानिक वैयाकरणिक दृष्टिकोण है। परवर्ती आचार्यों जैसे मम्मट आदि ने भी भामह द्वारा संकेतित तथा उद्‌भट के ग्रंथ में प्रसारित भेदोपभेद सरणि को ही अपनाया है।

वामन

इन्होंने काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति के चतुर्थ अधिकरण के दूसरे अध्याय में उपमा एवं उसके भेदों का निरूपण किया है। अर्थालङ्कारों में सर्वप्रथम[४४] उपमा का लक्षण इस प्रकार दिया है-

"उपमानेनोपमेयस्य गुणलेशतः साम्यमुपमा । ४/२/१

यह लक्षण भामह के लक्षण की छाया मात्र है।

वामन ने तीन प्रकार से उपमा का वर्गीकारण किया है। एक प्रकार से उपमा के दो भेद हैं "लौकीकि' तथा 'कल्पिता'। दूसरे प्रकार से भी उपमा के दो भेद हैं, पदार्थवृत्ति तथा वाक्यार्थवृत्ति। तीसरे प्रकार से उपमा के दो भेद पूर्णा तथा लुप्ता हैं। इनके अनुसार उपमा का प्रयोग 'स्तुति' 'निन्दा' तथा 'तत्वाख्यान'[४५] में किया जाता है।

उपमान को दृष्टि में रखते हुए जिन पांच भेदों का निरूपण भरत ने किया था उनमें से तीन - प्रशंसा, निन्दा तथा कल्पिता वामन में उसी रूप में आ गये हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि वामन के सूत्रों में उपमा का कल्पित[४६] भेद तो निरूपित है किन्तु लौकीकि नहीं। लौकीकि[४७] भेद की चर्चा वृत्ति में ही पायी जाती है।

रुद्रट

काव्यालङ्कार में इन्होंने अर्थालङ्कारों के चार भेद किये हैं और सभी अलङ्कारों को उन्हीं का 'विशेष'[४८] माना है। वे चार भेद हैं - वास्तव, औपम्य, अतिशय तथा श्लेष, जिनमें औपम्य वर्ग का पहला अलङ्कार

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है उपमा । इनके अनुसार जहां उपमानोपमेय के प्रसंग में साधारण धर्म जिस प्रकार एकत्र (उपमान) सिद्ध हो, उसी प्रकार अन्यत्र (उपमेय) साध्य बने, तो वहां उपमा अलङ्कार होगा ।[४९] रुद्रट के लक्षण में कोई सूक्ष्मता या कोई विकास परिलक्षित नहीं होता । पहले के आचार्यों के सिद्धान्तों पर ही बल दिया गया है केवल भाषा भिन्न है । 'सिद्धि' तथा 'साध्य' एक नवीन अभिव्यक्ति मात्र हैं ।

उपमा के तीन रूप हैं -वाक्योपमा, समासोपमा तथा प्रत्ययोपमा । वाक्योपमा के छह उपभेद हैं । प्रथम उपभेद का लक्षण है - "यत्र उपमानं, इवादीनामेकं, सामान्यम् (धर्माभिधायकं पदम्), उपमेयम् प्रयुज्यते । इसके उदाहरण से स्पष्ट है कि यह पूर्णोपमा है । शेष उपभेद हैं -लुप्तोपमा (धर्मलुप्ता), उभयोपमा अनन्वयोपमा, कल्पितोपमा तथा उत्पाद्योपमा ।

रुद्रट की उभयोपमा ही अन्य आचार्यों की उपमेयोपमा है, इसी प्रकार अनन्वयोपमा अनन्वय अलङ्कार । रुद्रट की कल्पिता वामन की कल्पिता से भिन्न है । रुद्रट के अनुसार उपमेय जितने और जैसे[५०] विशेषण हों, उपमान के उतने और वैसे ही विशेषणों की योजना से कल्पित वाक्योपमा है । उत्पाद्योपमा एक प्रकार की अतिशयोक्ति है । जहां उपमेय की उपमान हीनता के कारण सम्भाव्य विशेषण युक्त उपमान की योजना हो वहां उत्पाद्या वाक्योपमा[५१] होती है । उन्होंने जो उदाहरण दिया है वह वस्तुतः अतिशयोक्ति का है -

कुमद-दल-दीधितीनां त्वक्संभूय च्यवेत यदि ताभ्यः ।
इदमुपमीयेत तया सुतनोरस्याः स्तनावरणम् ।। (८/१६)

रुद्रट ने समासोपमा के तीन रूप बताये हैं जो उपमा के अवयवों में समास योजना के तीन .प्रकार मात्र हैं -

(क) सामान्य धर्म का उपमान-पद के साथ समास, जैसे - मुखमिन्दु सुन्दरं ।

(ख) सर्व समासा, जैसे - कुवलयदलदीर्घलोचना ।

(ग) उपमान - उपमेय का समास, जैसे कुवलयदललोचने ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्ययोपमा में उपमान के साथ प्रत्यय जोड़ कर सौन्दर्य बिम्बित किया जाता है, जैसे - पद्मायतेमुखं ते ।

उपमा के उपर्युक्त तीन भेदों का विवेचन करने के पश्चात् रुद्रट ने अन्य प्रकार के इसके चार सामान्य भेद भी किए हैं । मालोपमा, रसनोपमा, समस्त-विषया तथा एकेदशविषया । अनेक-धर्म युक्त उपमेय की जहां अलग-अलग गुणों के आधार पर पृथक्-पृथक् उपमानों से तुलना की जाती है उसे मालोपमा कहते हैं -

श्यामालतेव तन्वी चन्द्रकलेवातिनिर्मला सा मे ।
हंसीव कलालापा चैतन्यं हरति निद्रेव ।।

रसनोपमा में पूर्व-पूर्व पद, उत्तर-उत्तर पद का उपमान होता जाता है -

"नभ इव विमलं सलिलं, सलिलमिवानन्दकारि शशिबिम्बम् ।"

समस्त-विषया उपमा उसे कहते हैं जहां अवयवी तथा अवयव समस्तों का उपमानोपमेय भाव वर्णित हो । जहां केवल अवयवों का सादृश्य वर्णित हो अवयवी का नहीं वहां एकदेश-विषया उपमा होती है । ये चारों भेद उपर्युक्त उपमा रूपों में से किसी भी रूप में (अर्थात् वाक्य, समास अथवा प्रत्यय रूप में) प्राप्त हो सकते हैं ।

मम्मट

अलङ्कारों की उद्भावना में यद्यपि मम्मट का योगदान नहीं है, किन्तु उनकी व्यवस्था में इन्होंने विशेष योगदान दिया है । उनके लक्षण पूर्णतया वैज्ञानिक हैं । इनके द्वारा प्रतिपादित अलङ्कार भेद भी वैज्ञानिक एवं उनके उदाहरण सशक्त हैं । यही बात उनके द्वारा दिये गये उपमा के लक्षण व उदाहरण आदि पर भी पूर्णतया घटित होती है । काव्यप्रकाश के दशम उल्लास में अर्थालङ्कारों में इन्होंने सर्वप्रथम उपमा का विवेचन किया है इसका लक्षण है - साधर्म्यमुपमाभेदे । (१०/८७)

अर्थात् उपमेय तथा उपमान में भेद होने पर जहां उनमें साधर्म्य बताया जाय वहां उपमा होती है । इनका तात्पर्य यह है कि भिन्न-भिन्न

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिखलायी पड़ने वाले पदार्थों (अजातीय वस्तुओं) में साधर्म्य दिखायी पड़े तो वहां उपमा होगी । उपर्युक्त सूत्र की वृत्ति में उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि साधर्म्य उपमानोपमेय का ही होता है, कार्य-कारण आदि का नहीं । इसलिए 'साधर्म्य' के कथन से उपमानोपमेय भाव स्वतः ही आ गया । साधर्म्य, साम्य, सादृश्य प्रायः पर्यायवाची शब्द हैं और आचार्यों के ग्रंथों में इनका समानान्तर प्रयोग उपलब्ध होता है, तथापि 'साधर्म्य' में 'समान धर्म' का भी संकेत माना जा सकता है । वृत्ति में 'भेदे' की व्याख्या करते हुए मम्मट कहते हैं -''भेदग्रहणमनन्वयव्यवच्छेदाय' अर्थात् यदि लक्षण में से 'भेद' शब्द हटा दिया जाय तो अनन्वय और उपमा में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा । 'कमलमिव कमलं' उपमा का उदाहरण नहीं बन सकता । गार्ग्य ने उपमा का लक्षण 'अतत्तत्सदृशम्' बताया था, मम्मट का 'भेदे' भी गार्ग्य का 'अतत्तत्' है और गार्ग्य का 'सदृशं' मम्मट के लक्षण में 'साधर्म्य' बन गया है ।

इन्होंने भी उपमा के दो भेद दिए हैं - पूर्णा तथा लुप्ता । पूर्णा के दो भेद हैं - श्रौती तथा आर्थी - ये दोनों उपभेद भी वाक्यगत, समासगत तथा तद्धित गत हैं । इस प्रकार इन्होंने पूर्णोपमा के छह भेद स्वीकार किए हैं यह विवेचन पूर्ववर्ती आचार्यों के आधार पर ही है ।

लुप्तोपमा के 19 भेद भी इन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों के अनुसार एवं व्याकरण के आधार पर किये हैं । एक लुप्ता के तेरह प्रकार हैं -जिनमें धर्मलुप्ता के पांच, वाचक लुप्ता के छह तथा उपमान लुप्ता के दो प्रभेद सम्मिलित हैं । द्विलुप्ता के पांच प्रकार हैं - धर्म वाचक लुप्ता (दो प्रकारः क्विप् गता एवं समासगा) धर्मोपमान लुप्ता (दो प्रकारः वाक्यगा एवं समासगा), वाचकोपमेय लुप्ता (एक प्रकारः क्यच् प्रत्यय में) । त्रिलुप्ता केवल समास में उपमान वाचक धर्म का लोप होने पर मानी जाती है ।

आचार्य उद्भट ने इन सब भेदों का वर्णन कर दिया था । रुद्रट ने इनकी व्याख्या की एक पृथक् सरणि अपनाई । मम्मट की सहमति भी उद्भट के साथ है और वे उपमा के भेदों का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करते हैं । इन्दुराज के अनुसार उद्भट ने उपमा के सत्रह भेदों का निरूपण

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया है- पूर्णोपमा के पांच तथा लुप्तोपमा के बारह। पूर्णोपमा का 'समासावसेया श्रौती' भेद उद्भट में नहीं है। लुप्तोपमा के भेदों का निरूपण उद्भट तथा मम्मट ने अलग-अलग ढंग से किया है।

मम्मट ने उपमा विवेचन के पश्चात् इसके अन्यथा प्राप्त दो भेदों का खण्डन किया है। ये भेद हैं - मालोपमा तथा रसनोपमा। दण्डी के काव्यादर्श में मालोपमा का वर्णन मिलता है। रुद्रट ने भी इसका वर्णन किया है किन्तु मम्मट के अनुसार मालोपमा न तो पृथक् अलङ्कार है और न ही उपमा का भेद। अनेक उपमानोपमयों में साधारण धर्म भिन्न हों या अभिन्न हों, इसमें विशेष विच्छित्ति क्या है, इस प्रकार तो हजारों चमत्कार संभव हैं -**'एवं विधवैचित्र्यसहस्रसम्भवात्'** उन्होंने दण्डी के रसनोपमा का भी इसी प्रकार खण्डन किया है। क्योंकि उपमा के उक्त भेदों में ही उसका भी अन्तर्भाव हो जाता है " **उक्तभेदानतिक्रमाच्च**।'

उद्भट के समय तक अलङ्कारमीमांसा, व्याकरण एवं न्याय की वैज्ञानिकता से अनुप्राणित हो चुकी थी। मम्मट ने उसी सरणि पर बल दिया और अनावश्यक भेदोपभेदों का खण्डन करके अलङ्कारों की बढ़ती हुई संख्या को कम करने का प्रयत्न किया।

रुय्यक तथा उनके टीकाकर -

रुय्यक ने अर्थालङ्कारों में सर्वप्रथम उपमा का विवेचन करते हुए लिखा है -

उपमैवानेकप्रकारवैचित्र्येणानेकालङ्कारबीजभूतेति प्रथमं निर्दिष्टा।

उनका सूत्र है -

उपमानोपमेययोः साधर्म्ये भेदाभेदतुल्यत्वे उपमा।

रुय्यक के उपमा लक्षण में चार पद हैं - 'उपमानोपमेययोः' 'साधर्म्ये', 'भेदाभेद तुल्यत्वे' तथा 'उपमा'। इनमें से अन्तिम पद तो अलङ्कार का नाम ही है किन्तु शेष तीन की व्याख्या अपेक्षित है। उपर्युक्त सूत्र की वृत्ति में वे लिखते हैं -

"उपमानोपमेययोरित्यप्रतीतोपमानोपमेय निषेधार्थम्।"

अर्थात् वैसे तो साधर्म्य केवल उपमानोपमेय का ही होता है,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कार्य-कारण आदि का नहीं, तथापि सूत्र में 'उपमानोपमेय' का शब्दतः कथन अप्रतीत उपमान और उसी प्रकार के (अप्रतीत) उपमेय के निषेध में लिए किया गया है। उपर्युक्त वृत्ति का सारांश है कि उपमा अलङ्कार में उपमेय-उपमान दोनों का रहना आवश्यक है, तथा साथ ही वे अप्रतीत (अप्रसिद्ध) नहीं होने चाहिएं। यदि कुमुद से मुख की उपमा दी जाय, तो वह सदोष होगी, क्योंकि मुख के उपमान के रूप में कुमुद अप्रतीत (अप्रसिद्ध) है, जबकि कमल प्रतीत है। श्री विद्या चक्रवती ने इस सूत्र के 'उपमानोपमेययोः' पद की व्याख्या करते हुए लिखा है -

"सिद्धे सत्यारम्भोऽयं, प्रसिद्धयोरेवोपमानोपमेययोरलङ्कारत्वमिति नियमाय। अतो मेरुसर्षपादौ विवक्षया परिकल्पयितुं शक्योऽपि उपमानोपमेयभावो नालङ्कारविषयः।"

संजीविनी, पृ ३५

इसी प्रकार उपमेय भी अप्रतीत नहीं होना चाहिए। सहृदय जिस वस्तु को वर्णनीय मानते आये हैं, जो उपमेय के रूप में प्रतीत (प्रसिद्ध) है, उसे ही उपमेय बताया जाना चाहिए, अन्य वस्तुओं को नहीं। उपमेय का प्रतीतत्व रुय्यक की मौलिकता है, वे अलङ्कार-प्रयोग को भी सहृदय-संवेद्य मानते हैं। सहृदय ही इसमें प्रमाण हैं कि उपमेयत्व के योग्य क्या है और क्या नहीं है। अश्लीलत्व[५२] या ग्राम्यत्व से युक्त वर्णनों को सहृदय, प्रतीत नहीं मान सकता। उपमान की अप्रतीति, लिंग भेद के कारण ही हो सकती है।

जैसे कादम्बरी का श्लोक है -

"कटु क्वणन्तोमलदायकाः खलास्तुदन्त्यलं बन्धनश्रृंखला इव।"

यहां साधारण धर्म है - कटु क्वणन। उपमेय खल के साथ तो इसकी संगति बनती है किन्तु उपमान बन्धनश्रृंखला के साथ इसका लिंग भेद (क्वणन्तः के स्थान पर क्वणन्त्यः) अपेक्षित है। इसी दोष के कारण जयरथ ने इसे उपमा का अच्छा उदाहरण नहीं माना है।

उपमा-लक्षण का दूसरा पद है - साधर्म्य। यह पद काव्यप्रकाश में भी (इसी अलङ्कार के लक्षण में) आया है। साधर्म्य के तीन रूप संभव हैं - भेद प्रधान, अभेदप्रधान, तुल्य। व्यतिरेक, सहोक्ति आदि अलङ्कारों में जो साधर्म्य वर्जित होता है - वह भेदप्रधान होता है। रूपक

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं परिणाम आदि अलङ्कारों में अभेद-प्रधान साधर्म्य होता है जबकि उपमा में तुल्य साधर्म्य होता है। यही बात सर्वस्वकार ने उपर्युक्त सूत्र की वृत्ति में कही है -

"भेदप्राधान्यं व्यतिरेकादिवत्। अभेदप्राधान्यं रूपकादिवत्। द्वयोस्तुल्यत्वं यथास्याम्।" (वृत्ति, पृ० ८०)

साधारण धर्म का तीन प्रकार से निर्देश किया जा सकता है, जो इसी अध्याय में पहले बताया जा चुका है। उन तीनों के उदाहरण इस प्रकार हैं -

(क) **'मुखं चन्द्र इव हृद्यम्'** में साधारण धर्म है हृद्यत्व, जिसका एक बार एक ही रूप में निर्देश है।

कुमारसंभव महाकाव्य में उमा के जन्म से नगराज के गौरव की वृद्धि का वर्णन करते हुए कालिदास लिखते हैं -

प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च॥

इस पद्य में दो साधारण धर्म हैं - 'पूतत्व' तथा 'विभूषितत्व' जिनका उपमेय तथा उपमान से, समान रूप से संबंध है। उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में अनुगामी रूप से साधारण धर्म का निर्देश किया गया है।

(ख) वस्तुप्रतिवस्तुभाव के रूप में साधारण धर्म के निर्देश का उदाहरण है - मालतीमाधव का अधोलिखित पद्य -

यान्त्या मुहुर्बलितकन्धरमाननं तद्,
आवृत्तवृन्तशतपत्रनिभं वहन्त्या।
दिग्धो मृतेन च विषेण च पक्ष्मलाक्ष्याः,
गाढं निखात इव मे हृदयेकटाक्षः॥"

यद्यपि इस पद्य में प्रयुक्त 'वलित' और 'आवृत्त' दोनों शब्द एक ही अर्थ (मुड़ी हुई) के वाचक हैं, किन्तु उनमें अपने संबंधी 'कन्धरा' तथा 'वृन्त' की दृष्टि से उसी प्रकार कुछ भेद हैं जैसे 'चन्द्रसौन्दर्य' एवं 'मुखलावण्य' में। तात्पर्य यह है कि वस्तुप्रतिवस्तुभाव में साधारण धर्म में भेद उपमेय और उपमान की दृष्टि से आता है। वस्तुप्रतिवस्तुभाव, धर्म और धर्मो में नहीं होता, बल्कि सदा दो धर्मों या दो धर्मियों में होता है।

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(ग) बिम्बप्रतिबिम्बभाव का उदाहरण है -

"पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः
क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन ।
आभाति बालातपरक्तसानुः
सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः ।।

अलङ्० सर्वस्व, पृ० ८१

इस पद्य में पाण्ड्य की उपमा अद्रिराज से दी गयी है । पाण्ड्य में धर्म है - हार तथा अंगराग एवं अद्रिराज में धर्म है - निर्झर व बालातप। इन साधारण धर्मों का असकृत् कथन हुआ है तथा इन दोनों में स्वरूप भेद है । एक बिम्ब है दूसरा प्रतिबिम्ब । अतएव यह तीसरे प्रकार का (बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव के रूप में साधारण धर्म के निर्देश का) उदाहरण है ।

रुय्यक ने उपमा-भेदों का प्रतिपादन नहीं किया है । इनके पूर्ववर्ती मम्मट ने पूर्णा, लुप्ता के श्रोती तथा आर्थी उपभेद अनेक प्रकार के बताये थे तथा इनकी संख्या 25 तक पहुंच गयी थी । रुय्यक ने स्पष्ट रूप से कहा है -

"अस्याश्च पूर्णालुप्तात्वभेदात् चिरन्तनैर्बहुविधत्वमुक्तम् ।"

इसकी टीका में जयरथ लिखते हैं -

"......अतश्च किमस्माकं तदाविष्करणेनेति भावः । एवं च तेषां गणने तथा न वैचित्र्यं किंचिदिति सूचितम् ।"

विमर्शिनी, पृ ८४

उपमा के भेदों का प्रसंग आनेपर श्री विद्या चक्रवर्ती लिखते हैं -

अनयोर्भेदप्रभेदवैचित्र्यसहस्रमस्माभिः सम्प्रदायप्रकाशिन्यां काव्यप्रकाश-बृहट्टीकायां वितत्यदर्शितम लघुटीकायां च यथोपयोगमिति ततोऽवधार्यम् ।

समुद्रबन्ध ने अपनी टीका में उपमा के भेदों (पूर्णा, लुप्ता आदि) के अनेक उदाहरणों द्वारा इस विवेचन को समृद्ध किया है ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनन्वय

पूर्व-इतिहास

भामह

इस अलङ्कार का सर्वप्रथम निरूपण भामह ने किया है। इनके अनुसार जब असादृश्य की विवक्षा[५३] में किसी वस्तु की उसी वस्तु के साथ उपमेयता तथा उपमानता वर्णित हो वहां अनन्वय अलङ्कार होता है, जैसे - "इन्दीवराभनयनं तवेव वदनं तव'। भामह से पहले भरत द्वारा विवेचित सदृशी उपमा तथा दण्डी की असाधारणोपमा में इसका स्वरूप प्राप्त होता है।

दण्डी

इन्होंने अनन्वय अलङ्कार को अलग से न मान कर उसका असाधारणोपमा में अन्तरर्भाव किया है।[५४]

उद्भट

इन्होंने भामह के लक्षण को ही यथावत् अपना लिया है।[५५] इनके टीकाकार इन्दुराज ने 'असादृश्य की विवक्षा' को स्पष्ट कर दिया है कि उपमेय के समान कोई भी उपमान नहीं है, यही इस अलङ्कार का अभीष्ट है- "नात्रोपमानोपमेयभावे तात्पर्यं किन्तु उपमेयोपमावद् उपमानान्तरव्यावृत्ता वित्यर्थः।"

वामन

इन्होंने अनन्वय का सामान्य लक्षण बना दिया है - "एकस्योपमेयोपमानत्वेऽनन्वयः।" (4.3.14) इनके लक्षण में 'असादृश्य विवक्षा' का समावेश न होने से इसमें वैज्ञानिकता नहीं है, क्योंकि अन्य सदृश वस्तु के अभाव का प्रदर्शन ही इस अलङ्कार के चमत्कार का हेतु है।

मम्मट

आचार्य मम्मट[५६] ने अपने लक्षण में 'इतरोपमान-व्यवच्छेद' का सन्निवेश किया है। इनके अनुसार एक वाक्य में एक ही पदार्थ के उपमान

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं उपमेय होने को अनन्वय कहते हैं । वृत्ति में अपने विचार का अधिक स्पष्ट करते हुए मम्मट ने अन्य उपमान के सम्बन्धाभाव को स्वीकार किया । एक वाक्य 'पद का समावेश करने से इनका अनन्वय का लक्षण अधिक वैज्ञानिक बन गया है ।

रुय्यक तथा उनके टीकाकार

रुय्यक ने वामन के अनन्वय-लक्षण को यथावत् अपना लिया है तथा उसमें मात्र 'एव' शब्द जोड़ दिया है । इनका लक्षण है -

"एकस्यैवोपमानोपमेयत्वेऽनन्वयः ।"

इन्होंने भामह और रुद्रट की भांति 'असादृश्यविवक्षा' इस तत्व का समावेश करना उचित नहीं समझा है । इनके अनुसार एक ही वस्तु का उपमेय तथा उपमान होना अनन्वय की पर्याप्त परिभाषा है । 'एकस्यैवोपमानोपमेयत्वे' कहने से ही 'अन्य उपमान के अभाव' का समावेश हो जाता है, अतः इन शब्दों का प्रयोग आवश्यक नहीं है - **"एकस्य तु विरुद्धधर्मसंसर्गो द्वितीयसब्रह्मचारिनिवृत्त्यर्थः"** से रुय्यक का यही तात्पर्य है। अनन्वय का अर्थ है सम्बन्ध का अभाव । उपमेय को ही उपमान बताने का उद्देश्य होता है यह प्रकट करना कि इसका किसी दूसरी वस्तु से अनन्वय (सम्बन्ध) नहीं हो सकता । श्री विद्या चक्रवर्ती एवं समुद्रबन्ध का यही मत है ।[४७]

इस प्रसंग में विमर्शिनी की पंक्ति ध्यान देने योग्य है-

"एकस्यैव सिद्धसाध्यरूपेणोपमानोपमेयत्वेनाविद्यानोऽन्वयः सम्बन्धो यत्र स तथोक्तः ।" वि०, पृ० ३८

अर्थात् एक ही वस्तु का उपमेय और उपमान (सिद्ध तथा साध्य) होना संगत नहीं है । इस असंगति के कारण ही इसे अनन्वय अलङ्कार कहना सर्वथा समीचीन है । यही बात रुय्यक की पंक्ति से भी उभर कर आती है -

एकस्य तु विरुद्धधर्मसंसर्गः द्वितीयसब्रह्मचारिनिवृत्त्यर्थः ।

एत एवानन्वय इति योगोऽप्यत्र संभवति ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अ०स०, पृ० ३८

उपमेयोपमा

पूर्व इतिहास

भामह

उपमेयोपमा बहुत प्राचीन अलङ्कार है। इस अलङ्कार का सर्वप्रथम विवेचन भामह ने किया है। इनके अनुसार[५८] जहां उपमेय और उपमान पयार्य से उपमान और उपमेय बन जाते हैं वहां उपमेयोपमा अलङ्कार होता है। इसका उदाहरण है - **"अम्भोजमिव वक्त्रं ते त्वदास्यमिव पंकजम्"**। इसकी व्याख्या अपेक्षित नहीं है।

दण्डी

इन्होंने उपमेयोपमा को पृथक् अलङ्कार के रूप में स्वीकार नहीं किया है अपितु उपमा का वर्णन करते हुए उसके अनेक भेदों में से एक भेद का अन्योन्योपमा नाम प्रदान किया है। इसमें उपमेय से उपमान का और उपमान से उपमेय के उत्कर्ष का कथन होता है।[५६] इसका उदाहरण भी उसी से मिलता जुलता है जो भामह ने दिया था-

"तवाननमिवाम्भोजमिव ते मुखम् ।"

उद्भट

इन्होंने भामह कृत उपमेयोपमा की परिभाषा का परिष्कार किया है। इनके अनुसार पक्षान्तरहानि[६०] (अन्य किसी वस्तु के साथ तुलना की असंभाव्यता का) के लिए उपमान और उपमेय की अन्योन्यता का वर्णन उपमेयोपमा का चमत्कार है। उद्भट ने भामह के लक्षण में 'पक्षान्तरहानि' पद का समावेश करके अपने लक्षण को अधिक स्पष्ट बनाया है। इस अलङ्कार में उपमान का उपमेय बन जाना इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि अन्य उपमान की सम्भावना का ही न रहना। यही विशेषता 'पक्षान्तरहानि' शब्द द्वारा बताई गयी है इस प्रसंग में इन्दुराज की टीका द्रष्टव्य है -

"नात्रोपमानोमेयभावे तात्पर्यं किन्तु एतदेव द्वयमेवंविधं विद्यते न त्वन्यदेतयोः सदृशं वस्त्वन्तरं विद्यते इति - विषं भक्षय मा चास्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गृहे भुंक्थाः इतिवत्। अत्र हि विषभक्षणं न विधीयते दुर्जनगृहे भोजनपरिवर्जनतात्पर्यात्।"

उद्भट के लक्षण में दण्डी का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है क्योंकि काव्यादर्श में अन्योन्योपमा के लक्षण में यह पद (**अन्योन्योत्कर्षशंसिनी**) आया है ।

वामन

इनके उपमेयोपमा के विवेचन में कोई नूतनता नहीं है, बल्कि भामह के ही मत की प्रकारान्तर से स्वीकृति है ।[६१] इनके अनुसार "जहां एक ही अर्थ का क्रमशः उपमेयत्व व उपमानत्व वर्णित हो वहां उपमेयोपमा अलङ्कार होता है । उदाहरण अत्यन्त सरल तथा स्पष्ट है ।

मम्मट

इनके अनुसार उपमान एवं उपमेय का उपमेय एवं उपमान के रूप में परिवर्तन ही उपमेयोपमा हैं ।[६२] इनके लक्षण का तात्पर्य यह है कि जब प्रथम वाक्य के उपमेय एवं उपमान दूसरे वाक्य में क्रमशः उपमान एवं उपमेय हो जाये तो वहां उपमेयोपमा अलङ्कार होगा ।

रुय्यक तथा उनके टीकाकार

रुय्यक के उपमेयोपमा लक्षण पर भांमह एवं मम्मट का प्रभाव है । उनका लक्षण है

"द्वयोः पर्यायेण तस्मिन्नुपमेयोपमा ।।" सूत्र १४

आगे वृत्ति में लिखते हैं -

"तच्छब्देनोपमानोपमेयत्वप्रत्यवमर्शः । पर्यायो यौगपद्याभावः । अत एवात्र वाक्यभेदः ।

अर्थात् दो का वह (उपमानोपमेय भाव) यदि क्रम से हो तो उसे उपमेयोपमा कहते हैं । सूत्र में प्रयुक्त (तस्मिन् के) तत् शब्द से यहां उपमानोपमेयत्व का परामर्श किया गया है, सन्निहित अनन्वय का नहीं । इसमें वाक्य बदल जाते हैं ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनन्वय में द्वितीय सदृश के व्यवच्छेद की प्रतीति होती है, जबकि इस अलङ्कार में तृतीय सदृश के व्यवच्छेद की।[६३] उपमान और उपमेय का क्रमशः उपमेय और उपमान होना 'उपमेयेनोपमा'- से यह तात्पर्य है कि एक उपमेय का उपमान दूसरे के अलावा तीसरा नहीं है। इस प्रकार उपमेयोपमा शब्द से उपमानान्तर के तिरस्कार की प्रतीति स्वतः हो जाती है इसलिए इस (अलङ्कार) के लक्षण में तृतीयसदृशव्यवच्छेद पद के समावेश की आवश्यकता है -

"अस्याश्चोपमानान्तरतिरस्कार एव फलम् ।
एतएवोपमेयेनोपमा इत्यस्या अन्वर्थाभिधानम् ।।

– वि०, पृ० ४०

शोभाकर मित्र ने निम्नलिखित पद्य में उपमेयोपमा अलङ्कार माना है-

"सविता विधवति विधुरपि सवितरति तथा दिनन्ति यामिन्यः ।
यामिनयन्ति दिनानि च सुखदुःखवशीकृते मनसि ।।"

– अ० र०, पृ० १८

इनके (शोभाकर के) अनुसार सविता उपमेय का उपमान विधु ही हो सकता है और विधु का सविता ही। इसी प्रकार दिन और यामिनी परस्पर उपमेय तथा उपमान हैं इसलिए इसमें उपमेयोपमा है।

शोभाकर के इस पद्य को जयरथ ने उद्धृत करके इसमें उपमेयोपमा का खण्डन किया है। उनका कहना है कि यहां कवि की सूर्य और चन्द्र आदि के अन्य उपमानों की सम्भावना निरस्त करने की कोई इच्छा नहीं है। विवक्षा केवल यह है कि जिसका चित्त सुख और दुःख से आक्रान्त होता है उन्हें ऐसी विपरीत अनुभूति होने लगती है ; और उपमेयोपमा तो वहीं होगी जहां तृतीय उपमान की सम्भावना निरस्त करने की विवक्षा होगी-

"न ह्यत्र विधुसवित्रादीनामुपमानानन्तरतिरस्करणं विवक्षितं
किन्तु सुखदुःखवशीकृतमनसामेवं विपरीतं भवतीति ।

वि०, पृ० ४०

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री विद्या चक्रवर्ती ने उपमेयोपमा का अन्य अलङ्कारों से भेद बताते हुए लिखा है

"उपमेयमुद्देश्यम्, उपमानं तु विधेयम् । इत्थं च सत्युपमानोपमेयभावव्यत्ययो वाक्यैकवाक्यतामन्तरेण न संभवति । अनन्वये तु पदैकवाक्यतैवेति । अत्र बिम्बप्रतिबिम्बभावो न संभवति । भिन्नवाक्यत्वेन तन्निबन्धनवैचित्र्यप्रतीतेः साधर्म्यनिबन्धनमन्यत् ।"

अ०स०, संजी०, पृ० ४०

उपर्युक्त पंक्तियां स्पष्ट और सरल हैं , इनकी व्याख्या अपेक्षित नहीं है ।

रुय्यक ने उपमेयोपमा के दो भेद किये हैं - पहला जहां धर्म साधारण होता है तथा दूसरा जहां वस्तुप्रतिवस्तु निर्देश होता है-

इयं च धर्मस्य साधारण्ये वस्तुप्रतिवस्तुनिर्देशे च द्विधा ।

सूत्र १२ की वृत्ति ।

दोनों प्रकार की उपमेयोपमा के उदाहरण अत्यन्त सरल हैं ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्मरण

रुद्रट

स्मरण अलङ्कार का सर्वप्रथम विवेचन आचार्य रुद्रट ने किया है। परवर्ती आचार्यों के विवेचन पर इनके लक्षण का बहुत प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इनके अनुसार किसी पदार्थ विशेष का अवलोकन करके कालान्तर में तत्सदृश अनुभूत पदार्थ के स्मरण में यह अलङ्कार होता है।[६४]

भोज

इन्होंने सादृश्य के अतिरिक्त चिन्ता, अदृष्ट प्रत्यभिज्ञान तथा स्वप्न (पदार्थ) के अनुभव के स्मरण में भी यह अलङ्कार माना है।[६५]

मम्मट

आचार्य मम्मट के अनुसार पूर्वानुभूत वस्तु के सदृश अन्य वस्तु का अवलोकन करके उसकी स्मृति होने पर स्मरण अलङ्कार मान्य है।[६६] ये जन्मान्तर के अनुभूत पदार्थ के स्मरण में अलङ्कारत्व स्वीकार करते हैं।

रुय्यक तथा उनके टीकाकार

रुय्यक के अनुसार इस अलङ्कार का लक्षण है - "जहां समान वस्तु के अनुभव से दूसरी वस्तु की स्मृति होती है उसे स्मरणालङ्कार कहते हैं -

सदृशानुभवाद्वस्त्वन्तरस्मृतिः स्मरणम् ।। सूत्र १४

स्मरण के पूर्व मानसिक प्रक्रिया तीन अवस्थाओं से गुजरती है- (क) किसी वस्तु का भूतकाल में अनुभव (ख) उस (पुराने) अनुभव द्वारा उत्पन्न संस्कार (ग) सदृश वस्तु के अनुभव (दर्शन) से पुनः उस संस्कार का उद्बुद्ध होना। स्मरणालङ्कार के मूल में भी तार्किकों के 'स्मरण' के समान यही प्रक्रिया है। तार्किक, बुद्धि को (ज्ञान को) दो प्रकार का स्वीकार करते हैं - स्मृति तथा अनुभव। स्मृति, संस्कारजन्य होती है जबकि

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनुभव संस्कारजन्य नहीं होता ।

स्मरणालङ्कार अनुमान से भिन्न है क्योंकि इसमें व्याप्ति का अभाव है ।[६७] जैसे -

"अतिशयितसुरासुरप्रभावं शिशुमवलोक्य तवैव तुल्यरूपम् ।
कुशिकसुतमखद्विषां प्रमाथे धृतधनुषं रघुनन्दनं स्मरामि ।।"

उत्तर राम०, ४/४४

(देव तथा दानव से अधिक पराक्रमी, राम के समान ही रूप वाले बालक को देखकर, विश्वामित्र के यज्ञ से द्वेष रखने वाले राक्षसों का विनाश करने के लिए धनुष ताने हुए राम का मुझे स्मरण हो रहा है)

इस उदाहरण में अनुभूयमान लव उपमेय है और स्मर्यमाण राम उपमान हैं । रुय्यक, सादृश्य से रहित स्मृति को स्मरणालङ्कार मानने के पक्ष में नहीं हैं -

सादृश्यं विना तु स्मृतिर्नायमलङ्कारः ।

यथा -

"अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्तिस्तरङ्गवातेन विनीतखेदः ।,
रह स्त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्तः ।।"

अ०स०, पृ० १४

(मुझे स्मरण आ रहा है कि गोदावरी के किनारे इसी पंचपटी में मैं शिकार से लौटता था और बेतों के बने इन घरों के एकान्त स्थान में तुम्हारी गोद में सिर रख कर लेटा करता था । उस समय गोदावरी की तरंगों से शीतल पवन द्वारा मेरी थकावट दूर होती थी ।) (यह रघुवंश में, पुष्पकारूढ़ राम की सीता से उक्ति है)

रुय्यक इस पद्य में स्मरणालङ्कार नहीं मानते क्योंकि इसमें जो स्मृति है वह सादृश्य के बिना है ।

जयरथ का कथन है कि अनुभूयमान और स्मर्यमाण में से कोई भी उपमेय या उपमान बन सकता है । वे लिखते हैं ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतश्च स्मर्यमाणेनानुभूयमानस्य, अनुभूयमानेन वा स्मर्यमाणस्य

सादृश्यपरिकल्पनमयमलङ्कारः । यदुक्तम् -

यथा दृश्येन जनिता साम्यधीः स्मर्यमाणगा ।
स्मर्यमाणकृताप्यस्ति तथेयं दृश्यगामिनी ।।

प्रथम प्रकार के स्मरणालङ्कार का उदाहरण उत्तर रामचरितम् का पूर्वोक्त पद्य है तथा दूसरे प्रकार के उदाहरण के रूप में जयरथ ने मेघदूत का यह श्लोक उद्धृत किया है -

तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः,
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः ।
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण,
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ।।

मेघदूत, २/१४

इस पद्य में अनुभूयमान (सामने उपस्थित) मेघ, उपमान है और स्मर्यमाण क्रीडाशैल उपमेय है, जबकि पूर्वोक्त (अतिशयित० आदि) पद्य में अनुभूयमान लव उपमेय है और स्मर्यमाण राम उपमान हैं ।

सर्वस्वकार ने स्मरणालङ्कार का प्रेयोलङ्कार से भेद बताते हुए लिखा है कि दूसरे का (प्रेयो० का) विषय वह स्मृति है, जो सादृश्य से भिन्न कारण से उत्पन्न होती है, जैसे - "अहो, कोप में भी मुख कमनीय था।" किन्तु उस (सादृश्येतर निमित्त से उत्पन्न) स्मृति में विभावादि द्वारा व्यंग्यता रहनी चाहिए । केवल (स्मरण आदि) स्व-शब्द मात्र से कह देने से प्रेयोलङ्कार नहीं होगा जैसे कि 'अत्रानुगोदम्' आदि पद्य में (स्व-शब्द से) कहा गया है ।[६८]

श्री विद्या चक्रवर्ती भी रुय्यक और जयरथ से सहमत हैं । "अहो, कोपेऽपि कान्तं मुखम्" इस पद्य में स्मरणालङ्कार का निषेध करते हुए वे लिखते हैं -

अत्राभिनिविष्टस्य नायकस्य प्रियानुरागसंस्काराणां संस्कारान्तराभिभावकतया भूयोभूयस्समुद्बुध्यमानानां महिम्नैव स्मृतिः, नहि सदृशानुभवात् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अ०स० सजी०, पृ० ४२

सर्वस्वकार ने "यैर्दृष्टोऽसि तदा ललाटपतितप्रास-प्रहारो युधि" इत्यादि स्थलों में दूसरी सदृश वस्तु का अनुभव होने पर भी विशेषालङ्कार माना है, जिसका स्वरूप है - अशक्य वस्त्वन्तर का निष्पादन या करण। 'करण' क्रिया का सामान्य स्वरूप है जो 'दर्शन' में भी पाया जा सकता है। समुद्रबन्ध ने रुय्यक के उपर्युक्त मत का बड़े प्रभावशाली ढंग से समर्थन करते हुए "यैर्दृष्टोऽसि' इत्यादि पद्य के प्रसंग में लिखा है-

"ललाटपतितप्रासप्रहारत्वेन ज्वलदलिकविलोचनत्वप्रतियोगिक बिम्बप्रतिबिम्बभाववता सदृशस्य वर्णनीयस्यानुभवेन जन्यस्य कौतुकास्तगमनेन स्वनिमित्ततयाक्षिप्तस्येश्वरज्ञानस्य साक्षात्कारत्वेन विवक्षितत्वान्न स्मृत्यलङ्कारः, अपि तु वक्ष्यमाणस्तृतीयो विशेषप्रकारः।

अलङ्कारसूत्रम्, पृ० ३१

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूपक

पूर्व-इतिहास

भरत

यह अत्यन्त प्राचील अलङ्कार है। वेसे तो इस अलङ्कार के उदाहरण वेदों में भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं किन्तु सर्वप्रथम इसका लक्षण भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में दिया है। इनके अनुसार जहां केवल गुण के आश्रय से किंचित सादृश्य को अपने विकल्प से रूप प्रदान किया जाता है वहां रूपक अलङ्कार होता है। सारांश यह है कि इन्होंने गुण साम्य के आधार पर एक पदार्थ को दूसरे का रूप देने को रूपक माना है।[६६] भरत ने उपमा और रूपक के अन्तर में मुख्यतः तीन विशेषताओं पर बल दिया है -

१. उपमा का आधार 'सादृश्य' है, रूपक का 'औपम्य', जो किंचित् सादृश्य द्वारा सम्पन्न होता है। रूपक में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत के अंगों में सादृश्य के कारण तुल्यता कल्पित की जाती है।

२. उपमा का आधार है गुणाकृति का सादृश्य, रूपक का आधार केवल गुण है और यह 'गुण', 'नाना द्रव्यों के आनुषंगिक आधार द्वारा सम्पन्न होता है, जैसे वापी[६७] की तुलना स्त्री से, केवल अंगभूत अवयवों के गुण के आधार पर की गयी है, आकृति के आधार पर नहीं।

३. उपमा में आकृति का सादृश्य है, रूपक में 'रूप-निर्वर्णना', भाव यह कि रूपक में, आकृति-सादृश्य न होते हुए भी प्रस्तुत-अप्रस्तुत में रूपाभेद कल्पित किया जाता है।

रूपक के विवेचन तथा भरत द्वारा दिये गये एकमात्र उदाहरण से यह स्पष्ट है कि इनकी दृष्टि में सामान्यतः रूपक का वह रूप था, जिसको बाद के आचार्यों ने सांग रूपक कहा। परन्तु विवेचन इतना अविशेषीकृत है कि उसमें रूपक-मात्र का समावेश हो सकता है।

भामह

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्होंने अर्थालङ्कारों के निरूपण का प्रारम्भ ही रूपक से किया

है। इनके अनुसार जहां गुणों के साम्य के आधार पर उपमान के साथ उपमेय का तादात्म्य स्थापित किया जाय वहां रूपक अलङ्कार होता है।[७१] इनके लक्षण में दो बातों पर विचार किया गया - गुणों की समता एवं उपमेय की उपमान के साथ एकरूपता।

काव्यालङ्कार के प्रथम परिच्छेद में अलग-अलग 'रूपकादिरलङ्कार'[७२] तथा 'रूपकादिरलङ्कार'[७३] पदों का प्रयोग हुआ है। इससे यह प्रतीत होता है कि कोई प्राचीन परम्परा (जिसको भरत ने नहीं अपनाया) अर्थालङ्कारों में रूपक को प्रधानता प्रदान करती थी।

इन्होंने रूपक के दो भेद किए हैं -समस्तवस्तुविषय तथा एकदेशविवर्ती। समस्तवस्तुविषय रूपक में समस्त उपमान का (अवयवों के साथ) समस्त उपमेय पर (अवयवों के साथ) आरोप हो जाता है। एकदेशविवर्ती रूपक में कतिपय अवयवों पर ही आरोप होता है, समस्त वस्तु पर नहीं।

दण्डी

दण्डी ने उपमा चक्र के समान ही रूपक चक्र का भी विस्तृत विवेचन काव्यादर्श के द्वितीय परिच्छेद में किया है। यह विवेचन 31 श्लोकों में हुआ है। इनके अनुसार यदि अति-सादृश्य के कारण उपमान और उपमेय का भेद तिरोहित हो जाय तो उस सादृश्य (उपमा) को रूपक कहते हैं।[७४] इनका लक्षण अत्यन्त सामान्य है, इसमें वह सूक्ष्मता एवं वैज्ञानिकता नहीं जो भरत और भामह के लक्षणों में है, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस अभेद-प्रतिपादन पर बल दिया गया है वह उपमा के रूपक का अन्तर है। 'कान्तं चन्द्रमिव मुखम्' उपमा के तो 'चन्द्र-मुखम्' रूपक है। गुणाधिक्य के कारण चन्द्र और मुख में अभेद बतलाना ही रूपक है, इसी अभेद को 'रूपता' अथवा 'आरोप' संज्ञा दी गयी है।

दण्डी ने रूपक के १८ भेदों का वर्णन काव्यादर्श में किया है। शेष भेद विद्वानों के अनुमान[७५] पर छोड़ दिया है। ग्रंथ विस्तार के भय से उन भेदों का विवरण यहां नहीं दिया जा रहा है।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उद्भट

इनके अनुसार गुणवृति की प्रधानता के कारण जब एक पद दूसरे पद के साथ इस प्रकार संबंधित हो कि उनमें प्रत्यक्ष संबंध असम्भव हो जाय तो वहां रूपक अलङ्कार होता है।[७६] इनका लक्षण सभी पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षणों से विकसित और वैज्ञानिक है। आगे चलकर मम्मट ने भी इस लक्षण से लाभ उठाया है। भरत ने रूपक के लक्षण में 'गुणाश्रय' पद का और भामह ने 'गुणानां समता' पदों का प्रयोग किया है। परन्तु उद्भट के लक्षण में प्रयुक्त 'गुणवृत्तिप्रधान' योग एक विशेष सूक्ष्मता का द्योतक है। 'चन्द्रवदनम्' अभिधा द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि मुख का चन्द्र होना असंभव है, इसलिए इसको लक्षणा से स्वीकार किया जाता है, यही रूपक का आधारभूत उदाहरण है।

इन्होंने रूपक के चार भेदों का विवेचन किया है, जिनमें से प्रथम दो भेद तो भामह के ही अपना लिये हैं -समस्तवस्तुविषय तथा एकदेशविवर्ती। भामह ने समस्तवस्तुविषय रूपक का लक्षण नहीं दिया। उद्भट के अनुसार समस्तवस्तुविषय रूपक वहां होता है जहां रूपता के लिए समस्त अभिमत वस्तुओं का स्वकण्ठ से कथन होता है- 'बन्धस्तस्य यतः श्रुत्या'। उदाहरण अत्यन्त सरल है-

ज्योत्स्नाम्बुनेन्दुकुम्भेन ताराकुसुमशारितम्।
क्रमशो रात्रिकन्याभिर्व्योमोद्यानमसिच्यत॥

एकदेशविवर्ती रूपक में कुछ उपमान कथित होते हैं तथा कुछ गम्य (अर्थाक्षिप्त) भी होते हैं, जैसे 'यतश्च श्रुत्यर्थाभ्याम् तस्य' बन्धस्तेन।' इसका उदाहरण है -''राजहंसैरवीज्यन्त शरदैव सरोनृपाः'। इसमें राजहंसों का चामरत्व और शरद् का नायिकात्व गम्य है।

उद्भट माला-रूपक को भी समस्तवस्तुविषय के अन्तर्गत ही मानते हैं, अलग अलङ्कार नहीं मानते ''समस्तवस्तुविषयं'' ''मालारूपकमिष्यते।'' यदि किसी वर्णन में रूपकों की श्रृंखला हो तो उसे भी समस्त वस्तु विषय माना जायेगा। उदाहरण है -

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वनान्तदेवतावेण्यः पान्थस्त्रीकालश्रृंखलाः ।
मारप्रवीरासिक्तता भृङ्गमालाश्चकाशिरे ।।

उपर्युक्त पद्य में भृंगमालाओं को तीन अलग-अलग रूप दिये गये हैं । यह समस्तवस्तुविषय रूपक है ।

रूपक का एक भेद एकदेशवृत्ति माना गया है । उद्भट की पंक्ति है -

"यद्वैकदेशवृत्तिस्यात्पररूपेण रूपणात् ।"

का०सा०स०, १/१२

एकदेशवृत्ति रूपक तब होता है जब पररूप के साथ रूपण किया जाय अर्थात् जहां प्रकृत को अप्रकृत का रूप प्रदान किया जाय । जैसे-

आसारधारा विशिखैर्नभोभागप्रभासिभिः ।
प्रसाध्यते स्म धवलैराशाराज्यं बलाहकैः ।।

प्रसाधन के दो अर्थ हैं - अलङ्कार तथा उपार्जन। उपर्युक्त उदाहरण में 'आशाराज्य' में आशा की अपेक्षा राज्य अधिक प्रमुख है और आरोप विषय (आशा) उपमान [७७] राज्य में श्लेष की शक्ति से विलीन हो जाता है।

वामन

वामन द्वारा दिये गये रूपक लक्षण में किसी प्रकार की नवीनता नहीं है, अपितु भरत एवं भामह के लक्षणों का सार-ग्रहण किया गया है। इनके अनुसार गुणसाम्य के कारण उपमानोपमेय का तत्वारोप अर्थात् अभेद का आरोपण रूपक कहलाता है ।

उपर्युक्त लक्षण पर भामह का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। भामह ने 'गुणानां समता' को आधार माना था और 'तत्व की रूपता' को रूपक आख्या दी थी । वामन ने इन दोनों विशेषताओं को अपना लिया। आरोप शब्द का प्रयोग लक्षण के विकास का सूचक है । परवर्ती आचार्यों ने इस शब्द को अधिक वैज्ञानिक समझकर स्वीकार कर लिया और इसकी व्याख्या इस प्रकार की - "विषयिणा अनिगीर्णस्य विषयस्य तेनैव सह तादात्म्यप्रतीतिः आरोपः ।"

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुद्रट

रुद्रट ने उपमा के आधार पर रूपक का विवेचन किया है। इन्होंने रूपक के दो भेद किये हैं - वाक्य रूपक तथा समास रूपक। दोनों भेदों के उपभेद दो अलग-अलग रूप से हो सकते हैं। एक प्रकार से दोनों भेदों के उपभेद दो-दो हैं -समस्त विषय तथा एकदेशी।

इनके अनुसार रूपक का सामान्य लक्षण है -"जहां सामान्य धर्म के बिना कथन के ही, गुण के साम्य के आधार पर उपमानोपमेय में अभेद की कल्पना की जाय, वहां रूपक अलङ्कार होता है।"[७९] इस लक्षण पर भामह का प्रभाव परिलक्षित होता है। भामह के उत्प्रेक्षा लक्षण में 'अविवक्षित सामान्या' शब्द आया है,[८०] इन्होंने उसे अपना लिया। नमिसाधु[८१] के अनुसार 'अविवक्षित सामान्या' पद का प्रयोग रूपक और उत्प्रेक्षा में अन्तर बताने के लिए किया गया है।

समास रूपक, समासोपमा के समान है। दोनों में मात्र इतना अन्तर है कि समासोपमा उपमान की अप्रधानता होती है और समास रूपक में उपमेय की अप्रधानता।[८२]

सावयव, निरवयव तथा संकीर्ण इन तीनों उपभेदों में से सावयव के तीन उपभेद सहज, आहार्य तथा उभय हैं और निरवयव के चार उपभेद शुद्ध, माला, रशना तथा परम्परित हैं। इसके पश्चात् रुद्रट ने समस्तविषय तथा एक देशी के लक्षण-उदाहरण दिये हैं।

मम्मट

इनके अनुसार भेद के विद्यमान रहने पर भी अत्यन्त सादृश्य के कारण उपमानोपमेय में अभेद का कथन रूपक अलङ्कार है-

"तद्रूपकमभेदोय उपमानोपमेययोः ।। ",१०/९३

यह लक्षण उपमा लक्षण की परम्परा में लिखा गया है। भेद रहते हुए साधर्म्य उपमा है। (साधर्म्यपुमा भेदे) और भेद रहते हुए भी अभेद रूपक है (रूपकमभेदो थ)। वृत्ति में मम्मट ने और स्पष्ट करते हुए लिखा है कि प्रसिद्ध भेद वाले उपमानोपमेय का अति साम्य के कारण अभेद वर्णन

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूपक है - 'अतिसाम्यात् अपह्नुतभेदयोः अभेदः ।'

इन्होंने रूपक के दो भेद किए हैं -समस्त वस्तु विषय तथा एकदेशविवर्ती । समस्तवस्तु विषय रूपक तब होता है जब आरोप्यमाण अर्थ 'शब्दतः उपात्त' (अर्थात् श्रौत) हो । एक देश विवर्ती रूपक वहां होता है जहां आरोप्यमाण अर्थ कुछ अंश में श्रौत हो और कुछ अंश में आर्थ हो । यह विभाजन श्रोती तथा आर्थी उपमा के समानान्तर होते हुए भी कुछ भिन्न है और रूपक-भेद-परम्परा से संयुक्त है ।

काव्यप्रकाश में रूपक के पुनः दो भेद किए गये हैं - सांग तथा निरंग, इन्हीं को सावयव तथा निरवयव भी कहते हैं । आरोप विषय पर एकाधिक का आरोप होने से माला रूपक होता है, जिसका आधार मालोपमा है ।[८३]

परम्परित रूपक में एक आरोप दूसरे आरोप का कारण[८४] होता है- आरोप परम्परा के कारण इसे 'परम्परित' कहते हैं । इसके दो भेद हैं - श्लेष-मूलक तथा अश्लेष-मूलक ।

परम्परित रूपक के संबंध में मम्मट ने दो महत्वपूर्ण बातें बताई हैं -

(क) श्लिष्ट परम्परित रूपक अभ्यालङ्कार[८५] है, केवल प्रसिद्धि के अनुरोध से इसका विवेचन यहां किया गया है ।

(ख) भामह आदि कुछ आचार्य श्लिष्ट परम्परित रूपक के कुछ उदाहरणों को 'एकदेशविवर्ती' ही[८६] मानते हैं ।

भामह ने रूपक के दो ही भेद माने हैं । समस्तवस्तुविषय तथा एकदेशविवर्ती । अतः जो समस्तवस्तुविषय नहीं है वह एकदेशविवर्ती ही माना जायेगा ।

मम्मट मालारूपक को तो स्वीकार करते हैं, किन्तु रशना रूपक का उन्होंने खण्डन किया है । रशना रूपक का उदाहरण देने के पश्चात् उन्होंने लिखा है कि यह चमत्कारयुक्त नहीं है इसलिए इसका लक्षण करने की आवश्यकता नहीं है-इत्यादिरशना रूपकं न वैचित्र्यवदिति न लक्षितं ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुय्यक एवं उनके टीकाकार

सर्वस्वकार ने रूपक अलङ्कार का विस्तृत विवेचन किया है। इनका सूत्र है -

"अभेदप्राधान्ये आरोपे आरोपविषयानपह्नवे रूपकम् ।।

इस सूत्र की वृत्ति में रूपक का लक्षण स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं -

"अभेदस्य प्राधान्याद् भेदस्य वस्तुतः सद्भावः । आरोपोऽन्यत्रान्यावापः। तस्य विषयविषय्यवष्टब्धत्वाद्विषयस्यापह्नवेऽपह्नुतिः। अन्यथा तु विषयिणा विषयस्य रूपवतः करणाद्रूपकम् ।

अर्थात् जहाँ अभेद की प्रधानता होने पर आरोप हो तथा आरोप विषय का अपह्नव हो वह रूपकालङ्कार है ।

अभेद की प्रधानता से, भेद का होना वास्तविक है । एक का दूसरे पर निक्षेप आरोप कहलाता है । वह आरोप विषय और विषयी से संश्लिष्ट होता है । अपह्नुति से रूपक का भेद यह है कि यदि विषय का अपह्नव होता है तो अपह्नुति होती है, अन्यथा यदि विषयी द्वारा विषय को रूपित किया जाता है तो रूपक होता हैं। साधर्म्य तो दोनों ही अलङ्कारों में रहता है ।

'आरोप' शब्द को स्पष्ट करना उचित होगा । 'मुखं चन्द्रः' जब कहा जाता है तो सहृदय को दोनों में अभेद की प्रतीति होती है, जिसका आधार आरोप है । पूर्वोक्त वाक्यांश में मुख विषय है और चन्द्र विषयी (उपमान) । उपमान चन्द्र का मुख पर आरोप होता है निष्कर्ष यह कि प्रकृत (मुख) का अप्रकृत (चन्द्र) के रूप में रूपित होना आरोप है । कुछ प्राचीन आचार्यों ने अभेद प्रतीति की प्रक्रिया के मूल में सारोपा लक्षण माना है इनमें अलङ्कार भाष्यकार प्रमुख हैं ।[८७] लक्षण के दो भेद हैं -गौणी तथा शुद्धा । इनमें से गौणी सारोपा लक्षणा के मूल में सादृश्यं होता है, जिसका उदाहरण है 'गौर्वाहीकः' । इसमें वाहिक को बैल, इसलिए कहा गया है कि उन दोनों में विद्यमान गुणों में कुछ साम्य है । शुद्ध सारोपा

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लक्षणा के प्रसिद्ध उदाहरण 'आयुर्घृतम्' में घी को आयु कहने का आधार, सादृश्य नहीं है, अपितु सादृश्येतर सम्बन्ध (अतिशयकार्यकारित्व) के आधार पर ऐसा कहा गया है।[८५] यदि रूपक के मूल में सारोपा लक्षणा है तो केवल सादृश्य से ही नहीं अपितु सादृश्येतर संबंध से भी यह अलङ्कार माना जाना चाहिए। अलङ्कार रत्नाकरकार ने अलङ्कार-भाष्य की पूर्वोक्त मान्यता (लक्षणा परमार्थ यावता रूपकस्वरूपम्) का जोरदार समर्थन किया है। इनका कहना है कि प्रयोजन रूप व्यंग्यार्थ का, रूढ़ा लक्षणा में होना सम्भव नहीं है। व्यंग्यार्थ का पुट न होने से चारुत्व नहीं रहता एवं रस-परिपोष इसके बिना कहां से होगा ? इसलिए किसी भी अलङ्कार के मूल में रूढ़ा लक्षणा नहीं स्वीकार कर सकते। चूंकि प्रयोजनवती लक्षणा में व्यंग्यार्थ का पुट रहता है एवं उस (व्यंग्यार्थ) से जन्य सौन्दर्य तथा रस-परिपोषकता होती है इसलिए उसे रूपक का आधार स्वीकार करना चाहिए।[८६] यह लक्षणा सादृश्य से भी होती है और सम्बन्धान्तर से भी। इसलिए लक्षणामूलक होने के कारण रूपक को भी दोनों प्रकार के संबंध पर आधारित आरोप से मानना चाहिए, क्योंकि एक को (सादृश्य संबंध प्रयुक्त लक्षणा को) अलङ्कार मानना और दूसरी (सम्बन्धान्तर से प्रयुक्त) लक्षणा से अलङ्कार नहीं मानना न्यायसंगत नहीं है। यही बात शोभाकर ने अधोलिखित पद्य में कही है -

"सादृश्यसम्बन्धनिबन्धनाया अलंकृतित्वं यदि लक्षणायाः ।
साम्येऽपि सर्वस्व परस्य हेतोः सम्बन्धभेदेऽपि तथैव युक्तम् ।।

अ०र०, पृ० ३३

रूपक की सादृश्यमूलकता

पूर्ववर्ती आलङ्कारिकों में आचार्य दण्डी, सम्बन्धान्तर से होने वाली लक्षणा को रूपक का आधार मानने के पक्ष में नहीं हैं। उनके अनुसार रूपक सादृश्यनिमित्तक अलङ्कार है। दण्डी ने कहा है -

उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते । काव्यादर्श, २/६६

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वस्वकार इस कथन से सहमत हैं इसीलिए उन्होंने अपनी वृत्ति

में "साधर्म्यं त्वनुगतमेव" कहने के साथ दण्डी के उक्त कथन को उद्धृत भी किया है। सम्बन्धान्तर से जहां आरोप होता है, वहां अलङ्कार नहीं होता बल्कि केवलवैचित्र्य होता है।[६०] सादृश्यनिमित्तक आरोप को ही रूपक मानने वाले दण्डी आदि प्राचीन आलङ्कारिकों तथा रुय्यक को भी यही मत अभीष्ट है। रुय्यक के टीकाकार जयरथ की सहमति, अलङ्कार भाष्य तथा अलङ्काररत्नाकर के साथ है। उन्होंने यह दिखाने की चेष्टा की है कि रुय्यक ने भी सम्बन्धान्तर आरोप को रूपक का मूल माना है। प्रमाणस्वरूप उन्होंने अलङ्कारानुसारिणी का एक उद्धरण दिया है, जो सर्वस्वकार का ही एक अप्राप्य ग्रंथ है। उसमें "अमृतकवलः शोभाराशिः प्रमोदरसप्रपा",[६१] आदि उदाहरणों में इन्दु में श्रद्धा का अरोप वर्णित है, जिसमें सादृश्य का संबंध नहीं, अपितु कार्य-कारण सम्बन्ध है। जयरथ के अनुसार सर्वस्वकार ने इसमें मालारूपक माना है अतः ग्रंथकार को भी सम्बन्धान्तर से होने वाले आरोप से रूपक अलङ्कार मान्य है।[६२] अद्याव-धि पूर्वोक्त ग्रंथ (अलङ्कारानुसारिणी) उपलब्ध नहीं है किन्तु अलङ्कारसर्वस्व में तो केवल सादृश्य निमित्तक आरोप को ही रूपक का मूल स्वीकारा गया है। सर्वस्व में आये सभी उदाहरणों से तथा 'साधर्म्यं त्वनुगतमेव' इस उक्ति से भी यही प्रमाणित होता है। विमर्शिनीकार ने भी इस उक्ति की व्याख्या में यही स्वीकार किया है -

"अनेन च सादृश्यनिमित्त एवारोपो रूपकमित्युक्तं भवति।

विo, पृo ४४

पण्डितराज जगन्नाथ ने शोभाकर मित्र के मत का उल्लेख करके, उसका खण्डन किया है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार चिन्ता आदि अनेक कारणों से उत्पन्न होने वाली स्मृति को स्मरणालङ्कार का आधार न मानकर केवल सादृश्यमूलक स्मृति को ही इस अलङ्कार का आधार माना जाता है उसी प्रकार सादृश्य के अतिरिक्त कार्य-कारणभाव आदि अनेक संबंधों से होने वाले आरोप को रूपक न मानकर सादृश्यमूलक आरोप से ही रूपक मानना चाहिए।[६३] वे रुय्यक की मान्यता से सहमत हैं -

"सादृश्यमूलकेन न तादात्म्यं रूपकमामनन्ति।"

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रसगo, पृo २६७

रूपक में विषयी विषय को अपने रूप में रंग लेता है। श्री विद्या चक्रवर्ती कहते हैं -

"विषयी विषयं स्वेन रूपेण रूपवन्तं करोतीति रूपकमित्यर्थः ।

संजी०, पृ० ४४

समुद्रबन्ध ने सर्वस्वकार की वृत्ति में आये "अन्यथा तु विषयिणा विषयस्य रूपवतः करणाद्रूपकम्" की अत्यन्त सरल एवं सुन्दर व्याख्या की है -

विषयिणा कमलादिना । विषयस्य मुखादेः । रूपवतः करणादिति- स्वीयकमलादिरूपशालित्वेन करणादित्यर्थः । अनेनैव रूपवन्तं करोतीति रूपवच्छब्दाण्णिचि ण्वुलि च रूपयतीति रूपकमिति निरुक्तिरपि दर्शिता ।

विवृत्ति, पृ० ३२

सर्वस्वकार ने रूपक के तीन भेद किए हैं - निरवयव, सावयव, तथा परम्परित । इनमें से प्रथम (निरवयव) के दो उपभेद - केवल रूपक तथा माला रूपक हैं । सावयव के दो उपभेद - समस्त-वस्तु-विषय तथा अश्लिष्टशब्दनिबन्धन हैं, ये दोनों भी 'केवल' तथा 'माला' हो सकते हैं । इस प्रकार सर्वस्वकार ने रूपक के आठ भेदोपभेदों का सोदाहरण विवेचन किया है । परवर्ती आचार्य अप्पयदीक्षित ने इन आठ भेदों को 'प्राचीनों' द्वारा वर्णित बतलाया है ।[६४]

सर्वस्वकार ने दण्डी और रुद्रट के मत की ओर संकेत करते हुए कहा है कि वे रूपक के 'समस्त' आदि भेद मानते हैं । स्पष्ट है कि वे भेद रुय्यक को मान्य नहीं हैं इसीलिए उन्होंने कहा है कि उनका वर्णन उन्हीं आचार्यों के ग्रंथों में देखना चाहिए ।

'तदेवमष्टौ रूपकभेदाः । अन्ये तु प्रत्येकं वाक्योक्त-समासोक्तादिभेदाः सम्भवन्ति तेऽन्यतो द्रष्टव्याः ।"

अ०स०सजी०, पृ० ४६ पर वृत्ति ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिणाम

काव्यप्रकाश से पूर्ववर्ती किसी ग्रंथ में परिणाम अलङ्कार का उल्लेख नहीं हुआ है। इस ग्रंथ के टीकाकारों के अनुसार मम्मट को रूपक में परिणाम का अन्तर्भाव अभीष्ट है किन्तु स्वयं ग्रंथकार ने ऐसा कोई संकेत नहीं किया है। काव्य-प्रकाश पर उद्योत टीका लिखने वाले नागेशभट्ट ने मम्मट (द्वारा परिणाम के पृथग् अलङ्कारत्व के खण्डन) का समर्थन करते हुए लिखा है -

> यत्तु "आरोप्यमाणो यत्र विषयात्मतयैव प्रकृतकार्योपयोगी न स्वातन्त्र्येण स परिणामः। अत्र च विषयाभेदः आरोप्यमाणे उपयुज्यते रूपके तु नैवमिति विशेषः। वदनेन्दुना तन्वी स्मरतापं विलुम्पति इत्यादि उदाहरणम्। अत्र हि स्मरतापनाशनसामर्थ्यं मुखात्मनैव इन्दोः ग्रीष्मसन्तापहारकत्वाद्रमणीयशोभाधारत्वाच्च इन्दुः विषयतयोपात्तः" इति दाक्षिणात्याः। तन्न इन्दौ वदन तादात्म्यप्रतीतेर्वर्णनीयमुखाद्यनुत्कर्षकत्वेनालङ्कारकत्वाभावात् इति दिक्।"[६५]

इसका तात्पर्य यह है कि **"वदनेन्दुना तन्वी स्मरतापं विलुम्पति"** इत्यादि उदाहरण में इन्दु में मुख के तादात्म्य की प्रतीति होने के कारण यह (उदाहरण) वर्णनीय मुख के अनुत्कर्षकत्त्व का द्योतक हो गया है, इसलिए यहां अलङ्कारत्व हीं नहीं रहा।

डा० ओम प्रकाश[६६] तथा डा० राजवंश सहाय 'हीरा'[६७] यह मानते हैं कि परिणामालङ्कार के उद्भावक राजानक रुय्यक हैं। डा० रामचन्द्र द्विवेदी[६८] का कहना है कि "रुय्यक का कोई भी टीकाकार इस बात का संकेत नहीं देता कि उन्होंने सबसे पहले इस अलङ्कार का निरूपण किया है। संभव है कि अलङ्कारसार या अलङ्कारभाष्य के लेखक अथवा किसी अज्ञात आचार्य ने इसकी उद्भावना की हो।" डा० रेवा प्रसाद द्विवेदी[६९] भी इस अलङ्कार का उद्भावक रुय्यक को ही मानते हैं किन्तु इस प्रसंग के अन्त में लिखते हैं कि- "हमारी दृष्टि से परिणाम अलङ्कार नहीं, दोष

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है । जिसका उपयोग न हो सके उसका काव्य-प्रयोग निरर्थक होता है, जो अपुष्टार्थत्व दोष है ।"[100] मेरे विचार में यह मत तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि परिणाम भी अन्य अलङ्कारों की भांति ही काव्य में चारुत्व का उत्कर्ष करने वाला होता है, इसलिए उपयोगी है ।

अभी तक ज्ञात तथ्यों के आधार पर परिणाम अलङ्कार का उद्भावक रुय्यक को ही मानना चाहिए । इस अलङ्कार का परवर्ती विकास रुय्यक द्वारा उद्भावित लक्षण के आधार पर हुआ । शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, अप्पयदीक्षित तथा पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने-अपने ग्रंथों में इसका विवेचन किया है ।

रुय्यक ने परिणाम का लक्षण निम्नलिखित सूत्र में दिया है-

"आरोप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वे परिणामः ।।

अर्थात् आरोप्यमाण (उपमान) का प्रकृत अर्थ में उपयोगी होना ही परिणाम अलङ्कार है । उपर्युक्त सूत्र की वृत्ति में उन्होंने इसका विशद विवेचन किया है । रूपक और परिणाम का भेद बताते हुए वे लिखते हैं -

"आरोप्यमाणं रूपके प्रकृतोपयोगित्वाभावात्प्रकृतोपरञ्जकत्वेनैव केवलेनान्वयं भजते परिणामे तु प्रकृतात्मतया आरोप्यमाणस्योपयोग इति प्रकृतमारोप्यमाणरूपत्वेन परिणमति ।

अ०स०, पृ० ५१

अर्थात् रूपक में आरोप्यमाण (उपमान) केवल प्रकृत अर्थ का शोभावर्धक (उपरंजक) होता है क्योंकि वह प्रकृतोपयोगी नहीं होता । परिणाम की यह विशेषता है कि उसमें आरोप्यमाण का प्रकृत रूप से उपयोग भी होता है, इसलिए प्रकृत यहां आरोप्यमाण रूप से परिणत होता है ।

इस प्रसंग की व्याख्या करते हुए विमर्शिनीकार कहते हैं कि रूपक के समान ही अन्य किसी भी अलङ्कार में प्रकृतोपयोगिता नहीं है, केवल परिणाम अलङ्कार में प्रकृत वस्तु आरोप्यमाण के उपयोगी रूप से व्यवहार करती है ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"प्रकृतमप्रकृतव्यवहारविशिष्टतयावतिष्ठते। प्रकृतस्वरूपमात्रावस्थाने प्रकरणार्थानिष्पत्तेः। एवमत्र प्रकरणोपय्योगित्वाभावादित्यारोप्यमाणस्योपयोग इति चान्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रकृतोपयोगित्वस्यासाधारणत्वं दर्शितम् असाधारणत्वस्य हि धर्मस्य तत्वव्यवस्थापकत्वाल्लक्षणत्वम्। अतश्च नास्त्येवालङ्कारान्तरेषु प्रकृतोपयोगित्वम्।

वि०, पृ० ५१

रूपक में विषयी का आरोप प्रकृत अर्थ का उपरंजन करने के पश्चात् विश्रान्त हो जाता है, जबकि परिणाम में उसकी विश्रान्ति आरोप विषय बन कर होती है। 'मुख चन्द्रः' में जो चारुत्व प्रतीति होती है उसमें चन्द्र का मुख के रूप में कोई उपयोग नहीं है। केवल मुख में चन्द्र के रूप का आरोपमात्र होता है। 'परिणाम' में होने वाले रूप समारोप का, रूपक के रूप समारोप से किंचित् अन्तर है। रूपक में, उपमान उपमेय को अपने रूप से सर्वथा रूपित कर देता है, उपमेय का रूप उपमान के रूप में विलीन सा हो जाता है, जिससे वह अपने स्वरूप से भ्रष्ट हो जाता है। किन्तु परिणाम में विषय (उपमेय) का उपयोग शेष रहता है, इसलिए वह विषयी के रूप में अपने रूप का सर्वथा विलय नहीं करता, या कह सकते हैं कि अपने स्वरूप से च्युत नहीं होता। रूपक के उदाहरण 'मुखं चन्द्रः' में चन्द्र के सौन्दर्य में मुख (उपमेय) का विलय हो जाता है जिससे पुनः उसकी कोई उपयोगिता न रहने के कारण (मुख का) स्वरूप नष्ट सा हो जाता है। दूसरी ओर परिणामालङ्कार के उदाहरण 'मुख चन्द्रेण तापः शाम्यति' में आरोप्यमाण चन्द्र अपने रूप से आरोप विषय मुख को रूपित तो अवश्य करता है किन्तु फिर भी मुख अपने स्वरूप से विलीन नहीं होता, क्योंकि ताप शमन के साथ उसका उपयोग शेष रहता है। पूर्वोक्त उदाहरण में दो अंश हैं, पहला है मुखचन्द्र और दूसरा है तापशमन। पहला अंश रूप समारोप बताने के लिए है और दूसरा अंश उपयोग का है। श्री विद्या चक्रवर्ती ने अपनी टीका में इसे ही व्यवहारान्त आरोप कहा है।

विमर्शिनीकार ने इसे प्रकृत का अप्रकृत-व्यवहार विशिष्ट होना कहा है। तात्पर्य यह है कि परिणाम में रूप समारोप तो होता ही है, व्यवहार

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समारोप भी होता है। अप्रकृत का प्रकृत (उपमेय) पर व्यवहार समारोप ही प्राकरणिक अर्थ की सिद्धि में सहायक होता है और इसीलिए उसकी उपयोगिता है। रुय्यक ने परिणाम के दो भेद किए हैं - समानाधिकरण्यगत तथा वैयधिकरण्यगत।[१०३] प्रथम का उदाहरण है-

तीर्त्वा भूतेशमौलिस्रजममरधुनीमात्मनासौ तृतीय-
स्तस्मै सौमित्रमैत्रीमयमुपहृतवानातरं नाविकाय।
व्यामग्राह्यस्तनीभिः शबरयुवतिभिः कौतुकोदञ्चदक्षं
कृच्छ्रादन्वीयमानस्त्वरितमथ गिरिं चित्रकूटं प्रतस्थे ॥

यहां लक्ष्मण की मैत्री प्रकृत है। वह अप्रकृत और समान विभक्तिक 'उतराई' (आतरम्) के रूप में परिणत हो गयी है। 'आतरम्' का, मैत्री रूप में, प्रकृत में उपयोग है। इसलिए जिस प्रकार समासोक्ति में अंप्रकृत प्रकृतोपयोगी होता है और वह आरोप होता है। इसी प्रकार यहां भी समझना चाहिए अन्तर केवल यह है कि समासोक्ति में विषयी के गम्यमान होने से विषय का ही प्रयोग होता है जबकि परिणाम में दोनों का शब्दतः उपादान होता है और उन दोनों में तादात्म्य होने के कारण परिणामिता मानी जाती है।

दूसरा (वैयधिकरण्य का) उदाहरण यह है-

"अथ पक्त्रिमतामुपेयिवद्भिः सरसैर्वक्रपथाश्रितैर्वचोभिः।
क्षितिभर्तुरुपायनं चकार प्रथमं तत्परतस्तुरङ्गमाद्यैः ॥

(इसके बाद पहले तो परिपालक की प्राप्त तथा सरस किन्तु वक्रोक्तिपूर्ण वचनों से राजा को उपहार दिया, उसके पश्चात् घोड़ों आदि का उपहार दिया।)

यहां राजा के मिलने पर उपायन (उपहार) देना उचित होता है। यहां पर (उपहार) वचन रूप है, इसलिए यहां भिन्न विभक्ति में आये वचनों का, उपहार के रूप में परिणाम है।[१०५]

श्री विद्या चक्रवर्ती का यह कथन कि रूपक और परिणाम के विषय विवेचन में प्राचीन आचार्यों की बुद्धि को भी व्यामोह हो जाता है[१०६]- बहुत

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सीमा तक उचित है। उन्होंने संजीविनी में इन दोनों अलङ्कारों के भेद का विस्तार से विवेचन किया है। इस प्रसंग का एक अंश उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है -

तत्रोपयोगित्वं वाक्यार्थानुप्रवेशपर्यन्तमारोपविवक्षायां स्यात्, तद्धि रूपके नास्ति मुखमेव चन्द्र इत्येतावतैवरूपकत्वसिद्धेः। तस्मादारोप्यमाणं चन्द्रत्वादि मुखादौ ताद्रूप्यप्रतीत्याधानरूपेणोपरञ्जकत्वेनैव रूपकालङ्कारेऽन्वयं भजते। .. .. .. परिणामालङ्कारे पुनरारोप्यमाणं न केवलं प्रकृतोपरञ्जकं, यावता प्रकृतरूपमपह्नुवानं सत् तदात्मत्वेनोपयुज्यते। अत इह वाक्यानुप्रवेशान्तमारोपविवक्षा, सा चाप्रकृतस्य प्रकृतरूपापत्तावेवोपपद्यते न पुना रूपकवद् प्रकृतस्याप्रकृतरूपापत्तौ। ..... विषयित्वारोपणं विषये ताद्रूप्यप्रतीतिमाक्रान्तं चेद् विवक्ष्यते तदा ताद्रूप्यप्रतीतिजनकत्व मात्रमुपरञ्जकत्वमिति तावतैवारोपणस्य चरितार्थता। अस्ताद्रूप्यप्रतीतिमात्रप्रसिद्ध्यर्थमप्रकृतं प्रकृतरूपापन्नं भवति रूपके। परिणामे तु प्रकृतोपयोगान्तमारोपविवक्षेति स्वरूपादप्रच्युतस्यैव प्रकृतस्याप्रकृतरूपोपग्राहित्वलक्षणावस्थान्तरापत्तिरेव। इतरथा रूपकन्यायेन-प्रकृतस्य स्वरूपस्थगतेन प्रकृतमेव न प्रतीयेत का तत्र प्रकृतोपयोगिता, तदभावे च का रूपकविविक्तविषयता ?

संजी०, पृ० ५४-५५

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्देह

पूर्व-इतिहास

भामह

सन्देह अलङ्कार का सर्वप्रथम विवेचन भामह ने इस प्रकार किया है- "उपमेय की प्रशंसा करने के लिए उपमान के साथ उसकी तद्रूपता और कभी भेद का ससन्देह वर्णन, इस नाम का अलङ्कार है।[१०७]

दण्डी

दण्डी ने उपमा के भेदों के अन्तर्गत ही सन्देह का वर्णन किया और इसे संशयोपमा का नाम दिया। उनके अनुसार उपमान और उपमेय का संशय ही संशयोपमा अलङ्कार है।[१०८]

उद्भट[१०९]

उद्भट के सन्देहालङ्कार विवेचन में नया मोड़ आया और इन्होंने शुद्ध एवं निश्चयगर्भ दो सन्देहों का उल्लेख किया, जिनमें से निश्चयगर्भ का लक्षण तो भामह का ही ले लिया पर शुद्ध सन्देह की परिभाषा अपनी ओर से दी। इनके अनुसार यदि अन्य अलंकार की छाया या प्रभाव के कारण, कवि कल्पना के द्वारा दो वस्तुओं में (सन्देह न रहने पर भी) सन्देह का निबन्धन करे तो शुद्ध सन्देह होगा।

इस रूप में कवि को सन्देह नहीं होता बल्कि वह दूसरों के सन्देह की संभावना करता है। उदाहरण के रूप में निम्नलिखित पद्य दिया है-

"नीलाब्दः किमयं मेरौ 'घूमोथप्रलयानले।
इति यः शङ्क्यते श्यामः पक्षीन्द्रेर्कत्विषि स्थितः॥"

यहां उपमानोपमेय भाव को मन में रख कर सन्देह प्रस्तुत किया गया है।

वामन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वामन के सन्देह निरूपण में कोई नवीनता नहीं दीखती। भामह

का 'ससन्देह' यहां सन्देह बन गया है। इनके अनुसार अतिशयार्थ (चमत्कार के निमित्त) उपमान और उपमेय का उभय कोटि का संशय सन्देह अलङ्कार है।[११०]

रुद्रट

रुद्रट ने 'संशय' नाम से इस अलङ्कार का विवेचन किया है। इसका लक्षण है - सादृश्य के कारण जब एक वस्तु में अनेक विषयों का सन्देह हो तो वहां (अनिश्चय रूप) संशय अलङ्कार होता है। संशय के अन्य प्रकार भी हैं जो दोनों ही निश्चयगर्भ अथवा निश्चयान्त हो सकते हैं -

(क) उपमेय में असंभव वस्तु की विद्यमानता अथवा संभव वस्तु की अविद्यमानता का वर्णन।

(ख) उपमान में असंभव वस्तुओं की विद्यमानता अथवा संभव वस्तु की अविद्यमानता।

संशय का एक भेद वह है जहां सादृश्य के कारण उपमान और उपमेय में कर्त्ता आदि कारकों से सम्बद्ध इस प्रकार का सन्देह हो कि कारक उपमेय है या उपमान जैसे -

गमनमधीते हंसैस्त्वतः सुभगे त्वया नु हंसेभ्यः।
किं शशिनः प्रतिबिम्बं वदनं ते किं मुखस्य शशी ॥ ८/६६

मम्मट

मम्मट का ससन्देहालङ्कार विवेचन भामह एवं उद्भट् से प्रभावित है। इनके अनुसार सादृश्य के कारण उपमान का उपमेय के साथ संशयात्मक ज्ञान हो तो ससन्देहालङ्कार होता है। इन्होंने इसके दो भेद माने हैं - भेद की उक्ति तथा अनुक्ति। प्रथम के भी दो भेद दिखाए हैं -निश्चयगर्भ तथा निश्चयान्त। इनका भेद निरूपण रुद्रट की सरणिं पर है।

रुय्यकादि

अलङ्कारसर्वस्व में सन्देह का लक्षण निम्नलिखित सूत्र एवं उसकी वृत्ति में दिया गया है -

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"विषयस्य संदिह्यमानत्वे संदेहः ।। सूत्र १७ वृत्ति-" अभेदप्राधान्ये आरोप इत्येव। विषयः प्रकृतोर्थः, यद्भित्तित्वेनाप्रकृतोर्थः सन्दिह्यते । अप्रकृते सन्देहे प्रकृतोपि सन्दिह्यत एव । तेन प्रकृताप्रकृतगतत्वेन कविप्रतिभोत्थापिते सन्देहे संदेहालङ्कारः ।

इसका आशय यह है कि विषय की संदिह्यमानता में सन्देह अलङ्कार होता है। रूपक-लक्षण से यहां 'अभेदप्राधान्ये आरोपे' की मण्डूकप्लुति न्याय से अनुवृत्ति होती है । प्रकृत अर्थ, विषय कहलाता है, जिसकी भित्ति पर अप्रकृत का सन्देह होता है। प्रकृत और अप्रकृत में कवि प्रतिभा से उत्थापित सन्देह रहने पर यह अलङ्कार होता है ।

जयरथ के अनुसार रुय्यक, सन्देह में आरोप ही नहीं अध्यवसाय भी मानने के पक्ष में हैं । अध्यवसाय में या तो विषय का उपादान बिल्कुल नहीं होता जैसे कि अतिशयोक्ति में और यदि होता भी है तो विषयी द्वारा उसकी निगीर्यमाणता अवश्य रहती है । सन्देह अलङ्कार में भी साध्यअध्यवसाय हो सकता है, जैसे -

रंजिता नु विविधास्तरुशैला नामितं नु गगनं स्थगितं नु ।
पूरिता नु विषमेषु धरित्री संहृता नु ककुभस्तिमिरेण ।।"

अन्धकार ने विविध वृक्षों और पर्वतों को रंग-सा दिया आसमान को झुका-सा या ढक-सा दिया है, उबड़-खाबड़ स्थलों पर पृथ्वी को भरवा-सा दिया है और दिशाएँ (नीरक्षीरवत्) मिला सी दी हैं ।

यहां (आरोप) विषय अन्धकार पर राग आदि का आरोप किया तो गया किन्तु उन (रागादि) को तरु आदि पर आश्रित बतलाया गया है ।

कुछ लोग इस स्थल में सन्देह का आरोपमूलक नवीन भेद न मान कर अध्यवासाय मूलक भेद मानते हैं और कुछ लोग उत्प्रेक्षा का अंग मानते हैं क्योंकि 'नु' शब्द, उत्प्रेक्षा के बीज सम्भावना का द्योतक होता है । यही बात वृत्ति में स्पष्ट की गई है-

अत्रारोपविषये तिमिरे रागादि तर्वादिभिन्नाश्रयत्वेन आरोपितम् केचिदध्यवसायाश्रयत्वेनेमं सन्देहप्रकारमाहुः । अन्ये तु नुशब्दस्य

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्भावनाद्योतकत्वादुत्प्रेक्षाप्रकारमिमम् आचक्षते ।

सर्वस्वकार ने सन्देहालङ्कार के तीन भेद किए हैं -शुद्ध, निश्चयगर्भ और निश्चयान्त। इनमें से प्रथम भेद का उदाहरण है - "किं तारुण्यतरोरियं रसभरोद्भिन्ना नवा वल्लरी ....." इत्यादि पद्य। इसमें अन्त तक संशय बना रहा है, इसीलिए शुद्ध सन्देह है।

निश्चयगर्भ सन्देहालङ्कार वह है जिसमें आरम्भ और मध्य में संशय रहे किन्तु मध्य में निश्चय हो।

इसी प्रकार निश्चयान्त सन्देहालङ्कार वहां होता है, जहां आरम्भ में संशय हो और अन्त में निश्चय।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भ्रान्तिमान

पूर्व-इतिहास

भामह

भ्रान्तिमान अलङ्कार का उल्लेख भामह उद्भट वामन आदि आचार्यों ने नहीं किया। इस अलङ्कार का सबसे पहले विवेचन रुद्रट ने किया है, किन्तु दण्डी कृत मोहोपमा में इसका बीज दृष्टिगोचर होता है क्योंकि उनके उदाहरण में भ्रान्तिमान की छाया है -

शशीत्युत्प्रेक्ष्य तन्वङ्गि ! त्वन्मुखम् त्वन्मुखाशया।
इन्दुमप्यनुधावामीत्येषा मोहोपमा स्मृता ।।

का०द०, २/२५

रुद्रट

इनके अनुसार जहां कोई, अर्थ--विशेष (उपमेय) को देखता हुआ, तत्सदृश अन्य अर्थ (उपमान) को निस्सन्देह मान बैठे वहां भ्रान्तिमान अलङ्कार होता है।"[1] इस अलङ्कार का आधार 'औपम्य' है और प्राण 'निस्सन्देह भ्रान्ति'। टीकाकार नमिसाधु ने अपनी व्याख्या में उपमेय एवं उपमान का समावेश किया जबकि रुद्रट ने 'अर्थ विशेष' शब्द ही लक्षण में रखा था। इसका उदाहरण है -

पालयति त्वयि वसुधां विविधाध्वरधूममालिनीः ककुभः।
पश्यन्तो दूयन्ते घनसमयाशङ्कया हंसाः ।। ८/८८ ।।

मम्मट

मम्मट का भ्रान्तिमान विवेचन रुद्रट के आधार पर है। इन्होंने समान वस्तु को देख कर अन्य वस्तु की बुद्धि को भ्रान्तिमान अलङ्कार माना है। वृत्ति में अपनी बात से अधिक स्पष्ट करते हुए इन्होंने कहा है कि अप्राकरणिक के समान प्राकरणिक का अवलोकन करके अन्य (अप्रस्तुत) के बोध होने को भ्रान्तिमान अलङ्कार कहते हैं।"[2] रूपक आदि से इसका स्वरूप भिन्न है -

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"न चैव रूपकम् प्रथमातिशयोक्तिर्वा। तत्र वस्तुतो भ्रमस्याभावात्। इह च अर्थानुगमनेन संज्ञायाः प्रवृत्तेः, तस्य स्पष्टमेव प्रतिपन्नत्वात्। (पृ० ५४३)

रुय्यक

अलङ्कार-सर्वस्व का भ्रान्तिमान लक्षण मम्मट के लक्षण की अपेक्षा अधिक सरल एवं स्पष्ट है -

"सादृश्याद् वस्त्वन्तरप्रतीतिर्भ्रान्तिमान्" (सूत्र १६)

रुय्यक ने भ्रान्तिमान शब्द का विश्लेषण करते हुए कहा है कि इस अलङ्कार में भ्रान्ति रूप चित्त-धर्म रहता है इसलिए इसे भ्रान्तिमान कहना उचित है- 'भ्रान्तिश्चित्तधर्मः। स विद्यते यस्मिन्भणितिप्रकारे स भ्रान्तिमान्' उन्होंने आगे कहा है कि यह भ्रान्ति प्रकृत और अप्रकृत वस्तुओं में सादृश्य को देखकर होनी चाहिए न कि काम, शोक, भय, उन्माद आदि से पैदा होने वाली सादृश्यप्रयुक्ता च भ्रान्तिरस्य विषयः। ...... गाढ़मर्मप्रहारादिना तु भ्रान्तिर्नास्यालङ्कारस्य विषयः। शुक्ति में रजत की जो भ्रान्ति होती है वह भी इन दोनों में विद्यमान समान तत्व के आधार पर होती है किन्तु यह भ्रान्ति वस्तु के स्वभाव से उत्पन्न होती है, कवि प्रतिभा द्वारा सृष्ट नहीं है अतः उसे भी भ्रान्तिमान अलङ्कार मानना अनुचित है। विमर्शिनीकार ने कहा है -

सादृश्येऽपि कविप्रतिभोत्थापितस्यैवालङ्कारत्वं न पुनः स्वारसिकस्य। (वि०, पृ० १५३)

अलङ्काररत्नाकर में शोभाकर मित्र ने रुय्यक के भ्रान्तिमान लक्षण की आलोचना की है। उनका कहना है कि लक्षण में 'सादृश्याद्' पद का समावेश लक्षण को अव्याप्ति दोष से युक्त बनाता है क्योंकि इससे सादृश्येतर निमित्त (जैसे कि शोक भावावेश आदि) से जन्य भ्रान्ति में यह अलङ्कार नहीं माना जा सकेगा। परन्तु अधिकतर आचार्य ऐसा मानते हैं कि जहां कहीं भी सादृश्येतर निमित्त से जन्य भ्रान्ति होती है वहां तो वास्तविक भ्रान्ति होगी और यदि कवि-प्रतिभोत्थापित चमत्कार हुआ तो कोई दूसरा अलङ्कार। अमरु-शतक के -

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रासादे सा पथि पथि च सा पृष्ठतः सा पुरः सा, ...
.. कोऽयमद्वैतवादः ।। अमरु शतक (नि०सा०), श्लोक १०२

इस श्लोक में विरही नायक अपनी उत्कट प्रेम-पीड़ा के कारण एक-प्रियतमा को एक साथ ही अनेक स्थानों पर देख रहा है। इसमें भ्रान्ति का कारण है वियोग और विरही नायक तीनों लोाकों को स्वाभावतः प्रियामय मानता है। यह स्वारसिक (स्वभाव से जन्य) प्रतीति होने से केवल भ्रान्ति है भ्रान्तिमान अलङ्कार नहीं। अतएव जयरथ ने इसमें केवल भ्रान्ति माना है, भ्रान्तिमान अलङ्कार नहीं (वि०, पृ० १५२)। इसके अतिरिक्त वियोगी नायक प्रासाद को प्रियतमा नहीं समझता। इस प्रकार जयरथ ने शोभाकरमित्र का खण्डन किया है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उल्लेख

इतिहास

उल्लेख अलङ्कार का विवेचन सर्वप्रथम रुय्यक ने ही किया है। इनके पूर्ववर्ती (भामह से लेकर मम्मट तक) आचार्यों ने इसका विवेचन नहीं किया है, अतः रुय्यक ही इस अलङ्कार के उद्भावक माने जाते हैं । परवर्ती आचार्यों ने इसके स्वरूप निर्माण में रुय्यक का अनुसरण किया है । शोभाकर मित्र, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, अप्पयदीक्षित एवं पण्डितराज जगन्नाथ आदि सभी अचार्यों ने इसका निरूपण किया है ।

रुय्यक

इनके अनुसार सादृश्य के कारण वस्त्वन्तर प्रतीति भ्रान्तिमान अलङ्कार है, तो निमित्त वश एक वस्तु का अनेक प्रकार से ग्रहण (वर्णन) उल्लेख अलङ्कार है । उल्लेख एक प्रकार से भ्रान्ति की माला है, किन्तु दोनों में भेद यह है कि उल्लेख का आधार 'निमित्त' है, और उल्लेख में अनेकधा ग्रहण होता है । उल्लेख में 'ग्रहण' है, जबकि भ्रान्तिमान में 'कल्पना' । भ्रान्तिमान और उल्लेख का दूरारूढ़ संबंध है इसलिए रुय्यक ने भ्रान्तिमान के ठीक बाद में उल्लेख अलङ्कार का निरूपण किया है - 'एकस्यापि निमित्तवशादनेकधा ग्रहणमुल्लेखः' । अर्थात् एक वस्तु का अनेकधा जो ग्रहण होता है उस रूप-बाहुल्य के उल्लेख को उल्लेख अलङ्कार कहा जाता है । वह बिना निमित्त के नहीं होना चाहिए । परवर्ती आचार्यों की परिभाषाएं अलङ्कार-सर्वस्व का अनुसरण करती हैं -

एकस्यानेकधाकल्पनमुल्लेखः ।

अ० र०, पृ० ५४

तत्तन्निमित्तभेदादेकमनेकैरनेकधा यत्तु ।
उल्लिख्यते स धीरैरुल्लेखः कथ्यतेऽन्वर्थः ।।

एका०, पृ० २२६

अर्थयोगतश्चित्रैर्येनोल्लेखनमनेकधा ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रहीतृभेदादेकस्य स उल्लेखः सतां मतः ।।

प्रतापरुद्र-यशो०, पृ० ३८२

क्वचिद् भेदाद्ग्रहीतृणां विषयाणां तथा क्वचित् ।
एकस्यानेकधोल्लेखो यः स उल्लेख उच्यते ।।

सा०द०, पृ० ५३३

बहुभिर्बहुधोल्लेखादेकस्योल्लेखिता मता ।

चन्द्रा०, पृ० ४५

निमित्तभेदादेकस्य वस्तुनो यदनेकधा ।
उल्लेखनमनेकेन तमुल्लेखं प्रचक्षते ।।

चित्र मी०, पृ० ७७

एकस्य वस्तुनो निमित्तवशादनेकैर्ग्रहीतृभिरनेकप्रकारकं ग्रहणं तदुल्लेखः । रसग०, पृ० २७०

उपर्युक्त सभी लक्षणों में रुय्यक के सूत्र[113] तथा उसकी वृत्ति[114] के शब्द किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । परवर्ती आलंकारिकों ने 'ग्रहण' के स्थान पर 'कल्पना' तथा उल्लेख (उल्लेखन) का प्रयोग किया है। आचार्यों ने अलङ्कार के नाम के आधार पर उल्लेख शब्द का समावेश अपने लक्षणों में किया है । वह रुय्यक के 'ग्रहण' का ही समानार्थक है । अलङ्कार-रत्नाकर में ग्रहण के स्थान पर कल्पन शब्द का समावेश उचित समझा है क्योंकि शोभकर ऐसा मानते हैं कि जहां प्रतीति स्वारसिक न होकर उत्पादित होगी वहां ग्रहण शब्द वाली परिभाषा घटित नहीं होगी - 'अतएव ग्रहणस्य स्वारसिकत्वादनेकधाग्रहणमिति न सूत्रितम्' । इस आधार पर उन्होंने रुय्यक के लक्षण को दोष युक्त बताना चाहा है ।[115] निष्पक्ष भाव से देखा जाय तो 'ग्रहण' शब्द का प्रयोग ही समीचीन है, शोभाकर द्वारा प्रयुक्त 'कल्पन' शब्द का प्रयोग दोषपूर्ण है । ग्रहण शब्द से स्वारसिक तथा उत्पादित उभय प्रकार की प्रतीतियों का बोध होता है, जबकि कल्पन शब्द से केवल आहार्य या उत्पाद्य प्रतीति का ही संकेत सम्भव है । इस अलङ्कार में कहीं पर तो प्रतीति स्वारसिक होती है क्योंकि

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वहां वस्तु में स्वभावतः विद्यमान अनेक धर्मों का अनेकधा ग्रहण होता है। किन्तु जहां कवि द्वारा अपनी कल्पना से वस्तु में अनेक धर्मों की सृष्टि (या कल्पना) की जाती है वहां प्रतीति आहार्य (या उत्पाद्य) होती है। दूसरे प्रकार की प्रतीति के लिए कल्पन शब्द से युक्त परिभाषा में अव्याप्ति दोष आ जाता है, इसीलिए परवर्ती आचार्यों ने 'ग्रहण' और 'कल्पन' के इस विवाद से बचने के लिए 'उल्लेख' या 'उल्लेखन' शब्द का ही प्रयोग अपने लक्षणों में किया।

उल्लेख का स्वतंत्र अस्तित्व

काव्यप्रकाश की टीका उद्योत में टीकाकार ने उल्लेख अलङ्कार का विभिन्न अलङ्कारों में अन्तर्भाव दर्शाया है, ऐसा लगता है कि सर्वस्वकार के पूर्ववर्ती आलंकारिक इसे स्वतंत्र अलङ्कार मानने के पक्ष में नहीं थे। वे उल्लेख में रूपक, भ्रान्तिमान, अतिशयोक्ति तथा श्लेष के ही विभिन्न तत्व देखते थे। रूपक अलङ्कार में वास्तव में मुख में चन्द्रत्व नहीं रहता, अपितु उसका आरोप होता है, किन्तु श्रीकंठजनपद के अधोलिखित वर्णन में जनपद में तपोवन, कामायतन तथा संगीतशाला का आरोप नहीं है, क्योंकि विभिन्न प्रमाताओं की भावना के भेद से श्री कंठ में निसर्गतः तपोवनादि के धर्म उपस्थित हैं, उनका मुख में चन्द्रत्व की तरह आरोप नहीं किया गया"[96]-**"यस्तपोवनमिति मुनिभिः कामायतनमिति वेश्याभिः संगीतशालेति लासकैः"**। यदि यह कहा जाय कि श्रीकंठजनपद अवयवी है और तपोवनत्व आदि धर्म अवयव हैं, और अवयवावयविभाव-संबंध लक्षणामूलक है तथा लक्षणा पर ही रूपक सदा आधारित होता है "लक्षणापरमार्थं यावता रूपकस्वरूपम्' इसलिए उपर्युक्त उदाहरण में रूपक अलङ्कार है तो यह (कहना) अनुचित है। सर्वप्रथम तो जनपद तथा तपोवन आदि में अवयवावयविभाव-संबंध ही नहीं माना जा सकता क्योंकि जनपद में तपोवन आदि के गुण होना निःसर्गतः सम्भव है और थोड़ा देर के लिए यदि यह संबंध मान भी लिया जाय तो भी ऐसा कदापि नहीं मान सकते कि अवयवावयविभाव संबंध पर आधारित हर एक प्रयोग में रूपक अलङ्कार हो जाता है, वहां लक्षणा स्वीकार की जा सकती है रूपक नहीं। रूपक

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तो केवल वहीं हो सकता है जहाँ विषयी द्वारा विषय का रूपण हो और उनमें अभेद की प्रतीति हो उपर्युक्त (श्रीकण्ठ जनपद वाले) उदाहरण में ऐसा नहीं है इसलिए यह उल्लेख का उदाहरण है, रूपक का नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि उल्लेख अलङ्कार रूपक से भिन्न है।"[7]

यह भ्रान्तिमान से भी भिन्न है। भ्रान्तिमान में वस्त्वन्तर की प्रतीति होती है अर्थात् जो अतद्रूप होता है वह तद्रूप प्रतीत होता है - मुख कमल नहीं है पर भ्रमर उसे कमल समझकर प्रवृत्त होता है। यद्यपि श्रीकण्ठ जनपद तपोवन नहीं (अतद्रूप) है, किन्तु उसमें तपोवन (तद्रूप) की प्रतीति होती है। मात्र इतने से भ्रान्तिमान में उल्लेख का अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इसमें (भ्रान्तिमान में) विभिन्न प्रमाता अपनी रूचि के विभेद के कारण एक वस्तु को अनेकधा नहीं देखते। भ्रान्तिमान में एक ही प्रमाता को विपर्यय बुद्धि (विपर्ययो मिथ्याज्ञानं अतद्रूपप्रतिष्ठम्) होती है। उल्लेख में अनेकधा ग्रहण एक नवीन तत्व है जो भ्रान्तिमान में नहीं होता है, अतः उल्लेख को भ्रान्तिमान से भिन्न स्वीकार ही करना होगा। रुय्यक ने कहा है -

"अनेकधाग्रहणाख्यस्यापूर्वस्याभावात्। तद्धेतुकत्त्वाच्चास्यालङ्कारस्य"

अ०स०, पृ० १५८

तथा -

"न ह्यनेकधाग्रहणरूपं वैचित्र्यं भ्रान्तिमति लक्षणम्, इह तु लक्षणमेव।"

संजी०, पृ० ६१

इसी प्रकार इसका यह अतिशयोक्ति के द्वितीय भेद (अभेद होने पर भी भेद के वर्णन) में भी अन्तर्भाव नहीं हो सकता। अतिशयोक्ति के द्वितीय भेद में एक ही प्रियाधर के प्रयासचुम्बन, बलात्कार चुम्बन तथा आत्मसमर्पित चुम्बन"[8] को भिन्न बताया गया है; किन्तु प्रमाता भिन्न नहीं है। जबकि उल्लेख में ग्रहीतृ की भिन्नता एक विशेष तत्व है एक ही विष्णु को प्रौढाएं, युवतियाँ तथा किशोरियाँ भिन्न-भिन्न रूप में देखती हैं "[9]। इसमें एक ही विष्णु को विभिन्न रूपों में अवश्य बताया गया है, किन्तु प्रमाता भी भिन्न-भिन्न हैं। इसलिए अतिशयोक्ति अलङ्कार के द्वितीय भेद

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से उल्लेखालङ्कार पृथक् सिद्ध होता है । श्री विद्या चक्रवर्ती के शब्दों में-

"न ह्यतिशयोक्तौ ग्रहीतृभेदोपयोगः, अत्र पुनरुपयोग इति नातिशयोक्तिमात्रमेतत्[120] **।"**

उल्लेख तथा अतिशयोक्ति के उदाहरणों के संबंध में अन्य दो मतों की चर्चा करते हुए समुद्रबन्ध[121] ने कहा है कि अतिशयोक्ति के उदाहरण (मार्गितलब्धे, बलात्कार चुम्बिते ....) में अधर-रस के भेद का निर्देश 'तत्तद्रूपोपादान' द्वारा नहीं हुआ है जबकि उल्लेख के उदाहरण (यस्तपोवनमिति मुनिभिः ...... लासकैः) में श्रीकण्ठ जनपद की प्रतीति तपोवन, कामायतन आदि के रूपों में होती है इसलिए उल्लेख में 'तत्तद्रूपोपादान' होता है ।

अन्य व्याख्याकारों की राय है कि अतिशयोक्ति के (मार्गितलब्धे ....) उदाहरण में विभिन्न रस वाले चुम्बन प्रिया के अधर-रस के विशेषण हैं इसलिए उनसे भेद नहीं माना जा सकता है, जबकि उल्लेख अलङ्कार में सदैव विषय भेद रहता है । इस प्रकार उपर्युक्त दो व्याख्याओं के आधार पर उल्लेख में ग्रहीतृ भेद तो रहता ही है उनमें विषय भेद भी स्पष्ट रहता है, जबकि अतिशयोक्ति अलङ्कार में न तो गृहीतृ भेद का आकर्षण होता है और न ही विषय-भेद स्पष्ट हो पाता है ।

जब उल्लेख में अन्य अलङ्कारों की छाया मिलती है तो उसे संकीर्ण कहते हैं, अन्यथा शुद्ध कहते हैं । शुद्ध तथा संकीर्ण इन दोनों भेदों के अतिरिक्त जयरथ ने प्रमाता के भेद से सन्देह तथा अतिशयोक्तिपर आधारित विषय भेद से सन्देह अतिशयोक्ति पर आधारित विषय भेद का उल्लेख का एवं रूपक पर आधारित उल्लेख का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है ।[122] स्वरूप, हेतु तथा फल के उल्लेख के आधार पर भी प्रस्तुत अलङ्कार के तीन भेद हो सकते ह[123]। रसगंगाधर में पण्डितराज ने इस संबंध में जयरथ[124] का अनुसरण किया है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपह्नुति

पूर्व-इतिहास

भामह

यह बहुत प्राचीन अलङ्कार है। भामह के काव्यालङ्कार में इसका सर्वप्रथम विवेचन हुआ है। इनके अनुसार अपह्नुति में भूतार्थ [१२५] (उपमेय) का निषेध किया जाता है। इसमें कुछ उपमा तत्व अन्तर्निहित रहता है। इन्होंने अपह्नुति के लिए उपमा तत्व का किञ्चित अन्तर्गत होना आवश्यक माना है। इसमें निषेध अभिहित नहीं होता अर्थ को छिपाने के कारण ही इसे अपह्नुति कहा है।

दण्डी

दण्डी के अनुसार अपह्नुति अलङ्कार वहां होता है जहां प्रकृत के गुण क्रियादि रूप धर्म का अपह्नव[१२६] करके धर्मान्तररूपारोप्यमाण अन्य अर्थ का कथन किया जाता है। इसका उदाहरण है -

न पञ्चेषुः स्मरस्तस्य सहस्रं पत्रिणामिति।

काव्या०, २/३०४

इन्होंने अपह्नुति के दो प्रमुख भेद किए हैं - विषयापह्नुति तथा स्वरूपापह्नुति। विषयापह्नुति में प्रकृत के दोनों धर्मों (निषेध्य तथा आरोप्य) का वर्णन होता है जैसे - विरहिणी के लिए चन्दन, चन्द्रिका आदि अग्निमय हैं किन्तु अन्य जनों के लिए शीतल भी हैं -

चन्दनं चन्द्रिका मन्दो गन्धवाहश्च दक्षिणः।
सेयमग्निमयी सृष्टिर्मयि शीता परान् प्रति ।। २/३०५ ।।

स्वरूपापह्नुति में धर्म का निषेध करके धर्मान्तर[१२७] का आरोप होता है।

इन्होंने उपमापह्नुति की भी चर्चा की है तथा यह कहा है कि इसको उपमा के प्रसंग में दिखाया जा चुका है। उपमा के अनेक भेदों में से बीसवां भेद प्रतिषेधोपमा है जिसका उदाहरण है -

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"न जातु शक्तिरिन्दोस्ते मुखेन प्रतिगर्जितुम् ।
कलंकिनो जडस्येति प्रतिषेधोपमैव सा ।।२/३४।।

उपर्युक्त उदाहरण में औपम्य का सौन्दर्य ही प्रमुख है[१२८], इसलिए मुख्य अलङ्कार उपमा माना जायगा ।

उद्भट

उद्भट ने भामह के लक्षण को ही कुछ पदों के परिवर्तन के साथ अपना लिया है, अर्थ या भाव में अन्तर नहीं आया है । इनके अनुसार "अपह्नुति में उपमा अथवा सादृश्य अन्तर्निहित रहता है, कविगण भूतार्थ (उपमेय) के निषेध द्वारा[१२९] इस अलङ्कार की योजना करते हैं ।" अपह्नुति का आधार उपमानोपमेय भाव है । भामह तथा उद्भट दोनों ने इस पर बल दिया है, किन्तु दण्डी ने इस विशेषता की उपेक्षा कर दी है । परवर्ती आचार्यों ने भामह का ही अनुसरण किया है और अपह्नुति के दो अंग माने हैं -

(1) उपमानोपमेय भाव तथा
(2) उपमेय का अपह्नव ।

वामन

वामन ने अपह्नुति का स्वरूप लक्षण करते हुए सादृश्य तत्व को आवश्यक माना है । उनके अनुसार[१३०] समान वस्तु के द्वारा अन्य वस्तु के अपलाप[१३१] (निषेध) में अपह्नुति में वाक्यार्थं होती है । रूपक में पदार्थों का शाब्द तांद्रूप्य होता है जबकि अपह्नुति में वाक्यार्थ के तात्पर्य से[१३२]। वामन के अपह्नुति का निम्नलिखित उदाहरण दिया है-

"न केतकीनां विलसन्ति सूचयः प्रवासिनो हन्त हसत्ययं विधिः ।
तडिल्लतेयं न चकास्ति चञ्चला पुरः स्मरज्योतिरिदंविवर्तते ।।

रुद्रट

रुद्रट भी अपह्नुति की सादृश्यमूलकता स्वीकार करते हैं । इनके

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

अनुसार[१३३] अतिसाम्य के कारण विद्यमान उपमेय का अविद्यमान रूप में और उपमान का विद्यमान रूप में वर्णन अपह्नुति का सौन्दर्य है। यह लक्षण भामह उद्भट की परम्परा में है तथापि दोषपूर्ण है।

नव-बिस-किसलय-कोमल-सकलावयवा विलासिनी सैषा।
आनन्दयति जनानां नयनानि सितांशुलेखेव ।। ८/५८ ।।

उपर्युक्त उदाहरण की जो व्याख्या नमिसाधु ने की है, वह भ्रामक है। **"अत्रातिसादृश्याद् विलासिनीमुपमेयमपह्नुत्य शशिकलाया उपमानस्यैव सद्भावः कथितः। वास्तव में उपरोक्त उदाहरण में अपह्नव तत्व** -दृष्टिगोचर न होने से यह उपमा अलङ्कार का उदाहरण बन गया है। रुद्रट तथा नमिसाधु ने उत्प्रेक्षा के साथ अपह्नुति का पार्थक्य[१३५] दिखाते हुए उसके उदाहरण को उपमा के समीप पहुँचा दिया है।

मम्मट

मम्मट का अपह्नुति लक्षण रुद्रट से प्रभावित है। इनके अनुसार उपमेय को असत्य बतला कर उपमान की सत्य रूप से जो स्थापना की जाती है उसी का नाम है अपह्नुति अलङ्कार।[१३६] काव्यप्रकाश में इसके भेदों का वर्णन नहीं है, परन्तु तीन पद्यों द्वारा क्रमशः शब्द अपह्नव, आर्थ अपह्नव ('छलेन' के प्रयोग से) तथा तीसरे में आर्थ अपह्नव का परिणमिति क्रिया के प्रयोग द्वारा उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

रुय्यकादि

रुय्यक के सूत्र - 'विषयस्यापह्नवेऽपह्नुतिः' के अनुसार इस अलङ्कार का चारुत्व मुख्य रूप से विषय के अपह्नव में है। प्रकृत सूत्र की वृत्ति में वे कहते हैं कि भिन्न वस्तु की प्रतीति' इतना अंश भ्रान्तिमान के लक्षण से ही मण्डूकप्लुति न्याय से चला आता है - **'वस्त्वन्तर प्रतीतिरित्येव"**। रुय्यक के टीकाकार जयरथ एवं समुद्रबन्ध[१३७] ने कहा है कि वृत्ति में प्रयुक्त **प्रतीतिर्भ्रान्तिमान'** से आ जाते हैं इस संदर्भ में जयरथ ने स्पष्ट लिखा है -

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भ्रान्तिमतोऽनुवर्तत इतिशेषः। अतएव केचन मण्डूकप्लुतिन्यायेनानुवर्तनस्यानुचितत्वाद् भ्रान्तिमदनन्तरमपह्नुतिर्ग्रन्थकृता लक्षिता। उल्लेखश्चातिशयोक्त्यनन्तरमिति ग्रन्थं विपर्यासितवन्तः । न चैतत् । यत उल्लेखस्तावदतिशयोक्त्यनन्तरं ग्रंथकृता न लक्षितः। यद्वक्ष्यति- "एवमध्यवसायाश्रयेणालङ्कारद्वयमुक्त्वा . ...क्रमेणोच्यते'इति । तस्माद्वस्त्वन्तरप्रतीतेर्भावाद् भ्रान्तिमदनन्तरमेवास्य ग्रन्थकृता लक्षणं कृतम् । अतएव योल्लेखेऽपि तत्संभवाद्वस्त्वन्तरप्रतीतेर्निरन्तरमेवानुवर्तनादिहैवास्या लक्षणमुचितमिति यथास्थित एव ग्रन्थः साधुः ।

वि, पृ० ६३

अर्थात् वस्त्वन्तर इस शब्द की अनुवृत्ति भ्रान्तिमान अलङ्कार से होती है । यह अनुवृत्ति बीच के 'उल्लेख' को छोड़कर मण्डूकप्लुति न्याय से हुई है । कुछ टीकाकार ऐसी अनुवृत्ति को अनुचित मान कर टीका करते हैं कि अपह्नुति को ग्रन्थकार ने भ्रान्तिमान के बाद और उल्लेख को अतिशयोक्ति के बाद लक्षित किया है और ऐसा मान कर उन्होंने ग्रंथ में उलट-फेर कर दिया है। किन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि ग्रन्थकार ने उल्लेख को अतिशयोक्ति के बाद नहीं बतलाया है । यह तथ्य उनकी अतिशयोक्ति के इस उपसंहार वाक्य से स्पष्ट है -"एवमध्यवसायाश्रयेणालङ्कारद्वयमुक्त्वा ... क्रमेणोच्यते ।" इसलिए (उल्लेख में भी) वस्त्वन्तर प्रतीति के रहने से यही मानना तर्कसंगत है कि ग्रंथकार ने इसका (यानी उल्लेख का) लक्षण भ्रान्तिमान के ही पश्चात् किया है । इस प्रकार उल्लेख में वस्त्वन्तर प्रतीति का सद्भाव सिद्ध हो जाने पर अनुवर्तन में कोई व्यवधान नहीं आता, इसलिए इसका लक्षण यहीं उचित है एवम् ग्रंथ जिस स्थिति में वहां है उसी स्थिति में उसका रहना ठीक है ।

संजीवनी टीका में श्री विद्या चक्रवर्ती ने, सर्वस्व की वृत्ति में आये हुए पूर्वोक्त वस्त्वन्तर आदि को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि अपह्नुति में मात्र एक वस्तु मे दूसरी वस्तु की प्रतीति ही नहीं होती बल्कि प्रकृत

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का निषेध करके (एक नयी वस्तु) अप्रकृत का स्थापन होता है। इन्होंने मम्मट की परिभाषा को भी उद्धृत किया है -

"अतः प्रकृतनिषेधपुरस्कारेणाप्रकृतसमर्थनमपह्नुतिरित्यर्थः तथा च काव्यप्रकाशकृत्-

"प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत् साध्यते सा त्वपह्नुतिः" । इति

संजी०, पृ० ६२

श्री विद्या चक्रवर्ती ने काव्यप्रकाश की टीका सम्प्रदायप्रकाशिनी में प्रकृतनिषेध और अप्रकृतस्थापन्न पर और विस्तार से विचार किया है।[१३८] एवं इस बात को पूर्णतया स्पष्ट न करने के लिए सान्धिविग्रहिक नामक टीकाकार की तीखी आलोचना की है, जिसकी चर्चा प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में की जा चुकी है। जहां विषयी द्वारा विषय निगरण होता है वहाँ अध्यवसाय होता है जबकि आरोप में विषयी विषय को अपने रूप से रंजित कर देता है इसका निगरण नहीं करता। अपह्नुति में अध्यवसाय और आरोप के अतिरिक्त वस्त्वन्तरप्रतीति होना एक आवश्यक तत्व है। इसमें न केवल प्रकृत का उपादान होता है बल्कि अप्रकृत का आरोप करने केलिए उसका (प्रकृत का) निषेध भी होता है, इसलिए अपह्नुति में आरोप को अध्यवसाय के समान मानना आवश्यक है विमर्शिनीकार ने इसी आधार पर अपह्नुति को आरोपगर्भा तथा अध्यवसायगर्भा इन दो रूपों में माना है।

निम्नलिखित उदाहरण में अपह्नुति आरोपमूलक न होकर अध्यवसायमूलक ही है -

कलाभिस्तृप्त्यर्थं सुरपितृनृणां पञ्चदशभिः,
सुधासूतिर्देवः प्रतिदिनमुदेतीत्यसदिदम् ।
परिभ्रामत्येष प्रतिफलनमासाद्य भवती-
कपोलान्तर्युक्त्या त्वदधरसुधासंग्रहपरः ।।

वि०, पृ० ६७-६८

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुय्यक के अनुसार अपह्नुति की अभिव्यक्ति प्रणाली तीन प्रकार

की होती है -१३९

(1) अपह्नव करके आरोप ।

(2) आरोप करके अपह्नव और

(3) प्रतिषेध (असत्यत्व) का भाव सूचित करने वाले छल आदि शब्दों से प्रथम दो भेदों में अपह्नव का विधान ।

इनमें से प्रथम दो भेदों में वाक्य भिन्न होते हैं किन्तु तीसरे में एक वाक्य का स्वरूप मिलता है, जिसका उदाहरण यह पद्य है -

"उद्भ्रान्तोज्झितगेहगूर्जरवधूकम्पाकुलोच्चैः कुच-
प्रेङ्खोलामलहारवल्लिविगलन्मुक्ताफलच्छद्मना ।
सार्धं त्वद्रिपुभिस्त्वदीययशसां शून्ये मरौ धावतां-
भ्रष्टं राजमृगाङ्ककुन्दमुकुलस्थूलैःश्रमाम्भः कणैः ।।

हे नृपचन्द्र ! भयभीत होकर घर से पलायन करने वाली गूर्जर वधुओं के कांपते उन्नत पयोधरों पर हिलने वाले धवल हारों से भ्रष्ट होने वाले मोतियों के बहाने, शून्य मरूस्थल में तुम्हारे रिपुओं के साथ दौड़ने वाली तुम्हारी कीर्ति के, कुन्द कली के समान मोटे-मोटे श्रम जल चू रहे थे ।

शोभाकर मित्र ने छल-छद्म, मिष-कपट, व्याज आदि की भांति वपु शब्द के प्रयोग से अपह्नुति अलङ्कार नहीं माना है । इनका कहना है कि 'वपु' शब्द का प्रयोग होता है मयट् प्रत्यय के अर्थ में **'तस्मै सौमित्र मैत्रीयमुपहृतवानातरं नाविकाय"** आदि उदाहरण में रुय्यक ने परिणाम अलङ्कार माना है और इसमें मयट् और वपु समानार्थक हैं, शोभाकर का कहना है कि यदि वपु शब्द के प्रयोग में अपह्नुति अलङ्कार स्वीकार कर लें तो उपर्युक्त उदाहरण में परिणाम न मान कर अपह्नुति मानना पड़ेगा, अतः वपु शब्द का प्रयोग जहां हुआ हो वहां रूपक अथवा निदर्शना में से कोई अलङ्कार हो सकता है किन्तु अपह्नुति अलङ्कार नहीं । जयरथ ने शोभाकर मित्र के मत को दोषपूर्ण ठहराते हुए इसका खण्डन किया है । इनका कहना है कि रूपक में आरोप विषय का अपह्नव नहीं

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होता, जबकि अपह्नुति में होता है। शोभाकर ने जिस उदाहरण में अपह्नुति का खण्डन करके परिणाम अलङ्कार माना है वह निम्नलिखित है -

अमुष्मिँल्लावण्यामृतसरसि नूनं मृगदृशः
स्मरः शर्वप्लुष्टः पृथुजघनभागे निपतितः ।
यदङ्गाङ्गाराणां प्रशमपिशुना नाभिकुहरे
शिखा धूमस्येयं परिणमति रोमावलिवपुः ।।

शिवजी ने कामदेव के शरीर में आग लगाई तो वह निश्चित हो मृगाक्षी के इस विशाल जघन भाग रूपी लावण्यामृत सरोवर में आ कूदा है। नाभिकुहर में उसी के अंग रूपी अंगारों के बुझाने की सूचना देने वाली यह धूम शिखा है जो रोमावली के आकार में परिणत होती जा रही है।

शोभाकर की उपर्युक्त आपत्ति का उत्तर देते हुए जयरथ लिखते हैं कि इस पद्य में उपमान के उपमेय रूप से परिणत होने के कारण अन्य कुछ सज्जनों ने जो परिणाम अलङ्कार माना है वह युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि यदि वैसा होता (परिणाम होता) तो धूम शिखा अप्रधान हो जाती और उसकी परिणति रूप रोमावली की ही प्रधानता रहती। किन्तु यहां रोमावली शिव-दग्ध कामदेव के डूबने का अनुमापक बताई गई है, जो तभी संभव है जब रोमावली रूप से उसका अपह्नव हो और धूमशिखात्व स्वीकारा जाय। चूंकि यहां धूम शिखा ही प्रधान है अतः यहां परिणाम नहीं अपितु अपह्नुति है -

अत्र पुनरुपमानस्योपमेयरूपतापरिणतौ परिणाम इति परिणामालङ्कारत्वं यदन्यैरुक्तं तदयुक्तम्। तत्वे हि धूमशिखान्यभावे तत्परिणतिरूपरोमावली-प्राधान्यं स्यात्। इह पुनः शर्वप्लुष्टमदननिपतनानुमापकत्वेन रोमावल्यपह्नवे धूमशिखाया एव प्राधान्यं विवक्षितमिति न परिणामः नापि रूपकम् ।

अ०स० वि०, पृ० ७१

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्प्रेक्षा

भामह

उत्प्रेक्षा बहुत प्राचीन अलङ्कार है। इसका सबसे पहले विवेचन भामह ने किया। तत्पश्चात् परवर्ती सभी आलङ्कारिकों ने इसका निरूपण किया है। इनके अनुसार उत्प्रेक्षा अलङ्कार में उपमानोपमेय के सामान्य गुणों के कथन के बिना ही किञ्चित् रुप रहता है[१४०] और उपमेय में जो गुण–क्रिया आदि नहीं हैं, उनको (अतिशय के निमित्त) कल्पित किया जाता है। उत्प्रेक्षा के गर्भ में अतिशय तत्व रहता है और यह उपमा के स्पर्श से युक्त होती है। इसमें उपमा भाव तो है, परन्तु उपमान और उपमेय के सामान्य गुणों का कथन अतिशय का आधार नहीं है अपितु उपमेय में उस गुण क्रिया की कल्पना ही अतिशय का आधार है, जो वस्तुतः उसमें (उपमेय में) नहीं है। जैसे "किंशुक पुष्पों के व्याज से विभावसु, तरु पर आरूढ़ होकर यह देख रही है कि वन का कितना भाग जल चुका है और कितना अन–जला है।"[१४१] यह उत्प्रेक्षा का बड़ा स्पष्ट उदाहरण है।

दण्डी

दण्डी ने काव्यादर्श के दूसरे परिच्छेद में अतिशयोक्ति के पश्चात् उत्प्रेक्षा का विस्तृत विवेचन किया है। उनके अनुसार जहां चेतन अथवा अचेतन प्रस्तुत की अन्यथा स्थित वृत्ति की, अन्यथा सम्भावना की जाय वहां उत्प्रेक्षा अलङ्कार होता है।[१४२] इन्होंने एक उदाहरण चेतनगत उत्प्रेक्षा का और दूसरा अचेतनगत उत्प्रेक्षा का दिया है[१४३]। चेतन और अचेतन वस्तुओं की सम्भावंना की परिधि में उत्प्रेक्षा को रखने के इनके लक्षण में नवीनता आ गयी है।

उद्भट

इनका उत्प्रेक्षा लक्षण भामह के आधार पर ही है। कारिका के पूर्वार्ध में कुछ शब्दों का अन्तर है तथा उत्तरार्द्ध ज्यों का त्यों भामह का अपना लिया है। इनका कथन है कि इव आदि वाच्य पदों के द्वारा,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साम्य के रूप की विवक्षा के अभाव में जो अतिशययुक्त चारुत्व होता है उसे उत्प्रेक्षा कहते हैं ।[१४४] उपमेय में जो गुण–क्रिया नहीं है, अतिशय के निमित्त उनकी कल्पना की जाती है । भामह के उत्प्रेक्षा–लक्षण के समान ही इसके भी दो अंग हैं –

(क) साम्य रूप की अविवक्षा

(ख) उपमेय में अतिशय के निमित्त गुण–क्रिया का जहां प्रस्तुत में अभ्यास हो जाता है वहाँ 'इव' आदि शब्दों द्वारा उत्प्रेक्षा का चारुत्व सम्पन्न होता है ।

वामन

वामन के अनुसार जो वस्तु जैसी नहीं है (अतद्रूप) उसकी (अतिशय के लिए) अपने स्वरूप से भिन्न सम्भावना की जाय तो उत्प्रेक्षा होती है।[१४५] इसमें न तो रूपक के समान अध्यारोप होता है और न ही वक्रोक्ति की भांति लक्षणा होती है । उत्प्रेक्षा में जो अन्यथा अध्यवसान होता है उसे भ्रम भी नहीं कह सकते, क्योंकि वह वास्तविक अध्यवसान न होकर मात्र अतिशयार्थ के निमित्त होता है । उत्प्रेक्षा का हेतु है सादृश्य और इव यथा आदि शब्द उत्प्रेक्षा के वाचक हैं ।

रुद्रट

काव्यालङ्कार में दो स्थलों पर उत्प्रेक्षा का विवेचन किया गया है– आठवें अध्याय में औपम्यमूलक अलङ्कारों के अन्तर्गत तथा नवम् अध्याय में अतिशय मूलक अलङ्कारों के अन्तर्गत उत्प्रेक्षा के तीन रूप हैं और रुद्रट ने तीनों का सोदाहरण विवेचन किया है ।

प्रथम – जहाँ अतिसारूप्य के आधार पर ऐक्य स्थापित करके सिद्ध उपमान को गुण–क्रिया का आरोप, उपमेय (सम्भव होने पर) में किया जाता है,[१४६] जैसे –

चम्पकतरुशिखरमिदं कुसुमसमूहच्छलेन मदन शिखी ।
अयमुच्चैरारूढः पश्यति पथिकान् दिधक्षुरिव ।। ८/३३ ।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वितीय – जहां प्रसिद्ध उपमेय में एक अन्य उपमेय की कल्पना की जाय और इस कल्पित उपमेय्य में प्रसिद्ध उपमान पर आरोपित एक अन्य उपमान के अभेद की संभावना की जाये ।[१४७]

तृतीय – वहां होती है ज़हां शोभनत्व अशोभनत्व आदि गुणों से युक्त वास्तविक पदार्थ में उसी जैसे किसी अवास्तविक पदार्थ की (युक्त के आधार पर) सम्भावना की जाती है ।[१४८]

रुद्रट ने अतिशय वर्ग में भी उत्प्रेक्षा का वर्णन किया है । उसका लक्षण उनके अनुसार इस प्रकार है –"जहां किसी पदार्थ में असम्भाव्य क्रिया आदि की संभावना की जाय अथवा किसी पदार्थ में असम्भूत क्रियादि को सम्भूत बतलाया जाय वहां उत्प्रेक्षा होती है ।[१४९] जैसे – "चांदनी अंग अंग को मानों लीप रही है और राजप्रासाद नीलमणि के फर्श पर पड़ती चांदनी से पल्लवित और प्रतिबिम्बित तारों से पुष्पित है ।

मम्मट

मम्मट उत्प्रेक्षा का वर्णन बहुत संक्षेप में करते हैं । इन्होंने उत्प्रेक्षा के स्वरूप निरूपण में कोई नवीनता प्रदर्शित किए बिना ही अपने लक्षण के द्वारा इसके स्वरूप को व्यवस्थित कर दिया है । इनके अनुसार जहां प्रकृत की अप्रकृत के रूप में संभावना की जाती है वहां उत्प्रेक्षा होती है ।[१५०] काव्य प्रकाश में उत्प्रेक्षा के भेदोपभेद का वर्णन नहीं है । ये दण्डी से भी सहमत है क्योंकि **'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि'** को भी उत्प्रेक्षा का उदाहरण मानते हैं ।

रुय्यक

उत्प्रेक्षा अलङ्कार के निरूपण में रुय्यक ने सर्वथा नवीन विचार व्यक्त किया है । इन्होंने सम्भावना एवं अध्यवासाय के स्थान पर 'साध्य अध्यवसाय' पद का प्रयोग किया है । इनका सूत्र है –

"अध्यवसाये व्यापारप्राधान्ये उत्प्रेक्षा ।" अ०स० सूत्र २२

अर्थात् अध्यवसाय में व्यापार की प्रधानता होने पर उत्प्रेक्षा होती

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है आगे सूत्र की वृत्ति में वे लिखते हैं – "विषयनिगरणेन अभेद प्रतिपत्तिः विषयिणोऽध्यवसायः । स च द्विविधः साध्यः सिद्धश्च । .....तत्र साध्यत्वप्रतीतौ व्यापारप्राधान्येऽध्यवसायः सम्भावनमभिमानस्तर्क ऊह उत्प्रेक्षेत्यादिशब्दैरुच्यते । तदेव अप्रकृतगुणक्रियाभिसम्बन्धाद् अप्रकृतत्वेन प्रकृतस्य संभावनमुत्प्रेक्षा ।"

अ०स० पृ० १८२, १६०

अर्थात् विषय के निगरण द्वारा विषयी का (विषय के साथ) अभेद बोध अध्यवसाय कहलाता है । वह दो प्रकार का होता है सिद्ध और साध्य । साध्य उसे कहते हैं जिसमें विषयी असत्य रूप से भाषित होता है असत्यता इसलिए कि विषय में अस्तित्व दिखलाने पंर विषयिगत धर्म की ऐसी प्रतीति होती है जिसमें वह विषयी में तो सम्भव प्रतीत होता है किन्तु विषय में असम्भव । धर्म होता है – गुण रूप और क्रिया रूप और इसकी प्रतीति होती है सम्भवात्मक और असम्भवात्मक उसमें असम्भवात्मक प्रतीति में धर्म काल्पनिक (अपारमार्थिक) होता है, अतएव असत्य प्रतीत होता है । इसी प्रकार दूसरे का धर्म पारमार्थिक (वास्तविक) होता है । जहां असत्व की सत्य रूप से प्रतीति होती है वहां अध्यवसाय साध्य होता है, इसीलिए उसमें व्यापार की प्रधानता मानी जाती हे । सिद्ध अध्यवसाय वहां होता है जिसमें विषयी, वस्तुतः तो असत्य होता है किन्तु उसमें सत्यता की प्रतीति होती है । यहां सत्यता का तात्पर्य है पूर्व प्रतीति असत्यत्व प्रतिपादक हेतु का अभाव इसीलिए इसमें अध्यवसित (विषयी) की प्रधानता रहती है इनमें जिस अध्यवसाय में साध्यता और व्यापार प्रधानता रहती है उसमें तर्क–ऊह, उत्प्रेक्षा आदि शब्दों से सम्भावना तत्व का कथन होता है । इस प्रकार अप्रकृतगत गुण और क्रिया के सम्बन्ध से, अप्रकृत रूप से प्रकृत की सम्भावना उत्प्रेक्षा कहलाती है । यह जब वाच्य रहती है तब इवादि शब्दों का प्रयोग रहता है तथा जब प्रतीयमान रहती है तब इवादि शब्दों का प्रयोग नहीं रहता है ।

रुय्यकादि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वस्वकार ने उत्प्रेक्षालङ्कार का सूक्ष्म एवं विशद विवेचन किया

है। प्रायः सभी उत्तरवर्ती आचार्यों ने उनके मन्तव्य को स्वीकार किया है। इनका सूत्र है –

"अध्यवसाये व्यापारप्राधान्ये उत्प्रेक्षा। – सूत्र २१

(अध्यवसाय में व्यापार की प्रधानता होने पर उत्प्रेक्षा होती है।)

इस सूत्र की वृत्ति रुय्यक ने विस्तार से लिखी है। उसका मुख्य अंश है –

"विषयनिगरणेन अभेदप्रतिपत्तिर्विषयिणोऽध्यवसायः।"

स च द्विविधः साध्यः सिद्धश्च। ..... तत्र साध्यत्वप्रतीतौ व्यापारप्राधान्येऽध्यवसायः संभावनमभिमानस्तर्क ऊह उत्प्रेक्षेत्यादिशब्दैरुच्यते। तदेवम् अप्रकृतगतगुणक्रियाभि-सम्बन्धात् अप्रकृतत्वेन प्रकृतस्य संभावनमुत्प्रेक्षा।"

अभिप्राय यह है कि विषय का निगरण कर अभेद का प्रत्यायन, विषयी का अध्यवसाय है। वह दो प्रकार का होता है – साध्य तथा सिद्ध। जहाँ विषयी की असत्यरूप में प्रतीति हो, वहां साध्य अध्यवसाय है। असत्यता, विषयी में रहने वाले धर्म का विषय में निबन्धन करने पर, विषयी में संभव रूप में प्रतीति से और विषय के असंभव रूप में प्रतीति से आती है। धर्म, गुण–रूप और क्रिया रूप होता है। उसकी संभव या असंभव प्रतीति में (धर्म के) संभव आश्रय (विषयी) के वस्तुतः वहां न होने के कारण असत्यता और दूसरे (विषयी) की वस्तुस्थिति होने के कारण सत्यता प्रतीत होती है।

जिसकी (वस्तु–दृष्टि से) असत्यता है, उसी की सत्यता का प्रत्यायन होने पर अध्यवसाय, साध्य होता है, इसीलिए इसमें व्यापार की प्रधानता होती है। जहां वस्तु–दृष्टि से असत्य विषयी का भी सत्य रूप में ज्ञान हो वह सिद्ध अध्यवसाय होता है। पहले को (साध्य अध्यवसाय को) उत्प्रेक्षा तथा दूसरे को अतिशयोक्ति कहते हैं।[९१]

सत्यता उपर्युक्त असत्यता के हेतु के अभाव से होती है। इसीलिए अध्यवसाय में व्यापार की प्रधानता होती है। ऐसे स्थलों में साध्यावस्था

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की प्रतीति में व्यापार की प्रधानता होने पर, अध्यवसाय को सम्भावन अभियान तर्क, ऊह उत्प्रेक्षा' आदि शब्दों से बताया जाता है। इस प्रकार विषयी में रहने वाले गुण और क्रिया के संबंध से प्रकृत (विषय) की अप्रकृत रूप में सम्भावना उत्प्रेक्षा है।

'इव' आदि के द्वारा उसे वाच्य के रूप में प्रदर्शित किया जाता है, किन्तु प्रतीयमाना में 'इव' आदि का प्रयोग नहीं होता है।

वाच्योत्प्रेक्षा, जाति, क्रिया, गुण तथा द्रव्य रूप प्रकृत का अध्यवसाय होने के कारण चार प्रकार की होती है। सर्वस्वकार कहते हैं कि यद्यपि प्रकृत के भी ये भेद हो सकते हैं किन्तु इसमें चारुता नहीं होती इसलिए उनकी गणना नहीं की गई है।[१५२]

सन्देह और निश्चय से भिन्न तत्व है सम्भावना। सम्भावना न तो निश्चय ज्ञान है और न अनिश्चय ज्ञान। बल्कि इन दोनों के बीच की स्थिति है। उत्प्रेक्षा में विषय का उपादान आवश्यक नहीं है। विषय की विषयी के रूप में प्रतीति आरोप में होती है जबकि अध्यवसाय में विषयी की ही प्रतीति होती है इसलिए रूपक को अध्यवसायगर्भ नहीं माना जा सकता। इसलिए शोभाकर तथा पण्डितराज का निम्नलिखित कथन तर्कसंगत नहीं है –

अतएव नाध्यवसायमूलत्वमस्याः। तस्य विषयनिगरणं विषयिनिश्चयश्च स्वरूपम्। न चात्रैकमपि संभवति विषयोपादानात् निश्चयाभावाच्च।

अ० र०, पृ० ४७

तथा –

किं च नूनं मुखं चन्द्र इत्यादौ कुत्राध्यवसायः विषयस्य जागरूकत्वात्। साध्याध्यवसाने मानाभावात्, अन्यथा रूपकादेरप्यध्यवसायगर्भत्वापत्तेः।

रसग०, पृ० ३०२

यदि कहीं विषय का निर्देश भी उत्प्रेक्षा में होता है, वहां भी अध्यवसाय की प्रक्रिया सम्भव है किन्तु इस प्रक्रिया में विषयी द्वारा विषय का अधःकरण आवश्यक है। साहित्य दर्पणकार ने यही मत व्यक्त किया

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है जो समीचीन भी है –

"विषयस्यानुपादनेऽप्युपादानेऽपि सूरयः ।
अधः करणऽमात्रेण निगीर्णत्वं प्रचक्षते ।।

सा०द०, पृ० ५४८

जिस प्रकार आरोप के गर्भ में लक्षणा होता है, उसी प्रकार अध्यवसाय भी लक्षणागर्भित है। लक्षणा के दो भेदों सारोपा तथा साध्यवसाना में से पहली में विषयी तथा विषय दोनों का उत्पादन होता है,[१५३] जबकि दूसरी में विषयी, विषय का अन्तःनिगरण करता है।[१५४] आरोपगर्भ तथा अध्यवासयगर्भ अलङ्कारों की मूल भित्तित लक्षणा के इन्हीं दो भेदों पर टिकी है। आरोप होने पर रूपक और अध्यवसाय होने पर उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति अलङ्कार होते हैं ।

उत्प्रेक्षा के भेद

अलङ्कार सर्वस्व में उत्प्रेक्षा के लक्षण सूत्र की वृत्ति अन्य अलङ्कारों की तुलना में बहुत विस्तृत है। इनमें उत्प्रेक्षा के भेदों का विशद विवेचन किया गया है। सर्वस्वकार ने निम्नलिखित आधारों पर उत्प्रेक्षा के भेदोपभेद किए हैं – उत्प्रेक्षा वाचक शब्द[१५५] का प्रयोग अथवा अप्रयोग, उत्प्रेक्ष्य वस्तु के जाति, क्रिया, गुण तथा द्रव्य रूप चार भेद, उसका भाव रूप तथा अभाव रूप होना, उत्प्रेक्षा निमित्त का गुण अथवा क्रिया रूप में होना, उसकी उक्ति तथा अनुक्ति, उत्प्रेक्ष्य वस्तु का स्वरूप, हेतु फल में से किसी एक रूप का होना तथा प्रस्तुत की उक्ति तथा अनुक्ति वाच्योत्प्रेक्षा तथा प्रतीयमानोत्प्रेक्षा में से प्रत्येक के इन आधारों पर 96 भेद होते हैं ।[१५६]

रुय्यक के अनुसार द्रव्य का स्वरूपोत्प्रेक्षण ही होता है, अतः वह वाच्योत्प्रेक्षा के हेतु तथा फल मूलक भेद स्वीकार नहीं करते। इस प्रकार रुय्यक को वाच्योत्प्रेक्षा के 80 भेद अभीष्ट हैं । प्रतीयमाना में उत्प्रेक्षानिमित्त के अनुपादानमूलक भेदों को नहीं माना जा सकता है, इसका कारण यह है कि यदि 'इव' आदि का उपादान भी न हो एवं निमित्त का कथन भी न हो तो उत्प्रेक्षा हो ही नहीं सकती। इसके अतिरिक्त स्वरूप का उत्प्रेक्षण

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा में नहीं हो सकता। इसलिए विमर्शिनीकार कहते हैं कि ग्रंथकार को प्रतीयमाना के केवल 48 भेद मानना अभीष्ट है। जयरथ के कथन से हमें ज्ञान होता है कि रुय्यक ने अलङ्कारानुसारिणी में ऐसा स्पष्ट रूप से कहा था।[१५७]

श्री विद्याचक्रवर्ती के अनुसार रुय्यक को वाच्योत्प्रेक्षा के 96 भेद अभिभूत हैं। यदि द्रव्योत्प्रेक्षा के (हेतु, फलमूलक) 16 भेदों को निकाल दें तो 80 भेद अभिमत हैं, तथा प्रतीयमाना के 32 भेद अभीष्ट हैं। इन्होंने संजीविनी में रुय्यक सम्मत उत्प्रेक्षा के भेदों की विस्तार से चर्चा की है।[१५८]

जयरथ ने, भामह तथा उद्भट के कथन – "उत्प्रेक्षातिशयान्विता' के आधार पर उत्प्रेक्षा के अतिशयोक्ति मूलक भेद गिनाकर इसके भेदों की संख्या में और भी वृद्धि की है।[१५६] अप्पय दीक्षित ने उत्प्रेक्षा के उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त साधारण धर्म के तीन प्रकार से निर्देश के आधार पर भी इसके भेद किये हैं[१६०]

विमर्शिनीकार ने अतिशयोक्तिगर्भित उत्प्रेक्षा का जो विभाजन किया है, वह भी उत्प्रेक्षा के अध्यवसाय–मूलक होने के कारण तर्कसंगत लगता है। यद्यपि उत्प्रेक्षा के विविध भेद–प्रभेदों का विवेचन भामह उद्भट आदि चिरन्तन आचार्यों ने किया था किन्तु मम्मट के समय तक इस वर्गीकरण का निश्चित आधार दृष्टिगोचर नहीं होता। रुय्यक ने सर्वप्रथम इसका भेद–निरूपण ऊपर वर्णित सिद्धान्तों के आधार पर किया है। बाद के आचार्यों में जयरथ, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित तथा जगन्नाथ ने इनकी विचार सरणि अपनाई है।

यहां पर उत्प्रेक्षा के कुछ उदाहरणों पर विचार करना समुचित होगा। काव्यादर्श के अधोलिखित श्लोक को रुय्यक ने उद्धृत किया है –

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवांजनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥

(अन्धकार अंगों को लीप–सा रहा है, आकाश काजल–सा बरस

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहा है। दुष्ट व्यक्ति की सेवा की भांति आंख निष्फल हो गयी है।)

सर्वस्वकार इस श्लोक के पूर्वार्ध में क्रिया को उत्प्रेक्षा मानते हैं, किन्तु उत्तरार्ध में उत्प्रेक्षा न मान कर उपमा मानते हैं।[१६१] अनेक परवर्ती आचार्यों ने रुय्यक के कथन का खण्डन करते हुए पूरे पद्य को उत्प्रेक्षा का ही उदाहरण माना है। सर्वस्वकार का मत इस संबंध में मम्मट आदि आचार्यों से नहीं मिलता। रुय्यक के तीनों टीकाकार भी इस श्लोक के उत्तरार्ध में उत्प्रेक्षा नहीं मानते। समुद्रबन्ध ने इस उदाहरण की व्याख्या में कहा है –

अत्र हि असत्पुरुषसेवादृष्ट्योः साधर्म्यमात्रं
प्रतीयते, न त्वभेदाध्यवसायः।

विवृत्ति०, पृ० ५६

रुय्यक ने गुणोत्प्रेक्षा के उदाहरण के रूप में रघुवंश का यह श्लोक उद्धृत किया है –

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम्।।
अदृश्य तत्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्ध मोनम्।

रघु०, १३/२३

हे वैदेहि! यह वह स्थल है जहां तुम्हें खोजते हुए मुझे भूमि पर पड़ा तुम्हारा एक नूपुर दिखा था जो मानों तुम्हारे चरणारविन्द के वियोग के दुखः से चुप्पी साधे था।

प्रकृत उदाहरण में सर्वस्वकार के अनुसार, चुप्पी साधे नूपुर में दुखः (गुण) की उत्प्रेक्षा (संभावना) की गई है। इसमें सम्भावना अभेद संसर्ग के द्वारा है अथवा किसी अन्य सम्बन्ध से – इस विषय में चिरन्तन तथा अर्वाचीन आलङ्कारिकों में प्रखर विचार–वैषम्य है।[१६२] प्राचीन आलङ्कारिकों का कहना है कि सम्भावना (विषय में विषयी की उत्प्रेक्षा) केवल अभेद संसर्ग द्वारा है जबकि परवर्ती आचार्यों के अनुसार धर्म और धर्मी में समवाय संबंध होता है इसलिए धर्म की धर्मी में संभावना अनुचित है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डितराज का मत है कि पूर्वोक्त उदाहरण में मौन की हेतुता

को लेकर नूपुर में विश्लेष दुःख की सम्भावना की गई है, जिसमें (इस दुःख की सम्भावना में) नूपुर की निश्चलता के कारण से निःशब्दता का मौन में अध्यवसाय है।[१६३] अप्पय दीक्षित भी इससे सहमत हैं।[१६४] सर्वस्वकार के अनुसार नूपुर के मौन होने का हेतु है – विश्लेष–दुःख और उसकी (दुःख) उत्प्रेक्षा करने का निमित्त भी 'मौन होना' है। विमर्शिनीकार के कथनानुसार नूपुर की निश्चलता आदि से (जनित) तथा दुःख से जनित मौन में यहां अभेद संसर्ग है –

अतश्च निश्चलत्वादिजनितस्य दुःखजनितस्य च मौनित्वस्याभेदेनाश्रयणम्।

वि. पृ० ७६

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतिशयोक्ति

पूर्व इतिहास

भामह

अतिशयोक्ति अलङ्कार बहुत प्राचीन है। भामह ने काव्यालङ्कार में इसका सर्वप्रथम विवेचन किया है। उनके अनुसार जब निमित्त से लोक–सीमा का अतिक्रमण करने वाला वर्णन किया जाय तो अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है।[१६५] इस अलङ्कार का आधार 'गुणातिशययोग'[१६६] है। भामह का कथन है कि अतिशयोक्ति भी एक प्रकार से वक्रोक्ति[१६७] है, जिससे अर्थ में चारुत्व का समावेश होता है। कवि को इसके प्रति (वक्रोक्ति के प्रति) प्रयत्नशील होना चाहिए, क्योंकि इसके बिना कौन सा सौन्दर्य (अलङ्कार) सम्पादित हो सकता है ?

इन्होंने अतिशयोक्ति का क्षेत्र बड़ा व्यापक बना दिया है और इसे वक्रोक्ति का पर्याय सा माना है। आगे चल कर अतिशयोक्ति एवं वक्रोक्ति दोनों सीमित सौन्दर्य का पर्याय बन कर इन्हीं नामों से अलङ्कार विशेष ही रह गये।

भामह ने दो भिन्न प्रकार के उदाहरण दिए हैं जिनमें से पहला भेदकातिशयोक्ति का है एवं दूसरा संबंधातिशयोक्ति का[१६८]।

दण्डी

इनके अनुसार प्रस्तुत वस्तुगत विशेष की लोक सीमा का अतिक्रमण करने वाली विवक्षा अतिशयोक्ति कहलाती है, वह उत्तम[१६९] अलङ्कार है। इनका कहना है कि अतिशयोक्ति, विशेष[१७०] (धर्म विशेष) के आधिक्य का वर्णन करने में होती है, धर्मों के आधिक्य वर्णन में नहीं।

इन्होंने अतिशयोक्ति के चार उदाहरण दिए हैं। इनमें से पहला उदाहरण परवर्ती आलङ्कारिकों के दृष्टिकोण से मीलित अलङ्कार का है। जैसे 'मल्लिका–माला–धारण करने वाली, चन्दन से चर्चित शरीर वाली तथा श्वेत दुकूल धारण करने वाली अभिसारिकाएं ज्योत्सना में दिखायी नहीं पड़तीं।[१७१]'

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूसरा उदाहरण संशयातिशयोक्ति का है, जो संदेह अलङ्कार से पृथक है[१७२]।

तीसरा उदाहरण निर्णयातिशयोक्ति[१७३] का है और चतुर्थ आश्रयातिशयोक्ति का। दण्डी ने आश्रयातिशयोक्ति का जो उदाहरण दिया है उस पर परवर्ती आलङ्कारिकों के 'अधिक' अलङ्कार का लक्षण घटित होता है वह उदाहरण है–

अहो विशालं भूपाल ! भुवनत्रितयोदरम् ।
माति मातुमशक्योऽपि यशोराशिर्यदत्र ते ।।२/२४६ ।।

दण्डी ने भी भामह की भांति अतिशयोक्ति के महत्त्व का ख्यापन किया है।

"अलङ्कारान्तराणामप्येकमाहुः परायणम् ।
वागीशमहितामुक्तिमिमामतिशयाह्वयाम् ।। २/२२० ।।

उपरोक्त श्लोक में 'अपि' शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। इनके अनुसार अतिशयोक्ति उत्तम अलङ्कार होने के साथ–साथ अनेक अलङ्कारों का परमाश्रय (परायण) भी है।

उद्भट

उद्भट ने भामह के ही अतिशयोक्ति लक्षण को ले लिया[१७४] और 'लोकातिक्रान्तगोचरम्' उसका प्राण बताया है। उद्भट का विशेष योगदान है उनके द्वारा किया गया अत्यन्त वैज्ञानिक वर्गीकरण, जो परवर्ती आलङ्कारिकों के वर्गीकरण का आधार बना।

इन्होंने अतिशयोक्ति के चार भेद दिए हैं – भेदेऽनन्वयत्वम्[१७५], अन्यत्र नानात्वम्, सम्भाव्यमानार्थनिबन्धः कार्यकारणयोः, पौर्वापर्यविपर्ययः–आशुभावः[१७६] के आधार पर इनमें से प्रथम दो भेद काव्यप्रकाश में 'प्रस्तुतस्य यदन्यत्वम्' के अन्तर्गत आये हैं तथा तृतीय व चतुर्थ भेद सभी परवर्ती आलङ्कारिकों ने यथावत् अपना लिए हैं।

वामन

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इनके अनुसार सम्भाव्य धर्म की और उसके उत्कर्ष की कल्पना

को अतिशयोक्ति कहते हैं ।[१७७] इन्होंने लोकातिक्रान्तगोचरता को गौण स्थान दिया है एवं सम्भाव्य की कल्पना पर अधिक बल दिया । इस प्रकार इनका विवेचन कुछ नवीनता लिए हुए है, किन्तु इन्होंने उद्भट के वैज्ञानिक वर्गीकरण से कोई लाभ नहीं उठाया ।

मम्मट

मम्मट ने अतिशयोक्ति के स्वरूप विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने इसे सर्वातिशायीत्व एवं सर्वत्रव्यापकत्व से हटाकर निश्चित सीमा में निबद्ध किया [१७८]।

इन्होंने अतिशयोक्ति के चार भेद किए हैं जिन पर उद्भट का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है –

(क) उपमेय का उपमान द्वारा निगरण एवं अध्यवसान[१७९] ।

(ख) प्रस्तुत अर्थ का अन्य रूप से वर्णन[१८०] ।

(ग) 'यदि' – अर्थोक्ति द्वारा कल्पना[१८१] ।

(घ) कार्य–कारण का पौर्वापर्य–विपर्यय[१८२] ।

रुय्यकादि

सर्वस्वकार ने उत्प्रेक्षा के अनन्तर अतिशयोक्ति का विवेचन करने का औचित्य बताते हुए कहा है कि –"उपर्युक्त क्रम से अध्यवसाय के साध्य होने पर सम्भव उत्प्रेक्षा का निर्णय किया अब उसी के सिद्ध होने पर सम्भव अतिशयोक्ति का लक्षण करते हैं ।[१८३] अतिशयोक्ति का लक्षण सूत्र है –

अध्यवसितप्राधान्ये त्वतिशयोक्तिः ।।

अ० स० सूत्र २२

इनके अनुसार अध्यवासय में तीन तत्व हो सकते हैं – स्वरूप, विषय तथा विषयी । विषयी (उपमान) जब विषय (उपमेय) का निगरण कर लेता है तब स्वरूप का उत्थान होता है। इसकी साध्यावस्था में स्वरूप की प्रधानता रहती है तथा सिद्धावस्था में अध्यवसित (विषयी) की प्रधानता होती है । अध्यवसाय में विषय की प्रधानता सम्भव ही नहीं है ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्यवसित (विषयी) की जहां प्रधानता होती है वहां अतिशयोक्ति होती है[८४]।"

रुय्यक की उपर्युक्त परिभाषा का आचार्य विश्वनाथ ने शब्दशः अनुसरण किया है तथा विद्यानाथ विद्याधर पण्डितराज जगन्नाथ आदि ने इसका भाव अपनाया है। रसरंगाधर में अतिशय को अध्यवसाय का समानार्थक माना है।[८५] तथा पूर्ववर्ती आलङ्कारिकों के यौगिकार्थ पर आधारित लक्षण एवं रुय्यक आदि द्वारा अध्यवसाय के आधार पर लक्षित अतिशयोक्ति के लक्षणों में सामंजस्य स्थापित किया गया है।

आनन्दवर्धन का मन्तव्य है कि सभी अलङ्कारों में अतिशयोक्ति–गर्भता है। वे कहते हैं कि महाकवियों द्वारा अतिशयोक्ति का प्रयोग अपूर्व काव्य सौन्दर्य का पोषण करता है। कवि यदि औचित्य का ध्यान रखते हुए अतिशयतत्व का प्रयोग क़रता है तो उससे काव्य में उत्कर्ष का आधान होता है। ध्वनिकार ने भामह की उक्ति –"सैषा सर्वैव' को उद्धृत करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि जब अतिशय का योग किसी अलङ्कार में होता है तो कवि प्रतिभा से अनुप्राणित होकर काव्य–सौन्दर्य अतिशयित हो जाता है। इसके अभाव में अलङ्कार, मात्र अलङ्कार बन कर रह जाता है। उनका कहना है कि सभी अलङ्कारों के शरीर में समाविष्ट होने की योग्यता के कारण, अभेदोपचार से अतिशयोक्ति को सर्वालङ्कार रूप कहा जा सकता है।

> **प्रथमं तावदतिशयोक्तिगर्भता सर्वालङ्कारेषु शक्यक्रिया कृतैव च सा महाकविभिः कामपि काव्यच्छायां पुष्यतीति कथं ह्यतिशययोगिता स्वविषयौचित्येन क्रियमाणा सती काव्ये नोत्कर्षमावहेत् ? भामहेनाप्यतिशय लक्षणे यदुक्तं – "सैषा सर्वैव ...." तत्रातिशयोक्तिर्यमलङ्कारमधितिष्ठति कविप्रतिभावशात् तस्य चारुत्वातिशययोगः अन्यस्यालङ्कार-मात्रतैवेति सर्वालङ्कारशरीरस्वीकरणयोग्यत्वेनाभेदोपचारात् सैव सर्वालङ्काररूपेत्ययमेवार्थोऽवगन्तव्यः।**
>
> ध्वन्या० (चौखम्बा), पृ० ४६५–६८

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ध्वन्यालोककार की भांति कुछ अन्य आचार्य भी सभी अलङ्कारों

को अतिशयोक्ति का ही भेद मानने की भूल करते हैं । अतिशयोक्ति शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हो सकता है, पहला लोकातिक्रान्गोचर उक्ति तथा दूसरा एक अलङ्कार विकोष के रूप में। भामह की पंक्ति "कोऽलङ्कारोऽनया विना' का अर्थ आनन्दवर्धन तथा कुछ अन्य आचार्यों ने 'अलङ्कार विशेष' ही लिया है, जबकि उनका (भामह का) अभिप्राय लोकातिक्रान्तगोचर उक्ति से था । इसी को सभी अलङ्कारों के मूल में मानना तर्कसंगत है ।

अतिशयोक्ति के भेद–

रुय्यक ने अतिशयोक्ति के पांच भेद दिये हैं –

(1) भेद में अभेद

(2) अभेद में भेद ।

(3) संबंध में असम्बन्ध

(4) असम्बन्ध में सम्बन्ध तथा

(5) कारण तथा कार्य पूर्वापरत्व रूप क्रम का उलटना ।

इसी प्रसंग की व्याख्या में विमर्शिनीकार कहते हैं कि कुछ आचार्य (भामह, आनन्दवर्धन, मम्मट) सभी अलङ्कारों को अतिशयोक्ति का ही भेद मानते हैं और कहते हैं कि अतिशयोक्ति के भेद केवल पांच नहीं बहुत अधिक सम्भव हैं । जैसे – उपमा भी अतिशयोक्ति का भेद है क्योंकि उसमें भी कम गुण वाले मुखादि का अधिक गुण वाले चन्द्र आदि से जो साम्य बताया जाता है उसमें अतिशय का अनतिपात है । इसी अतिशय के अभाव में 'गौरिव गवयः'– इत्यादि उपमिति नामक प्रमाण वाक्य में (साम्य रहने पर भी) अलङ्कारत्व नहीं रहता । अतिशय ही सभी अलङ्कारों का बीज है, इसीलिए कहा गया है –'एक अकेली अतिशयोक्ति ही काव्य का अलङ्कार मान्य है ।"

विमर्शिनीकार ने पूर्वपक्ष के रूप में शोभाकर का उपर्युक्त मत (बिना नाम लिए ही) उद्धृत किया है । इसका खण्डन करते हुए वे कहते हैं कि यह मत तर्कसंगत नहीं है । अतिशय दो प्रकार का होता है – (1) सामान्य, (2) विशेष (अर्थात् भेद में अभेद) । ये दोनों ही भेद कवि

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतिभा प्रसूत होते हैं । इनमें से प्रथम भेद को ही सभी आचार्यों ने अलङ्कारों के बीज–रूप में स्वीकार किया है यदि इसे न मानें तो 'गौरिव गवयः' आदि वाक्य में भी अलङ्कारत्व स्वीकार करना पड़ेगा । केवल इतने से सभी अलङ्कारों को अतिशयोक्ति का प्रभेद मानना उचित नहीं क्योंकि यही विशेषोक्ति उल्लेख आदि में भी सर्वालङ्कार बीजत्व की बात लागू होगी, क्योंकि सभी अलङ्कार विशेषोक्ति रूप तथा उल्लेख रूप होते हैं । दूसरा जो अतिशय का विशेष रूप है उसके आधार पर सभी अलङ्कारों की निष्पत्ति मानने का पक्ष भी अमान्य है, क्योंकि अध्यवसित की प्रधानता ही अतिशयोक्ति की मूलभूत विशेषता है जो अन्य अलङ्कारों में नहीं मिलती। अन्य अलङ्कारों में अध्यवसित के प्राधान्य का ज्ञान नहीं होता इसलिए इन अलङ्कारों में जब अतिशयोक्ति का सामान्य लक्षण लागू नहीं होता तो इन्हें अतिशयोक्ति के भेद मानना कैसे सम्भव है। इस प्रकार अतिशयोक्ति के भेदों की संख्या बहुत अधिक मानने की बात निरस्त हो जाती है । उक्त अंश को उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है –

"केचिच्च सर्वालङ्काराणामप्यतिशयोक्तेरेव प्रभेदत्वादस्या बहुप्रकारतामाचक्षते। तथाह्युपमायामप्यस्त्येतद्भेदत्वम् । न्यूनगुणस्य मुखादेरधिकगुणेन चन्द्रादिना साम्येऽतिशयानतिपातात्, अतिशयं विना च गौरिव गवय इत्यादावनलङ्कारत्वात् । अतश्चातिशयस्यैव सर्वालङ्कार बीजभूतत्वात् 'एकैवातिशयोक्तिश्च काव्यस्यालंकृतिमर्ता' इत्युक्तम् । नैतत् । इह ह्यतिशयस्य द्वयी गतिः यदयं कविप्रतिभानिवर्तितः सामान्यात्मा भवति, भेदेऽप्यभेद इत्येवमादि रूपो विशेषात्मा वा . तत्राद्यः सर्वैरेवालङ्कारबीजतयाभ्युपगतः । अन्यथा हि गौरिव गवय इत्यादावलङ्कारत्वं स्यात्। तावता पुनरेतत्प्रभेदत्वं सर्वालङ्काराणां न युक्तम् तत्त्वे हि विशेषोक्त्युल्लेखादीनामपि तत्प्रसंगः । सर्वालङ्काराणामपि विशेषोक्त्युल्लेखरूपत्वात्। अथ द्वितीयपक्षाश्रेयेणैतदुच्यते तदप्ययुक्तम् । अस्या ह्यध्यवसित प्राधान्यं लक्षणम् । तच्चालङ्काराणां न सम्भवति ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथात्वानवगमात् । अतश्चैषामसंभवात्तत्सामान्यत्वात्कथं तद्विशेषत्वमिति बहुप्रकारत्वमस्या निरस्तम्।

अतिशयोक्ति के प्रथम प्रकार भेद में अभेद का उदाहरण है –

कमलमनम्भसि कमले च कुवलये तानि कनकलतिकायाम् ।
सा च सुकुमारसुभगेत्युत्पातपरम्परा केयम् ।।

(और कमल (चेहरा,) से भी पानी के बिना और कमल के बीच दो नीलकमल (आंखें) और ये तीनों सोने की छड़ी में, (सुन्दरी की गोरी अंग लतिका में) और वह छड़ी भी सुकुमार तथा सुन्दर ! अरे ये उत्पात पर उत्पात कैसा ?)

इस पद्य में मुख आदि का कमल आदि से वस्तुतः तो भेद है, किन्तु अभेद बतलाया जा रहा है, इसलिए भेद में अभेद रूप अतिशयोक्ति का प्रथम प्रकार है ।

'मार्गितलब्धे बलात्कांरचुम्बिते .....' आदि पद्य में प्रिया के अधर का एक ही रस विषय भेद से भिन्न रूप में चित्रित किया गया है, अतएव उसमें अतिशयोक्ति का दूसरा भेद है ।

"अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः' आदि कालिदास के प्रसिद्ध श्लोक में उर्वशी के निर्माण के साथ पुराण प्रजापति (नारायण) का संबंध है तथापि उसका अभाव बताया गया है अतएव संबंध में असम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति का तीसरा भेद है। डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी ने[९६] इस पद्य में प्रयुक्त 'पुराणो मुनिः'.का अर्थ 'बूढ़ा ब्रह्मा' किया है । डा० रेवा प्रसाद द्विवेदी ने[९७] इसका अर्थ 'नारायण ऋषि' किया है । श्री विद्या चक्रवर्ती[९८] ने इसका अर्थ 'पुराणो मुनिर्नरसखः' किया है। इसलिए 'नारायण ऋषि' यही अर्थ लेना उचित प्रतीत होता है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुल्ययोगिता

पूर्व–इतिहास

भामह

इस अलङ्कार का सर्वप्रथम विवेचन भामह ने किया है। इनके अनुसार जहां कम गुण वाले पदार्थ का विशिष्ट गुण वाले पदार्थ से गुणगत साम्य बतलाने के लिए, समान कार्य करना प्रतिपादित किया जाता है वहां तुल्ययोगिता होती है।[१८६] जैसे शेषनाग, हिमाचल और हे राजन ! आप अत्यन्त गरिमामय हैं, जो मर्यादा की रक्षा करते हुए, डोलती पृथ्वीं को धारण किये हुए हैं।[१८०]

दण्डी

भामह तथा दण्डी के ग्रंथों में तुल्ययोगिता का एक जैसा रूप वर्णित है। इनके अनुसार प्रकृत में वर्तमान गुणों की, अप्रस्तुत में स्थित उत्कृष्ट गुणों के साथ (स्तुति अथवा निन्दा के निमित्त) स्वीकृत वर्णन तुल्ययोगिता है[१८१]। इनका स्तुति तुल्ययोगिता का उदाहरण भामह के (उदाहरण के) समान ही है। जैसे "यम, कुबेर, वरूण, इन्द्र तथा आप लोकपाल रूपी ख्याति को धारण करते हैं।[१८२] निन्दा तुल्ययोगिता का पृथक् उदाहरण[१८३] दिया है, जो बहुत सरल है।

उद्भट

इनके अनुसार तुल्ययोगिता वहां होता है जहां उपमानोपमेय भाव से रहित उपमानों अथवा उपमेयों का साम्याभिधायी[१८४] वर्णन होता है वहीं तुल्ययोगिता होती है। इस साम्याभिधान में साधारण धर्म का अस्तित्व अवश्य होना चाहिए। पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षणों की अपेक्षा उद्भट का लक्षण विकसित तथा परिपूर्ण है और मम्मट आदि परवर्ती आचार्यों ने इनके लक्षण को आधार बनाया है। अप्रस्तुतों के साम्याभिधान का उदाहरण अधोलिखित है –

"त्वदङ्गमार्दवं द्रष्टुः कस्य चित्ते न भासते।
मालती – शशभृल्लेखा–कदलीनां कठोरता ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वामन

वामन के लक्षण पर भामह का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इनके मत से अधिक गुण वाले उपमान के साथ, न्यून गुण वाले उपमेय की समानता प्रदर्शित करने के लिए उन दोनों की एक साथ होने वाली क्रिया का योग तुल्ययोगिता है[१६५]। 'विशिष्ट' पद में 'गुण विवक्षा' स्वतः आ जाती है चूंकि अप्रस्तुत पद का प्रयोग वामन के लक्षण में नहीं है इसलिए उद्भट के 'उपमानोपमेयभावशून्यता' की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण है –

"जलधिरशनामिमां धरित्रीं
वहति भुंजंगविभुर्भवद्भुजश्च।"

अर्थात् समुद्र रूपी रशना को धारण किए हुई (चारों ओर समुद्र से घिरी हुई) इस धरा को शेषनाग और आपकी भुजा (ये दोनों) धारण करते हैं। यहां 'तुम्हारी भुजा शेष नाग के समान है" इस प्रकार विशिष्ट अर्थात् अधिक गुण वाले उपमानभूत शेष नाग के साथ साम्य दिखाने के लिए भूमि धारण करने रूप एककालीन क्रिया के साथ उन दोनों का योग किया गया है।

मम्मट

मम्मट के तुल्ययोगिता लक्षण पर उद्भट का प्रभाव है इन्होंने केवल प्राकरणिकों अथवा केवल अप्राकरणिकों का एक धर्म के साथ संबंध बताये जाने को तुल्ययोगिता अलङ्कार कहा है[१६६]। मम्मट के निरूपण से अलङ्कार का स्वरूप व्यवस्थित हो गया। इन्होंने दोनों भेदों का एक एक उदाहरण दिया है।

रुय्यक

रुय्यक का तुल्ययोगिता लक्षण उद्भट की सरणि पर है इनका लक्षण है–

"औपम्यस्य गम्यत्वे पदार्थगतत्वेन प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां वा समानधर्माभिसंबन्धे तुल्ययोगिता।

– (सूत्र २३) अलङ्कार सर्वस्व, पृ० २३६

उपर्युक्त सूत्र में 'प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां' पद बहुवचनान्त अवश्य है, किन्तु ऐसे स्थलों में भी तुल्ययोगिता हो सकती है जहां पद दो प्रस्तुत तथा

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दो अप्रस्तुतों में ही समानधर्माभिसंबन्ध हो । उद्भट के लक्षण की तुलना में रुय्यक का लक्षण अधिक विकसित है और इसमें तीन विशेष तत्व हैं – पहला यह – उद्भट ने तुल्ययोगिता में साम्य का अभिधान माना था किन्तु रुय्यक के लक्षण में औपम्य (साम्य) का गम्य होना बताया गया है । दूसरी विशेषता है उसका पदार्थगत होना तथा तीसरी है समानधर्म (गुण अथवा क्रिया) से अभिसम्बन्ध होना । मम्मट के लक्षण में 'सकृद्धर्मः' शब्द इसी तीसरे तत्व के लिए प्रयुक्त हुआ है, किन्तु उन्होंने अपनी कारिका या वृत्ति में प्रथम तथा द्वितीय तत्व के संबंध में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा है । रुय्यक के परवर्ती आचार्यों ने प्रायः इन्हीं का अनुसरण किया है ।

विमर्शिनीकार जयरथ[१६७] तथा पण्डितराज जगन्नाथ[१६८] तुल्ययोगिता और दीपक को दो पृथक् अलङ्कार नहीं मानते हैं । रुद्रट ने दीपक का विवेचन तो किया है किन्तु तुल्ययोगिता का नहीं, इससे प्रतीत होता है कि वे इसे पृथक् अलङ्कार मानने के पक्ष में नहीं थे ।

रुय्यक ने तुल्ययोगिता के चार भेद किए हैं, जिनका आधार है प्रकृत का गुण अथवा क्रिया एवं इसी प्रकार अप्रकृत का गुण अथवा क्रिया से समान संबंध । इनमें दो भेदों के उदाहरण उद्भट के ही लिए हैं, जो क्रमशः प्रस्तुतों तथा अप्रस्तुतों के गुण से समान संबंध के हैं । प्रस्तुतों का समानधर्माभिसंबंध का उदाहरण है –

योगपट्टो जटाजालं तारवी त्वङ् मृगाजिनम् ।
उचितानि तवाङ्गेषु यद्यमूनि तदुच्यताम् ।।

काoअoसंo ५/१३, अoसo, पृo २३६

अर्थात् योगपट्ट, जटा जाल, तरुवों की छाल् मृगचर्म यदि तुम्हारे शरीर के लिए उचित हों तो बनाओ ।

प्रस्तुत उदाहरण में योगपट्ट, जटाजाल् आदि प्रस्तुतों का एक साधारण धर्म 'औचित्य' से सम्बन्ध है । इसलिए तुल्ययोगिता है ।

अप्रस्तुतों के समानधर्माभिसंबंध का उदाहरण है –

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्वङ्गमार्दवं द्रष्टुः कस्यचित्ते न भासते ।
मालतीशशभृल्लेखाकदलीनां कठोरता ।।

का० अ० सं० ५/१२, अलंकार सर्वस्व पृ. २३६

अर्थात तुम्हारे शरीर की मृदुता को देखने वाले किस व्यक्ति के चित्त में मालती, शशिकला और कदली की कठोरता का भास नहीं हो जाता।

यहां अप्रस्तुतों का एक धर्म 'कठोरता' से सम्बन्ध बताया गया है। अतएव तुल्ययोगिता अलङ्कार है। अधिकांश परवर्ती आलङ्कारिकों का तुल्ययोगिता विवेचन रुय्यक से प्रभावित है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दीपक

पूर्व–इतिहास

भरत

दीपक अत्यन्त प्राचीन अलङ्कार है, जिसका सर्वप्रथम निरूपण भरत ने नाट्यशास्त्र में किया है। इनके अनुसार एक वाक्य के द्वारा नानाधिकरणार्थों [१९९] के द्योतक शब्दों का संयोग दीपक कहा जाता है। इनके लक्षण में 'एक वाक्येन संयोगः 'दीपक की प्रमुख विशेषता बताई गई है, प्रस्तुत –अप्रस्तुत भाव का उल्लेख इसमें नहीं हुआ है। इसका उदाहरण है –

सरांसि हंसैः कुसुमैश्च वृक्षाः मत्तैर्द्विरेफैश्च सरोरुहाणि।
गोष्ठीभिरुद्यानवनानि चैव तस्मिन्नशून्यानि सदा क्रियन्ते।।

भमह

भामह ने काव्यालङ्कार में दीपक का विस्तार से विवेचन किया है। इन्होंने दीपक की स्पष्ट परिभाषा न देकर केवल उसके भेदों का ही वर्णन किया है[२००]। वे कहते हैं कि आदि, मध्य तथा अन्त में रहने की स्थितियां इस अलङ्कार को नाम को अन्वर्थ करती हैं (एक स्थान पर स्थित होकर) अनेक अर्थों[२०१] का दीपन करने के कारण इस चारुत्व को दीपक कहते हैं।

दण्डी[२०२]

दण्डी ने एक ही स्थान पर अवस्थित जाति–गुण–क्रिया एवं द्रव्य वाचक पद के द्वारा सम्पूण वाक्य के अन्वित हो जाने पर दीपक अलङ्कार स्वीकार किया है। इन्होंने धर्म के स्थान पर जाति–द्रव्य–क्रिया एवं गुण का उल्लेख किया तथा क्रियां की आदि, मध्य एवं अन्त की स्थिति को भी (भामह की भांति) मान्यता दी।

इनके अनुसार जहां दीपक का आधार जाति वाचक पद होता है उसे जाति दीपक मानेंगे इसी प्रकार क्रिया–गुण–द्रव्य वाचक पदों के

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आधार पर इन्हीं नामों से दीपक के भेद बनते हैं । काव्यादर्श के द्वितीय परिच्छेद में श्लोक संख्या ९८ से १०१ तक चारों भेदों का एक एक उदाहरण दिया गया है ।

इन सबके उपमेय आदि दीपक, मध्य दीपक तथा अन्त दीपक हो सकते हैं । दोनों वर्गों के मिला कर 'जातिगत आदिदीपक' अथवा 'अन्त वाक्यगत जाति दीपक' इत्यादि उपभेद कहे जायेंगे कुछ उदाहरण (दिङ्मात्र निर्देश के लिए) पांच श्लोकों द्वारा दिए गए हैं । ये बारह भेद दीपक के आधार पद के 'वर्ग' और उसकी 'स्थिति' पर निर्भर हैं ।

दीपक के चार अन्य भेद किए गये हैं – मालादीपक, विरुद्धार्थ दीपक, एकार्थ दीपक तथा श्लिष्टार्थ दीपक । द्वितीय परिच्छेद के श्लोक संख्या १०७ से ११३ तक इनका निरूपण किया गया है ।

उद्भट

इनके अनुसार दीपक अलङ्कार में उपमानोपमेय भाव से धर्मों का एक बार कथन होता है[२०३] । एकदेशविवर्ती[२०४] धर्मो का उपमानोपमेय भाव से अवस्थित वाक्यार्थों में कथन दीपक है । इस अलङ्कार में धर्मों का एक बार उपनिबन्धन होता है, अनेक बार होगा तो उसे प्रतिवस्तूपमा[२०५] मानेंगे। दीपक के तीन भेद आदि, मध्य तथा अन्त इन्होंने भी किए हैं ।

दीपक अलङ्कार का पहली बार वैज्ञानिक विवेचन उद्भट ने ही किया है उनकी दीपक संबंधी कारिका एवं वृत्ति में निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डाला गया है –

(1) दीपक में उपमानोपमेय भाव रहता है। 'अन्तर्गतोपमाधर्मा' की व्याख्या इस प्रकार की गई है – "अन्तर्गतोर्थसामर्थ्यावसेयत्वाद् उपमानोपमेय भावो येषां तथाभिधानां धर्माणामुंपनिबन्धः ।" बाद के सभी आलङ्कारिकों ने इन्हीं से प्रेरित होकर उपमानोपमेय भाव' का दीपक के लक्षण में सन्निवेश किया है ।

(2) धर्मो का एक बार कथन होगा तो दीपक अलङ्कार मान्य होगा, एकाधिक बार कथन होने पर उस चारुत्व को प्रतिवस्तूपमा कहेंगे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(3) दीपक में प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत दोनों के समान धर्मों का कथन होता है, न कि केवल प्रस्तुत अथवा केवल अप्रस्तुत के समान धर्मों का। 'प्राधान्येतरयोगिनः' की व्याख्या प्रतिहारेन्दुराज ने इस प्रकार की है–"उपमेयस्य प्राकरणिकतया प्राधान्याद्, उपमानस्य च तादर्थ्येन गुणभावात्। एवं च प्राधान्येतरयोगिन इत्ययमत्रानुवादः प्राप्तार्थत्वात्। प्राधान्यं च इतरच्चाप्राधान्यं ताभ्यां योगः संबन्धो विद्यते येषां ते तथोक्ताः।"

पृ० १५

वामन

इन्होंने दीपक को 'उपमा प्रपंच' का एक अलङ्कार माना है। इन्होंने एक सूत्र में इसका लक्षण दिया है तथा एक सूत्र में इसके तीन भेद बताए हैं। अन्त में तीनों भेदों का एक–एक उदाहरण दिया है। वामन के दीपक लक्षण पर उद्भट का स्पष्ट प्रभाव है। इन्होंने उपमेय एवं उपमान वाक्यों में एक ही क्रिया के योग को दीपक अलङ्कार माना है।[२०६] क्रिया के आदि मध्य और अन्त में अवस्थित होने के कारण इन्होंने दीपक के तीन भेद माने हैं।[२०७] तीनों भेदों के उदाहरण सरल तथा स्पष्ट हैं।[२०८]

रुद्रट

रूद्रट ने वास्तव वर्ग के अलङ्कारों में दीपक का वर्णन किया है। इनका कहना है कि जहां अनेक वाक्यार्थों का एक क्रियापद अथवा कारकपद होता है वह दीपक है।[२०९] इसके दो भेद हैं – क्रिया दीपक और कारक दीपक। इन्होंने दोनों भेदों के तीन–तीन उपभेद किये हैं आदिगत, मध्यगत तथा अन्तगत।

रुद्रट के टीकाकार नमिसाधु का मत है कि दीपक का अन्य अलङ्कारों में अन्तर्भाव सम्भव है – आदिक्रियादीपक तथा मध्यक्रियादीपक के उदाहरण कारणमाला के माने जा सकते हैं, अन्तक्रियादीपक, आदिकर्तृदीपक तथा मध्यकर्तृदीपक के उदाहरणों पर वास्तवगत समुच्चय का लक्षण घटित होता है तथा इसी प्रकार अन्तकर्तृदीपक का उदाहरण भी जाति अलङ्कार का उदाहरण बन सकता है।[२१०]

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूद्रट ने सर्वप्रथम दीपक के दूसरे क्रारकदीपक का विवेचन किया है। अधिकांश परवर्ती आलङ्कारिकों ने इस नवीन भेद को स्वीकार किया है तथा उसी की आगे चल कर स्वतंत्र अलङ्कार के रूप में स्थापना हो गई।

मम्मट

मम्मट का दीपक विवेचन उद्भट की परम्परा में है। इनका लक्षण है– 'प्रकृत तथा अप्रकृत (उपमेय तथा उपमान) के क्रिया रूप धर्म का एक बार ग्रहण दीपक (क्रिया दीपक) है, इसी प्रकार बहुत सी क्रियाओं में एक ही कारक सकृद्वृत्ति' (एक बार ग्रहण) कारक दीपक है।[२११]

यदि पूर्व–पूर्व की वस्तु, उत्तर–उत्तर वस्तु का उपकारक (गुणावह) हो तो उसे माला दीपक[२१२] कहते हैं।

रुय्यकादि–

दीपक अलङ्कार का लक्षण–सूत्र लिखने से पहले तुल्ययोगिता से इसका भेद बताते हुए वृत्ति में कहते हैं कि प्रस्तुत और अप्रस्तुत के अलग–अलग रहने पर तुल्ययोगिता अलङ्कार बताकर उनके एक साथ रहने पर दीपक अलङ्कार बताया जा रहा है[२१३] –

"प्रस्तुताप्रस्तुतानां तु दीपकम्।"

इस सूत्र में 'औपम्य गंमयत्वे पदार्थगतत्वेन वा समानधर्माभि–संबंधे' की अनुवृत्ति तुल्ययोगिता के लक्षण से होती है। वृत्ति में उन्होंने स्पष्ट किया है कि प्रस्तुत और अप्रस्तुत में से एक निर्दिष्ट साधारण धर्म प्रसंगतः दूसरे का भी उपकार करता है, उसमें दीप्ति लाता है; अतः दीप का सादृश्य होने से वह दीपक नामक अलङ्कार का उत्थापक होता है। इसमें 'इव' आदि का प्रयोग न होने से उपमानोपमेय भाव प्रतीयमान रहता है, परन्तु वह रहता वास्तविक ही है, जबकि पूर्वोक्त अलङ्कार (तुल्य०) में केवल प्राकरणिक अथवा केवल अप्राकरणिक के रहने पर वह उपमानोपमेय भाव विवक्षाधीन (ऐच्छिक) होता है।[२१४] क्योंकि दीपक में उपमानोपमेय भाव

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अप्रस्तुत में से केवल एक रहता है)। अनेक का एक क्रिया के साथ

संबंध रूप औचित्य को लेकर दीपक अलङ्कार को पदार्थगत कहा गया है। वस्तुतः (उपमानोंपमेय भाव) वाक्यार्थ रूप ही होता है।

जयरथ[२१५] तथा पण्डितराज जगन्नाथ[२१६] दीपक को पृथक् अलङ्कार नहीं मानते हैं। चूंकि इन दोनों अलङ्कारों में 'समान धर्म से सम्बन्ध' एक ही तत्व है इसलिए इनमें से केवल एक को ही अलङ्कार मानना उचित है। दोनों ही अलङ्कारों से एक ही प्रकार की अनुभूति होती है, जो थोड़ा भेद से हम एक ही अलङ्कार के भेद के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। यदि हम तुल्ययोगिता के किसी उदाहरण पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि जहां कहीं शुद्ध अप्रकृत का वर्णन है वहां प्रकृत भी भासित हो जाता है। 'त्वदङ्गमार्दवं द्रष्टुः' आदि उदाहरण में मालती चन्द्रकला इत्यादि अप्रस्तुतों का वर्णन है किन्तु साथ ही उनकी कठोरता से प्रस्तुत अंगों की सुकुमारता भी भासित हो जाती है, अर्थात् प्रंस्तुत का अप्रस्तुतों के धर्म से समान संबंध भले ही नहीं हो पाता है किन्तु विरोध संबंध हो जाता है। मालती की कठोरता अंगों की कोमलता की प्रतीति करा देती है इसलिए कहा जा सकता है कि तुल्ययोगिता में प्रस्तुत या अप्रस्तुत प्रतीत हो जाता है और उसका अप्रस्तुत या प्रस्तुत के धर्म के साथ वैधर्म्य भी प्रतिंभासित हो जाता है। इस प्रकार एक ही धर्म से यदि वर्णित प्रस्तुत का संबंध है तो उसी से अवर्णित किन्तु प्रतीत, अप्रस्तुत का विरोध से सम्बन्ध हो जाता है। इसलिए तुल्ययोगिता और दीपक में मात्र इतना भेद है कि पहले में शुद्ध प्रकृत या शुद्ध अप्रकृत होते हैं किन्तु दूसरे में दोनों एक साथ होते हैं। यद्यपि दोनों अलङ्कारों में बहुत बड़ा अन्तर नहीं है तथापि दीपक को पृथक् अलङ्कार मानना तर्कसंगत है। डा० रामचन्द्र द्विवेदी[२१७] इन दोनों को पृथक् अलङ्कार न मान एक ही अलङ्कार के भेद मानने के पक्ष में हैं, किन्तु मेरी दृष्टि में यह अनुचित होगा, क्योंकि ऐसा करने लगें तो अन्य अनेक अलङ्कारों को भी, जिनमें बहुत अन्तर नहीं है, किसी अन्य अलङ्कार का भेद मान लेना चाहिए।

रुय्यक ने पूर्ववर्ती आचार्यों के समान ही, वाक्यार्थ में धर्म के, आदि मध्य तथा अन्त में रहने से इस अलङ्कार के, इन्हीं नामों से तीन

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भेद माने हैं [२१८]– आदि दीपक, मध्य दीपक तथा अन्त दीपक ।

आदि दीपक का उदाहरण है –

"संचारपूतानि दिगन्तराणि
कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा
प्रभा पतंगस्य मुनेश्च धेनुः ।।

पल्लवराग नामक माणिक्य विशेष[२१९] के समान लाल सूर्य–प्रभा ने और मुनि (वसिष्ठं) की धेनु नन्दिनी ने, दिशाओं को अपने संवरण से पवित्र करते हुए दिनावसानम में घर की ओर जाने का उपक्रम किया ।

क्रिया–दीपक के साथ–साथ रुय्यक ने कारक दीपक का भी विवेचन किया है–"अत्र च यथानेककारकगतत्वेनैकक्रियादीपकं तथानेकक्रियागतत्वेनैककारकमपि दीपकम् ।"

अ०स० सूत्र २४ की वृत्ति

यह लक्षण अत्यन्त स्पष्ट है – अनेक कारकों का एक क्रिया से संबंध जिस प्रकार क्रिया दीपक है, उसी प्रकार अनेक क्रियाओं का एक कारक से संबंध 'कारकदीपक' कहलायेगा ।

इसका उदाहरण है –

"साधूनामुपकर्तुं लक्ष्मीं धर्तुं विहायसा गन्तुम् ।
न कुतूहलि कस्य मनश्चरितं महात्मनां श्रोतुम् ।।

साधुओं का उपकार करने के लिए, लक्ष्मी को अपनी बनाने के लिए, आकाश में उड़ने के लिए तथा महात्माओं का चरित्र सुनने के लिए किसका मन उत्कण्ठित नहीं होता है ।

यहां उपकार करना आदि अनेक क्रियाओं के कर्ता के रूप में कुतूहल भरे मन का निर्देश हुआ है, अतएव कारक–दीपक है ।

मालादीपक, रुय्यक को मान्य है । उसकी व्याख्या अन्यत्र[२२०] की गई है, क्योंकि उसमें श्रृंखला का चमत्कार अधिक है, दीपकत्व का नहीं । श्रृंखला मूलक अलङ्कारों के प्रसंग में कारणामाला तथा एकावली के अनन्तर मालादीपक का विवेचन, सर्वस्वकार ने किया है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतिवस्तूपमा

पूर्व–इतिहास

उपमा के भेदों का विवेचन करते हुए भामह ने लिखा था –

समानवस्तुन्यासेन प्रतिवस्तूपमोच्यते ।
यथेवानभिधानेऽपि गुण–साम्यप्रतीतितः ।।

भामहा० २/३४

अर्थात् जब दो वाक्यों में, यथा, इव आदि शब्दों के प्रयोग के बिना ही, समान वस्तु के न्यास द्वारा गुण–साम्य की प्रतीति हो तो उस सौन्दर्य को प्रतिवस्तूपमा कहते हैं ।

दण्डी ने भी उपमा के एक भेद के रूप में इसका विवेचन किया है, जिस पर भामह का पर्याप्त प्रभाव दिखायी पड़ता है –

वस्तु किंचिदुपन्यस्य न्यसनात्तत्सधर्मणः ।
साम्यप्रतीतिरस्तीति प्रतिवस्तूपमा यथा ।।

काव्यादर्श, २/४६

उद्भट

इन्होंने काव्यालङ्कारसारसंग्रह में सर्वप्रथम प्रतिवस्तूपमा का विवेचन किया है । इनके ग्रंथ के प्रथम वर्ग का अंतिम अलंकार प्रतिवस्तूपमा है। इनके अनुसार उपमान एवं उपमेय के सन्निधान में विद्वानों द्वारा जहां साम्य वाचक शब्द का अनेक बार प्रयोग किया गया हो वहां प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार होता है[२१] टीकाकार प्रतिहारेन्दुराज कहते हैं –"साम्यवाचिनः पदस्यासकृदुपादानं क्रियते ।।" इस अलङ्कार में उपमानोपमेय भाव की अवगति, केवल अर्थ की महिमा से होती है । उदाहरण सरल तथा स्पष्ट है –

विरलास्तादृशो लोके शील–सौन्दर्य–सम्पदः ।
निशाः कियत्यो वर्षेऽपि यास्विन्दुः पूर्णमण्डलः ।।

का० सा०सं० १/२४

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वामन

वामन ने प्रतिवस्तूपमा का विवेचन भामह आदि की भांति ही उपमा–प्रपंच[२२२] के अन्तर्गत किया है । ये इसे उपमा का ही भेद मानते हैं । इनके प्रतिवस्तूपमा लक्षण[२२३] पर भामह का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इनके अनुसार उपमेय का कथन होने पर, उसके समान अन्य वस्तु का वर्णन प्रतिवस्तु (प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार) कहलाता है। जैसे –"यह रत्नावली अब जब महारानी हो गयी तो यह परिवार (नौकर–चाकर, जो आस–पास घिरे रहते हैं) पद पर कैसे रह सकती है। जिस रत्न पर देव प्रतिमा उकेर दी जाय वह परिभोग के योग्य नहीं रहता[२२४] ।

रुद्रट

रुद्रट ने प्रतिवस्तूपमा को उभयन्यास नामक औपम्यमूलक अलङ्कार माना है उनका लक्षण है – "जहां दो सामान्य प्रतीत होने वाले अर्थ कहे तो स्पष्ट रूप से जाँय किन्तु वे उपमा के स्वरूप से रहित हों उसे उभयन्यास जानना चाहिए ।"[२२५] इन्होंने उभयन्यास नाम से प्रतिवस्तूपमा का लक्षण करके जो उदाहरण दिया वह भामह के उदाहरण से मिलता जुलता है –

"सकलजगत्साधारणविभवा भुवि साधवोऽधुनाविरलाः ।
सन्तिकियन्तस्तरवः सुस्वादुगन्धिचारुफलाः ।।

अर्थात इस समय ऐसे साधु पुरुष विरल ही हैं जिनका वैभव समस्त जगत के लिए उपयोगी हो । ऐसे तरुवर कितने होते हैं जो उत्तम स्वाद से युक्त सुगन्धियुक्त तथा सुन्दर फल वाले होते हैं ।

मम्मट

मम्मट का लक्षण अधिक स्पष्ट तथा वैज्ञानिक है । प्रतिवस्तुपमा तथा दृष्टान्त अलङ्कारों का साथ–साथ विवेचन काव्यप्रकाश से ही प्रारम्भ हुआ। इनके अनुसार जहां एक ही सामान्य धर्म दो वाक्यों में दो बार भिन्न शब्दों द्वारा कहा जाय वहां प्रतिवस्तूपमा होती है ।[२२६]

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुय्यकादि–

रुय्यक ने प्रतिवस्तूपमा का निम्नलिखित लक्षण दिया है –

वाक्यार्थगतत्वेन सामान्यस्य वाक्य द्वये पृथङ्निर्देशे प्रतिवस्तूपमा।

सू० २५

इसका तात्पर्य है कि वाक्यार्थगत के रूप में साधारण धर्म का दो वाक्यों में पृथक् निर्देश रहने पर प्रतिवस्तूपमा होती है।

सर्वस्वकार ने इस सूत्र की वृत्ति में समान अलङ्कारों का पारस्परिक भेद स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया है –

> **"तत्र सामान्यधर्मस्य इवाद्युपादाने सकृन्निर्देशे उपमा। वस्तुप्रतिवस्तुभावेनासकृन्निर्देशेऽपि सैव। इवाद्यनुपादाने सकृन्निर्देशे दीपक–तुल्ययोगिता। असकृन्निर्देशे तु शुद्धसामान्यरूपत्वं बिम्बप्रतिबिम्बभावो वा। आद्यः प्रकारः प्रतिवस्तूपमा। .... द्वितीयप्रकाराश्रयेण दृष्टान्तो वक्ष्यते। तदेवमौपम्याश्रयेणैव प्रतिवस्तूपमा।**
>
> अ०स० पृ० ६४–६५"

अर्थात् जहां सामान्य धर्म का एक बार निर्देश हो तथा 'इव' आदि का उपादान हो वहां उपमा होती है। उसी प्रकार वस्तु–प्रतिवस्तुभाव के रूप में सामान्य धर्म का एकाधिक बार निर्देश होने पर भी उपमा होती है। जहां 'इव' आदि का उपादान न हो तथा साधारण धर्म का सकृत निर्देश हो तो दीपक एवं तुल्ययोगिता अलङ्कार होते हैं। किन्तु साधारण धर्म का असकृत (एकाधिक बार) निर्देश होने पर वस्तूप्रतिवस्तुभाव (शुद्ध सामान्यरूपता) अथवा बिम्ब–प्रतिबिम्बभाव होता है। इनमें से पहला रूप (शुद्ध समान्य रूप) प्रतिवस्तूपमा का है।

यहां वस्तु शब्द वाक्यार्थ का वाचक है, अतः प्रत्येक वाक्यार्थ में (प्रतिवस्तु में) उपमा अर्थात् साधर्म्य हो – यह प्रतिवस्तूपमा शब्द का अनुगत अर्थ लिया जा सकता है।[२२७]

CC0. Vashishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतिवस्तूपमा की एक विशेषता यह है कि उसमें परस्पर निरपेक्ष

दो वाक्य होते हैं तथा प्रत्येक वाक्य में साधारण धर्म का उपादान होता है। यद्यपि ये साधारण धर्म अर्थ की दृष्टि से अनेक होते हैं तथापि वस्तु की दृष्टि से एक होते हैं। काव्य मर्यादा अथवा पुनरूक्ति से बचने के उद्देश्य से विभिन्न पर्यायों का प्रयोग साधारण धर्म के लिए होता है। इसको और सरल ढंग से यो कहेंगे कि प्रतिवस्तूपमा के साधारण धर्मों में वस्तु–प्रतिवस्तु का संबंध होता है, जिसे वस्तु–प्रतिवस्तुभाव कहते हैं। इसका वस्तुप्रतिवस्तु भाव का एक प्रसिद्ध लक्षण है –

"एकस्यैव धर्मस्य सम्बन्धिभेंदेन द्विरुपादानं वस्तुप्रतिवस्तुभावः।

अर्थात् एक ही धर्म का संबंधि–भेद से दो बार (शब्दान्तर से) उपादान, वस्तुप्रतिवस्तु भाव है।

प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार में 'इव' आदि शब्दों का प्रयोग नहीं होता इस कारण वाक्यों के अर्थ का औपम्य हमेशा गम्य होता है इस औपम्य को दो प्रकार से अभिव्यक्त किया जा सकता है– साधर्म्य से और वैधर्म्य से। जैसे निम्न पद्य –

चकोर्य एव चतुराश्चन्द्रिकाचामकर्मणि।
आवन्त्य एव निपुणा सुदृशो रतकर्मणि ।।

अ०स०, पृ० ९५

चन्द्रिका के आचमन की कला में चकोरियां ही चतुर होती हैं, सुरतकेलि में निुपण अवन्ती जनपद की सुन्दरियां ही हुआ करती हैं।

यहां साधारण धर्म है चतुरता, उसे उपमान वाक्य में चतुर शब्द तथा उपमेय वाक्य में निपुण शब्द से निर्दिष्ट किया गया है[२२८]। चकोरी चतुर है और अवन्ती–देश की स्त्री निपुण। चतुरता और निपुणता वस्तुतः एक ही साधारण धर्म है और इसका कथन उपमान वाक्य में एक शब्द से तथा उपमेय वाक्य में दूसरे शब्द से हुआ है। साधारण धर्म के इस (वस्तु–प्रतिवस्तु) भाव को सरलता से अवगत करने का उपाय यह है कि शब्दकोश में जिन शब्दों का अर्थ एक ही हो उनमें वस्तुप्रतिवस्तुभाव होता है।

उपर्युक्त उदाहरण को ही यदि थोड़ा सा परिवर्तित करके 'विनावन्तीर्न निपुणाः सुदृशो रतनर्मणि' कहा जाय तो यह वैधर्म्य का उदाहरण हो जायेगा।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दृष्टान्त

पूर्व–इतिहास

इस अलङ्कार का सबसे पहले विवेचन उद्भट ने किया है। प्रायः सभी परवर्ती आलङ्कारिकों ने इसका विवेचन किया और विश्वेश्वर पण्डित तक इसकी परम्परा अक्षुण्ण रही।

उद्भट–

इनका कथन है कि "प्रतिपाद्य अर्थ का बिलकुल स्पष्ट प्रतिबिम्ब (अर्थात् सदृश अर्थ) सादृश्यवाचक इव आदि शब्दों के प्रयोग के बिना उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करना दृष्टान्त नामक बुध–मान्य अलङ्कार है।"[२२९] इसका उदाहरण है

"किं चात्र बहुनोक्तेन व्रज भर्तारमाप्नुहि।
उदन्वन्तमनासाद्य महानद्या किमासते॥

का०अ०सा०सं० ६/६

अर्थात् अधिक कहने से क्या? जाओ और अपना पति प्राप्त कर लो। महानदियां क्या बिना समुद्र को प्राप्त किए रुकती हैं? (यह हिमाचल की पार्वती जी के प्रति उक्ति है)

रुद्रट

इनके अनुसार,[२३०] प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत अर्थों में जिस प्रकार का अर्थ पूर्वस्थित हो, उसी प्रकार का अन्य अर्थ वक्ता पुनः रखे तो उस सौन्दर्य को दृष्टान्त कहते हैं। यदि प्रस्तुत पूर्व हो तो उसी प्रकार का अप्रस्तुत पश्चात् हो; यदि अप्रस्तुत पूर्व हो तो वैसा ही प्रस्तुत बाद में हो। इनके लक्षण में प्रतिबिम्ब का भाव नहीं है। उदाहरण सरल है–

त्वयि दृष्ट एव तस्या निर्वातिमनो मनोभवज्वलितम्।
आलोके हि सितांशोर्विकसितकुमुदं कुमुद्वत्या॥

काव्यालङ्कार, ८/६५

अर्थात् तुम्हारे दिखायी देते ही उसका कामदग्ध चित्त शान्त हो जाता

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। ठीक ही है, कुमुद्वती का पुष्प श्वेतरश्मिओं वाले चन्द्रमा के प्रकाश से ही न खिलता है।

यहां नायिकाचित्त रूपी जो पदार्थ पूर्वार्ध में वर्णित किया गया उसमें प्रिय दर्शनजन्य शान्ति (निर्वृति) रूपी धर्म बताया गया। उत्तरार्ध में उसी प्रकार का दूसरा अर्थ (चन्द्र के दर्शन से कुमुद का विकसित होना) प्रतिपादित किया गया है। इन दोनों वाक्यार्थों में नायिका और कुमुद्वती, मन और कुमुद, दर्शन और प्रकाश तथा निर्वृति और विकास के बीच परस्पर बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव है, इसलिए दृष्टान्त अलङ्कार है।

मम्मट

मम्मट ने दृष्टान्त की अत्यन्त संक्षिप्त एवं वैज्ञानिक परिभाषा दी है। इनके अनुसार जब उपमेय वाक्य और उपमान–वाक्य एवं उनके साधारण धर्मों में बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव का निश्चय हो जाय तो वहां दृष्टान्त का सौन्दर्य होगा।[२३१] इन्होंने इस अलङ्कार के संबंध में एक नूतन विचार यह दिया कि दृष्टान्त का चारुत्व साधर्म्य तथा वैधर्म्य दोनों ही स्थितियों में होगा। परवर्ती आलङ्कारिकों ने मम्मट का ही अनुसरण किया है। इन्होंने दो उदाहरण दिये हैं, जिनमे से साधर्म्य का उदाहरण तो रुद्रट द्वारा उद्धृत "त्वयि दृष्ट एव ..." इत्यादि पद्य ही है किन्तु वैधर्म्य का अलग से निम्नलिखित उदाहरण दिया है–

तवाहवे साहसकर्मशर्मणः करं कृपाणान्तिकमानिनीषतः
भटाः परेषां विशरारुतामुगः दधत्यवाते स्थिरतां हि पांसवः ।।

काव्यप्रकारश, पृ० ४८७

अर्थात् (हे राजन् !) साहसपूर्ण कामों में आनन्द प्राप्त करने वाले तुम्हारे खड्ग की ओर हाथ बढ़ाते ही शत्रुओं के सैनिक विशीर्ण हो गये (भाग खड़े हुए)। वायु न चलने पर ही धूल स्थिर रहती है (आंधी आने पर धूल नहीं टिक सकती)।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुय्यकादि

सर्वस्वकार ने प्रतिवस्तूपमा के अनन्तर दृष्टान्त का निरूपण किया है। इसका लक्षण सूत्र है – "तस्यापि बिम्बप्रतिबिम्बतया निर्देशे दृष्टान्तः।" इसकी वृत्ति –

" तस्यापि, न केवलमुपमानोपमेययोः। तच्छब्देन सामान्यधर्मः प्रत्यवमृष्टः।"

अर्थात् यदि उस साधारण धर्म का ही निर्देश बिम्बप्रतिबिम्बभाव से हो तो (वही उपमा) दृष्टान्त है। 'उसका भी' – का तात्पर्य यह है कि केवल उपमान और उपमेय का ही नहीं अपितु साधारण धर्म का भी बिम्बप्रतिबिम्बभाव आवश्यक है। 'उस' पद से साधारण धर्म का ग्रहण होता है। विमर्शिनीकार भी यही मानते हैं –

"तस्यापीति (सामान्यधर्मस्यापीत्यर्थः) उपमानोपमेययोरिति। प्रकृता प्रकृतयोर्धर्मिणोरित्यर्थः। अतश्च धर्माणां धर्मिणां च बिम्बप्रतिबिम्बभावेन निर्देशोऽयमलङ्कारः।

वि०, पृ० २६४

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि धर्म और धर्मी दोनों का बिम्बप्रतिबिम्बभाव से निर्देश ही यह अलङ्कार है। इन्होंने अपने समर्थन में मम्मट के दृष्टान्त लक्षण को उद्धृत किया है –

"यदुक्तमन्यत्रापि – "दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्' इति।

परवर्ती आलङ्कारिकों ने मम्मट – रुय्यक के इस मन्तव्य को स्वीकार करके दो धर्मियों या धर्म में बिम्बप्रतिबिम्ब भाव को दृष्टान्त माना है। पण्डितराज जगन्नाथ इनमें प्रमुख हैं।

जिस प्रकार प्रतिवस्तूपमा में वस्तुप्रतिवस्तुभाव – साधर्म्य और वैधर्म्य दो विधाओं से अभिव्यक्त किया जाता है उसी प्रकार दृष्टान्त में प्रतिबिम्बन की अभिव्यक्ति भी इन दोनों ही विधाओं से हो सकती है।[२३२] साधर्म्य से बिम्बप्रतिबिम्बभाव की अभिव्यक्ति का उदाहरण है–

अब्धिर्लंघित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरता

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मापातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचलः।

दैवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतं
जानीते नितरामसै गुरुकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः ।

यहां यद्यपि पूर्वार्ध के उपमान वाक्य तथा उत्तरार्ध के उपमेय वाक्य में ज्ञानार्थक एक ही 'ज्ञा' धातु के 'जानाति' और 'जानीते' इन दो रूपों द्वारा ज्ञान रूप एक धर्म का निर्देश है किन्तु तन्मूलक सादृश्य विवक्षित नहीं है, सादृश्य को उस पर निर्भर नहीं रखा गया है। सादृश्य को जिस पर निर्भर रखा गया है वह है समुद्रलंघन आदि, और उसमें बिम्बभूत वाग्देवी की उपासना का प्रतिबिम्बन है अतः दृष्टान्त है।

वैधर्म्य से बिम्बप्रतिबिम्बभाव की अभिव्यक्ति का उदाहरण है–

"कृतं च गर्वाभिमुखं मनस्त्वया
किमन्यदेवं निहताश्च नो द्विषः ।
तमांसि तिष्ठन्ति हि तावदंशुमान्न
यावदान्यात्युदयाद्रि मौलिताम् ।।

यहां "नष्ट हो जाना" (निहतत्त्व) आदि बिम्ब में (अंधेरे के) 'ठहरना' आदि के द्वारा वैधर्म्य से प्रतिबिम्बन है–

"अत्र निहतत्त्वादे स्थानादिना वैधर्म्येण प्रतिबिम्बनम् ।"

अ०स०, पृ० २६३

अतएव दृष्टान्त अलङ्कार है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निदर्शना

पूर्व–इतिहास

भामह

निदर्शना का सर्वप्रथम विवेचन भामह के काव्यालङ्कार में मिलता है। इनके अनुसार यथा इव अथवा वत् शब्दों के बिना केवल क्रिया द्वारा ही विशिष्ट अर्थ का उपदर्शन निदर्शना का सौन्दर्य है[२३३]। भामह का लक्षण बाद के आलङ्कारिकों की परिभाषा से भिन्न है। ये क्रिया के द्वारा विशिष्ट अर्थ की प्रतीति को निदर्शना मानते हैं, जिसमें सादृश्य अभिव्यंग्य रहता है वाच्य नहीं। इनका उदाहरण अत्यन्त सरल है –

अयं मन्दद्युतिर्भास्वानस्तं प्रति यियासति ।
उदयः पतनायेति श्रीमतो बोधयन्नरान् ।।

भामहा०, ३/३४

दण्डी

दण्डी का निदर्शना – विवेचन अपने पूर्ववर्ती भामह से तो भिन्न है ही, परवर्ती आचार्यों ने भी इनका अनुसरण नहीं किया। इनके अनुसार अर्थान्तर के समान सत् अथवा असत् फल का निदर्शनीय के प्रसंग में निर्देश हो तो उसे निदर्शन अलङ्कार कहते हैं [२३४]। इन्होंने भामह के समान 'निदर्शना' नाम न देकर उसे 'निदर्शन' कहा है तथा सत् और असत् निदर्शन के अलग अलग उदाहरण दिये हैं। सन्निदर्शन का उदाहरण है –

उदयन्नेष सविता, पद्मेष्वर्पयति श्रियम् ।
विभावयितुमृद्धीनां, फलं सुहृदनुग्रहम् ।। काव्यादर्श २/३४६

उद्भट

काव्यालङ्कार सार–संग्रह में इस अलङ्कार का नाम 'विदर्शना'[२३५] मिलता है। उद्भट के अनुसार जहां दो वस्तुओं में 'भवन्वस्तु संबंध' एवं अभवन्वस्तु संबंध द्वारा, उपमानोपमेय भाव की कल्पना की जाय वहां विदर्शना अलङ्कार होता है। इन्होंने अभवन्वस्तु संबंध का अधोलिखित उदाहरण दिया है–

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विनोचितेन पत्या च रूपवत्यपि कामिनी ।
बिधुवन्ध्यविभावर्याः प्रविभर्ति विशोभताम् ।।
का०सा० ५/११

अर्थात् उचित पति के बिना कोई रूपवती कामिनी भी चन्द्रहीन निशा की शोभा शून्यता धारण करती है ।

इस उदाहरण में निशा की शोभा शून्यता का रूपवती कामिनी से संबंध सम्भव नहीं होता अतः उसका अर्थ तत्तुल्य अन्य शोभा शून्यता में परिणत हो जाता है । इस प्रकार यह असंभवद्वस्तुसम्बन्धमूला विदर्शना का उदाहरण है ।

भवन्वस्तुसम्बन्ध का उदाहरण उद्भट ने नहीं दिया, किन्तु काव्यालङ्कार-सार-संग्रह की लघुविवृति टीका के रचयिता प्रतीहारेन्दुराज ने अपनी ओर से भामह का 'अयं मन्ददूयुति' पद्य उद्धृत करके उसमें यह (द्वितीय) भेद सिद्ध किया है ।

इस अलङ्कार के संबंध में 'अभवन्वस्तुसंबंध' पद का प्रयोग सबसे पहले उद्भट ने किया था, परवर्ती आचार्यों ने प्रायः उसे ही आधार बनाया है ।

वामन

वामन ने काव्यादर्श में उल्लिखित 'निदर्शन' नाम को अपनाया है। इनका लक्षण है – "स्वयं और उसके प्रयोजन के अन्वय का कथन ही निदर्शन है ।"[२३६] शुद्ध (अन्य निरपेक्ष) क्रिया के द्वारा अपना और उपने प्रयोजन के संबंध का प्रतिपादन निदर्शन कहलाता है, क्योंकि इसमें हेतु और दृष्टान्त का अन्तर तिरोहित रहता है।"[२३७] इनका उदाहरण है –

अत्युच्चपदाध्यासः पतनायेत्यर्थशालिनां शंसत् ।
आपाण्डु पतति पत्रं तरोरिदं बन्धनग्रन्थेः ।।
का०सू०, वृ० पृ० २५८

अर्थात् – अर्थशालियों (धनवानों) का अति उच्च पद पर पहुंचना,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्त में उनके पतन के लिए ही होता है, यह कहता हुआ – वृक्ष का यह पीला पत्ता बन्धनग्रन्थि से टूट कर गिर रहा है।

रुद्रट

रुद्रट के काव्यालङ्कार में निदर्शना का विवेचन नहीं मिलता।

मम्मट

मम्मट का निदर्शना –विवेचन उद्भट से प्रभावित है। इनके अनुसार, वस्तु संबंध न संभव होकर, यदि उपमा की कल्पना कराये तो निदर्शना अलङ्कार होता है।[२३८] इन्होंने निदर्शना के एक दूसरे रूप का भी वर्णन किया है, जिसमें क्रिया के द्वारा ही अपना और अपने कारण के संबंध का कथन होता है[२३९]। यह वामन की शब्दावली में निदर्शना की व्याख्या है, जो मूलतः भामह का अनुकरण था। इसका (द्वितीय निदर्शना का) उदाहरण है–

"उन्नतं पदमवाप्य यो लघुर्हेलयैव स पतेदिति ब्रुवन्।
शैलशेखरगतो दृषत्कणश्चारुमारुतधुतः पतत्यधः।।

प्रथम निदर्शना के उदाहरण सर्वस्वकार के उदाहरणों जैसी अभिव्यक्ति वाले हैं।

रुय्यकादि

निदर्शना का रुय्यक के अनुसार लक्षण इस प्रकार है –

"दो वस्तुओं का एकत्र संबंध – जो अन्वय की बाधा न रहने से संभव और अन्वय की बाधा होने पर असम्भव (संबंध) कहलाता है – यदि बिम्बप्रतिबिम्बभाव की प्रतीति कराता है तो निदर्शना होती है। इसका लक्षण सूत्र है–

सम्भवतासम्भवता वा वस्तु सम्बन्धेन गम्यमानं प्रतिबिम्बकरणं निदर्शना।

सूत्र २७

इस अलङ्कार का लक्षण दृष्टान्त के पश्चात् ही क्यों किया गया

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है इसका औचित्य बताते हुए वे वृत्ति में लिखते हैं कि – यहां प्रतिबिम्ब का प्रकरण चला हुआ है (और) निदर्शना में भी प्रतिबिम्ब गम्यमान होता है।[२४०]

इसमें कहीं तो पदार्थों का संबंध सम्भव रहता है और वह अपनी शक्ति से बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव को निष्पन्न करता है किन्तु कहीं–कहीं अन्वय के बाधित हो जाने से वह वस्तु संबंध, असम्भव होता हुआ प्रतिबिम्बन का आक्षेप करता है[२४१]। दोनों में से प्रथम, जिसमें वस्तु संबंध सम्भव होता है, उसका उदाहरण यह पद्य है –

"चूड़ामणिपदे धत्ते यो देवं रविमागतम्।
सतां कार्यातिथेयीति बोधयन्गृहमेधिनः॥

गृहस्थों को सज्जनों का अतिथि सत्कार करना चाहिए, यह जताते हुए जो (पर्वत) अभ्यागत सूर्य देव को मौलिमणि पर धारण करता है।

इस उदाहरण में 'बोधयन्' में णिच् प्रत्यय का प्रयोग अनुकूल आचरण करने के अर्थ में हुआ है अतः वाक्यार्थी का संबंध अबाधित है।

श्री विद्या चक्रवर्ती ने इस अंश की टीका में कहा है –

बोधनसमर्थस्य आचारो गिरौ प्रयुक्तः तस्याचेतनत्वेऽपि कारीषोऽग्निरध्यापयतीतिवत् गिरिः गृहमेधिनो बोधनक्रियासमर्थान् करोतीति तत्सामर्थ्याचरणे णिचः प्रयोगात् सम्भवति वस्तुसंबंधः।

समुद्रबन्ध ने प्रस्तुत पद्य में णिच् प्रत्यय के अर्थ पर प्रकाश डालते हुए इस अलङ्कार का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है। उन पंक्तियों को अविकल उद्धृत करना, सर्वथा उचित होगा –

अयमर्थः – णिचस्तावत् प्रयोज्यविषया प्रवर्तना अर्थः। सा च प्रेषणाध्येषणतत्समर्थाचरणरूपेण त्रिधा। तत्र प्रेषणमाज्ञा। अध्येषणं प्रार्थना। तत्समर्थाचरणं चतुर्धा अनुमतिरुपदेशोऽनुग्रह आनुकूल्याचरणं चेति। तत्र यस्यानुमतिमन्तरेणार्थो न निर्वर्तते, तस्य राजादेरनुमत्या प्रयोजकत्वं गुरुवैद्यादेरुपदेशेनेष्ट–

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साधनत्वज्ञापनापरनाम्ना । यत्र पुनः केनचिद् जिघांसितं पलायमानं कश्चिद् निरुणद्धि, निरुद्धश्च हन्यते, तत्र निरोद्धा हन्तुरनुग्रहं करोतीत्यनुग्रहणे तस्य प्रवर्तकत्वं कारीषोऽग्नि-रध्यापयतीत्यादौ कारीषोऽग्निर्निवात एकान्ते सुप्रज्वलितः शीतकृतमध्ययनविरोधिनमुपद्रवमपनयन् असत्यामपि प्रयोज्य-व्यापारोद्देशेन प्रवृत्तावध्ययन अनुकूल्याचरणेन प्रवर्तको भवति। तत्र पर्वतकर्तृकमागतस्य रवेः शिरसा धारणं गृहमेधिनां सद्विषयातिथेयीकर्तव्यतावबोधेनुकूलमिति पर्वतस्या-नुकूल्याचरणेन प्रवर्तकत्वमिति । अत्र शैलस्यगृहमेधिषु रवेः सत्सुशिरसा धारणस्यातिथेय्याः करणे च प्रतिबिम्बनम् ।”

विवृत्ति, पृ० ८०,८१

दूसरे प्रकार की निदर्शना, (जिसमें वस्तु संबंध असम्भव रहता है) का उदाहरण यह पद्य है –

अव्यात्स वो यस्य निसर्गवक्रः
स्पृशत्यधिज्यस्मरचापलीलाम् ।
जटापिनद्धोरगराजरत्न-
मरीचिलीढोभयकोटिरिन्दुः ।।

इसमें उक्त कामचाप की शोभा का उससे (कामचाप से) भिन्न चन्द्रमा द्वारा धारण किया जाना कदापि सम्भव नहीं है, क्योंकि जिसका जो धर्म होता है उसी के पास रहता है, उसे उससे भिन्न व्यक्ति नहीं अपना सकता। इसलिए प्रस्तुत उदाहरण में यह अर्थ निकलता है कि चन्द्रमा काम चाप की शोभा के समान शोभा को धारण करता है। इन दोनों की शोभाओं में अधिक दूरी नहीं है, इसीलिए (निदर्शना लक्षण में) प्रतिबिम्ब–कल्पना की बात कही गई है।[२४२]

जब पदार्थ द्वारा एकवाक्य में निदर्शना होती है तब उसे पदार्थवृत्ति निदर्शना कहते हैं तथा जब वह वाक्यार्थ वृत्ति होती है तो अनेक वाक्यगा निदर्शना कहलाती है इसके माला रूप और श्रृंखला रूप से भी भेद होते

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं ।[२४३] निदर्शना के तीन प्रकार से निर्देश के आधार पर भेद दिए जाते हैं –

(क) साधारण धर्म की अनुगामिता से

(ख) वस्तुप्रतिवस्तुभाव से तथा

(ग) बिम्बप्रतिबिम्ब भाव से – निर्देश होने से ।[२४४]

प्राचीन आलङ्कारिकों ने उपमेय में उपमान वृत्त को असंभव मान कर असम्भवद्वस्तुसम्बन्धा निदर्शना की व्याख्या की थी। किन्तु सर्वस्वकार ने कहा है कि वस्तुतः उपमेय वृत्त की उपमान वृत्त में असम्भव स्थिति को लेकर भी इसकी व्याख्या की जा सकती है –

"इयं चोपमेय उपमानवृतस्यासम्भवात्प्रतिपादिता पूर्वैः । वस्तुतस्तूपमेयवृत्तस्योपमानेऽसम्भवादपि भवति । उभयत्रापि सम्बन्धविघटनस्य विद्यमानत्वात् ।

अ०स०, पृ० १००

उदाहरण के लिए वियोगे गौडनारीणां[२४५] इत्यादि पद्य में कपोल तल का वर्णन प्रकृत है उसका पीलापन खजूर के पराग (जो उपमान वृत है) में संभव नहीं है। उपमान वृत्त का उपमेय वृत्त में, इस असम्भव वस्तु, संबंध का दोनों के औपम्य में पर्यवसान होता है इसलिए यहां असम्भवद्वस्तुसम्बन्धा निदर्शना है ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यतिरेक

पूर्व–इतिहास

व्यतिरेक अलङ्कार का विवेचन भामह से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ एवं विश्वेश्वर पण्डित तक प्रायः सभी आचार्यों ने किया है। व्यतिरेक के स्वरूप निरूपण में आलङ्कारिकों में मतैक्य नहीं है।

भामह

'इनके अनुसार तुलना करते हुए जहां उपमेय की (उपमान से) विशेषता वर्णित की जाय वहां व्यतिरेक अलङ्कार होता है।[२४६] जैसे – (धनी) पलकों से युक्त तुम्हारे अरुण वर्ण नेत्र उज्ज्वल भी हैं और श्याम भी किन्तु श्वेत कमल तथा नील कमल या तो बिलकुल उज्ज्वल होते हैं या बिलकुल श्याम।[२४७]

दण्डी

दण्डी के विवेचन में नवीनता है। इनके अनुसार उपमानोपमेय का शब्दोपात्त अथवा प्रतीत सादृश्य होने पर भेद का कथन व्यतिरेक अलङ्कार है[२४८]। इनके लक्षण में भामह के 'विशेष निदर्शन' का समावेश नहीं किया गया, जबकि वही व्यतिरेक का आधार है। काव्यादर्श में व्यतिरेक के विवेचन में निम्नलिखित बातें प्रदर्शित की गई हैं –

(अ) दो पदार्थों में सादृश्य होने पर भी भेद का निरूपण अर्थात् दोनों में सादृश्य के रहने पर भी वैधर्म्य का होना – भेदक गुण का प्रदर्शित होना।

(ब) दो पदार्थों के सादृश्य का शब्द या प्रातीतिक अथवा प्रतीयमान होना।

इन्होंने व्यतिरेक के चार भेदों का वर्णन किया है –

(1) उपमेय के उत्कर्ष एवं उपमान के अपकर्ष का वर्णन
(2) उपमान के अपकर्ष का वर्णन
(3) उपमेय के उत्कर्ष का वर्णन
(4) उभयानुपादान या दोनों प्रकार की स्थिति का होना

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उद्भट

उद्भट का कहना है कि उपमानोपमेय का विशेषापादन व्यतिरेक है।[२४९] इसके तीन भेद हैं – उपात्तनिमित्त विशेषापादन, अनुपात्तनिमित्तिविशेषापादन तथा वैधर्म्येण दृष्टान्त। इनमें से प्रथम दो सामान्य व्यतिरेक के ही दो उपभेद हैं। उद्भट ने भामह के लक्षण को स्वीकार किया है एवं उसी का विकसित रूप इनके ग्रंथ में दिखाई देता है। इनके अनुसार विशेषापादन तीन प्रकार से हो सकता है – उपमान की उपमेय से अथवा उपमेय की उपामन से विशेषता का वर्णन हो सकता है। वैधर्म्येण दृष्टान्त[२५०] एक नया उपभेद है।

वामन

वामन का व्यतिरेक लक्षण अधिक स्पष्ट है। इनका कहना है कि उपमान की अपेक्षा उपमेय में गुंणाधिक्य का वर्णन व्यतिरेक का सौन्दर्य है[२५१]। व्यतिरेक का चारुत्व दो प्रकार का हो सकता है – शब्दोपात्त तथा गम्य[२५२]। इनके लक्षण पर भामह का प्रभाव है तथा भेद–कथन दण्डी से प्रभावित है। दण्डी का गम्य (प्रतीयमान) व्यतिरेक का उदाहरण अत्यन्त स्पष्ट है, किन्तु वामन के उदाहरण में प्रतीप अलङ्कार की छाया दृष्टिगोचर होती है –

कुवलयवनं प्रत्याख्यातं नवं मधु निन्दितम्,
हसितममृतं भग्नं स्वादोः पदं रससम्पदः।
विषमुपहितं चिन्ताव्याजान्मनस्यपि कामिनां
चतुरललितैर्लीलातन्त्रैस्तवार्धविलोकितैः ॥

का०सू० वृ० पृ० २६२

रुद्रट

रुद्रट ने व्यतिरेक का विस्तृत विवेचन किया है। राजानक रुय्यक का व्यतिरेक विवेचन मुख्य रूप से प्रभावित है। इनके अनुसार यदि उपमेय में गुण बतलाया जाय और उपमान में उसके विरुद्ध दोष का कथन होता है और कहीं दोनों में से एक का, इस प्रकार तन्मूलक व्यतिरेक तीन प्रकार

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का हो जाता है ।[२५३]

इसके विरुद्ध जब उपमान में गुण बतलाया जाता है और उपमेय में दोष तो वह भी एक व्यतिरेक होता है[२५४] (इस भेद की भामह, वामन और उद्भट ने चर्चा नहीं की है) ।

इस प्रकार रुद्रट ने व्यतिरेक के चार भेदों का वर्णन किया है–

(क)

1. उपमेय में गुणोक्ति तथा उपमान में दोषोक्ति,
2. केवल उपमेय में गुणोक्ति तथा
3. केवल उपमान में दोषोक्ति

(ख)

1. उपमेय में दोषोक्ति तथा उपमान में गुणोक्ति अन्तिम भेद का उदाहरण काव्य–शास्त्र में बहुचर्चित है –

"क्षीणः क्षीणोऽपि शशी भूयो भूयोऽभिवर्धते सत्यम्
विरम प्रसीद सुन्दरि यौवनमनिवर्ति यातं तु ।।

का० सा० सं० ७/६०

मम्मट

मम्मट का व्यतिरेक – विवेचन पूर्ववर्ती आचार्यों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है । इन्होंने इसके भेदों की संख्या २४ तक पहुंचा दी है। इनके अनुसार उपमान से उपमेय का आधिक्य वर्णन ही व्यतिरेक का सौन्दर्य है ।[२५५] उन्हें व्यतिरेक का एक ही पक्ष मान्य है, जिसमें उपमेय का उत्कर्ष बतलाया जाता है । उपमेय के अपकर्ष के व्यतिरेक की सम्भावना का उन्होंने खण्डन किया है ।

'क्षीणः क्षीणोऽपि शशी भूयो-भूयोऽभिवर्धते सत्यम्' इत्यादि श्लोक उद्धृत करके मम्मट कहते हैं – "इत्यादौ उपमानस्य उपमेयाद् आधिक्यमिति केनाचिदुक्तम् तद् अयुक्तम् अत्र यौवनगतास्थैर्याधिक्यम् हि विवक्षितम् ।"

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थात् 'क्षीणः क्षीणोऽपि' इत्यादि श्लोक में किसी ने उपमेय से उपमान

की अधिकता बतलाई है, किन्तु वह गलत है, क्योंकि यहां यौवन में अस्थैर्य की ही अधिकता बतलाना कवि को अभीष्ट है। यहां मम्मट ने रुद्रट के मत का खण्डन किया है, यद्यपि उनका नाम नहीं लिया है। मम्मट ने व्यतिरेक शब्द के अंश अतिरेक पर विशेष ध्यान दिया। पूर्वाचार्य–प्रतिपादित 'वि' उपसर्ग की सार्थकता को उन्होंने स्थान नहीं दिया। भेदों की गणना में मम्मट ने उद्भट की सभी विधायें अपना ली हैं, केवल प्रतीयमान सादृश्यमूलक भेद के साथ ही उन्होंने आक्षिप्त सादृश्यमूलक भेद की भी कल्पना कर ली है। इसके अतिरिक्त उन्होंने निमित्त के अनुपादन को केवल एक भेद न मान कर तीनो भेदों में विभक्त किया है। ग्रंथ विस्तार से बचने के लिए उन सबका विवरण यहां नहीं दिया जा रहा है।

रुय्यकादि

सर्वस्वकार ने व्यतिरेक अलङ्कार का लक्षण इस प्रकार दिया है –

सूत्र – भेदप्राधन्ये उपमानादुपमेयस्याधिक्ये विपर्यये वा व्यतिरेकः।

वृत्ति – **अधुना भेदप्राधन्येनालङ्कारकथनम्। भेदो वैलक्षण्यम्। स च द्विधा भवति। उपमानादुपमेयस्याधिकगुणत्वे विपर्यये वा भावात्। विपर्ययो न्यूनगुणत्वम्।**

अर्थात् – सादृश्य में यदि भेद की प्रधानता हो और उपमान की अपेक्षा उपमेय में गुणों की अधिकता या न्यूनता वर्णित हो तो व्यतिरेक अलङ्कार होता है।

इससे पहले अभेदप्रधान अलङ्कारों का निरूपण कर चुके है, अब भेद प्रधान अलङ्कारों (व्यतिरेकादि) का निरूपण प्रारम्भ करते हुए, इस सूत्र की वृत्ति में उन्होंने 'भेद' का अर्थ किया है 'वैलक्षण्य' यानी भिन्नता। यह (वैलक्षण्य) दो प्रकार का होता है – "उपमान की अपेक्षा उपमेय में गुणों की अधिकता होने से अथवा इसका 'विपर्यय' (न्यूनता) होने से।

रुय्यक ने इस सूत्र की वृत्ति में 'विपर्ययो न्यूनगुणत्वम्' क्यों लिखा, इसका औचित्य बताते हुए श्री विद्या चक्रवर्ती कहते हैं [२५६] – 'विपर्यय शब्द से मिथ्या ज्ञान'[२५७] का भ्रम न हो इसीलिए वृत्ति में इसका अर्थ

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'न्यूनगुणत्व' लिखने की आवश्यकता हुई ।

इस अलङ्कार के पूर्व–इतिहास पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि उद्‌भट तक किसी भी आचार्य ने – उपमान का आधिक्य–वर्णन होने पर व्यतिरेक माना जाय या नहीं – इस संबंध में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा है ।

वामन–कृत व्यतिरेक–लक्षण में सर्वप्रथम यह स्पष्ट रूप में कहा गया है कि केवल उपमेय की अधिकता में ही व्यतिरेक मानना चाहिए। इनके परवर्ती आचार्य रुद्रट ने उपमान के आधिक्य तथा उपमेय के आधिक्य दोनों ही प्रकार से व्यतिरेक माना है ।[२५८]

रुय्यक ने रुद्रट के इस सूत्र की टीका करते हंए कुछ अन्य आचार्यों के मन्तव्य का उल्लेख किया है जो इस अलङ्कार के लक्षण में विपर्यय (उपमेय की न्यूनता) का ग्रहण अनुचित मानते हैं । उनका कहना है कि 'क्षीणः क्षीणोऽपि शशी' इत्यादि उदाहरण में उपमान चन्द्रमा की अपेक्षा उपमेय यौवन की अस्थिरता दिखाने का उद्देश्य, उपमेय का आधिक्य बताना ही है ।[२५९] समुद्रबन्ध ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि वे रुय्यक से सहमत हैं अथवा अन्य आचार्यों से ।

श्री विद्या चक्रवर्ती ने सर्वस्व की टीका में, उपमान के आधिक्य वर्णन में व्यतिरेक होने या न होने के संबंध में अपना कोई मन्तव्य नहीं दिया है किन्तु काव्यप्रकाश की टीका में मम्मट के मत का विवेचन करते हुए कहा है कि ऐसी स्थिति में (उपमानाधिक्य में) उन्हें व्यतिरेक मान्य नहीं है –

उपमानस्याधिक्यमिति रुचकेनोक्तमयुक्तम्[२६०] ।

विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित तथा विद्यानाथ ने सर्वस्वकार के व्यतिरेक लक्षण का अनुसरण किया है । विद्याधर इस संबंध में मम्मट से प्रभावित हैं । एकावली की तरला टीका में मल्लिनाथ ने, तथा प्रतापरुद्रयशोभूषण की टीका रत्नार्पण में कुमारस्वामी ने रुय्यक के मत का खण्डन करके मम्मट के मत को युक्तियुक्त बताया है ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शोभाकर मित्र का कथन है कि उपमेय तो उपमान की अपेक्षा न्यून गुण वाला होंता ही है और उपमान सदा उत्कृष्ट गुण वाला। इसलिए उपमान के आधिक्य वर्णन में कोई नवीनता या विच्छित्ति नहीं है। अतएव ऐसी स्थिति में व्यतिरेक (अलङ्कार) नहीं माना जा सकता –

उपमानस्यान्यस्मादाधिक्यं हि स्वभावतः सिद्धम्।
तत्वे तेन न युक्तो व्यतिरेकश्चारुताविरहात्॥

--अ० र० पृ० 26

उपमान की अधिकता में व्यतिरेक न मानने वाले सभी आचार्यों द्वारा किया गया (रुय्यकादि के मत का) खण्डन उपर्युक्त मान्यता पर आधारित है। जयरथ ने शोभाकर आदि के मत का खण्डन किया है।

रुद्रट ने उपमानाधिक्य में व्यतिरेक का अधोलिखित उदाहरण दिया है–

क्षीणः क्षीणोऽपि शशी भूयो भूयोऽभिवर्धते सत्यम्।
विरम प्रसीद सुन्दरि ! यौवनमनिवर्ति यातं तु॥

यहां यौवन उपमेय है और चन्द्रमा उपमान है दोनों में समान धर्म है – अस्थैर्य और वैलक्षण्य (भिन्नता) है चन्द्रमा की अस्थिरता का जाकर भी लौट आना तथा यौवन का, जाने के बाद पुनः न लौटना। अभिप्राय यह कि चन्द्र का गुण उतना नश्वर नहीं है जितना यौवन का। इस प्रकार उपमान (चन्द्र) में गुणाधिक्य है और यौवन में विपर्यय (न्यूनगुणत्व)। रुद्रट के टीकाकार नमिसाधु लिखते हैं –

अत्र शश्युपमानं क्षीणोऽपि वृद्धिगुणयुक्तो निर्दिष्टः यौवनन्तूपमेयं क्षयदोषयुक्तम्। (नमिसाधु की टीका, पृ ६४)

उपमानाधिक्य को अलङ्कार मानने वाले आचार्यों का यही दृष्टिकोण है। रुय्यक भी रुद्रट आदि के मन्तव्य से प्रभावित हैं –

चन्द्रापेक्ष्या च यौवनस्य न्यूनगुणत्वम्। शशिवैलक्षण्येन तस्यापुनरागमनात्।

अ० स०, पृ० १०२

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के लेखक को रुय्यक, जयरथ आदि का उपर्युक्त मन्तव्य उचित नहीं प्रतीत होता है। उदाहरण पद्य 'क्षीणः क्षीणोऽपि .. ...' पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो लगता है कि सखी (या कोई शुभच्छुक) किसी रूठी हुई सुन्दरी को मान त्याग कर प्रिय–समागम के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से चन्द्रमा की अपेक्षा यौवन को अस्थिर बता रही है। मेरे विचार में 'यौवन की अस्थिरता' से उसकी (उपमान से) न्यूनता विवक्षित नहीं है अपितु 'दुर्लभता' की ओर ही संकेत है। लोक–व्यवहार में हम देखते हैं कि जो दुर्लभ होता है, उसी का विशेष महत्त्व, विशेष आदर होता है। श्वसुरालय में प्रायः जा धमकने वाले जामाता का वह आदर कहां होता है जो कभी–कभार जाने वाले का।. रेगिस्तान आदि सभी स्थानों में प्राप्य नीम व बबूल का वह आदर कहाँ होता है जो चन्दन का। सप्राप्यता एवं दुष्प्राप्यता ही आधार है – विशेष आदर, विशेष महत्व का। चन्द्रमा, जाकर भी पुनः लौटता है, यौवन का पुनरावर्तन नहीं होता, अतएव उपमान (चन्द्र) की अपेक्षा उपमेय (यौवन) की दुष्प्राप्यता की बात कह कर इस का उत्कर्ष ही बताया गया है न कि अपकर्ष।

व्यतिरेक का एक सुन्दर उदाहरण माघ के शिशुपालवध का यह श्लोक है –

तुंगत्वमितरा नाद्रौ नेदं सिन्धावगाधता।
अलंघनीयता हेतुरुभयं तन्मनस्विनि ।।

शिशु०, २/४८

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समासोक्ति

पूर्व–इतिहास

समासोक्ति बहुत प्राचीन अलङ्कार है। प्रायः सभी आचार्यों ने इसका विवेचन किया है, जिनमें भामह सर्वप्रथम हैं।

भामह

इनके अनुसार जहां एक अर्थ के कथन पर उसके समान विशेषताओं से युक्त किसी अन्य अर्थ की प्रतीति हो तो वहां संक्षिप्त रूप से उक्ति होने के कारण समासोक्ति अलङ्कार होगा।[२६१] जैसे –"स्कन्ध–युक्त, ऋजु, व्याल रहित, दृढ़, अनेक महान फलों वाला यह वृक्ष ऊंचा हुआ, पर पवन ने इसे गिरा दिया[२६२]।" वृक्ष के इस वर्णन से दुर्भाग्य पीड़ित किसी महापुरुष की प्रतीति होती है, क्योंकि सभी विशेषण वृक्ष और महापुरुष दोनों में लग रहे हैं; अतः समासोक्ति है।

दण्डी

इनका कहना है कि कोई वस्तु अभिप्रेत[२६३] हो और उसके समान किसी अन्य वस्तु का कथन किया जाय तो वह संक्षेपरूपेण उक्ति समासोक्ति है। इन्होंने एक उदाहरण कार्यसाम्यघटिता समासोक्ति दिया है। विशेषणसाम्यघटिता के उपभेद भी दिखाये गये हैं, परन्तु लिङ्गसाम्यघटिता का कोई उदाहरण नहीं दिया गया है।

दण्डी ने अपूर्व समासोक्ति नामक एक नये भेद का निरूपण किया है। इसमें अपूर्व पूर्वधर्मनिषर्तक–कल्पित) धर्म को आधार बनाया जाता है। जैसे –

"निवृतव्यालसंसर्गो निसर्गमधुराशयः।
अयमम्भोनिधिः कष्टं कालेन परिशुष्यति ।।

काव्यादर्श, २/२१२

समुद्र का प्रसिद्ध धर्म है व्याल–संसर्ग तथा लवणाशयत्व, किन्तु यहां उस धर्म की निवृत्ति कर दी गई। यह 'अपूर्वता' समासोक्ति के चमत्कार

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के लिए है। वस्तुतः समुद्र अभिप्रेत नहीं है, बल्कि पुरुष अभिप्रेत है, समुद्र तो उसके तुल्य वस्तु है।

उद्भट

इनके अनुसार यदि वाक्य प्रकृतार्थक हो किन्तु उसके विशेषण इस प्रकार समान हों कि उनसे अप्रस्तुत अर्थ का कथन होता है तो उसे समासोक्ति कहते हैं [२६४] यह लक्षण अत्यन्त वैज्ञानिक है। इसमें बल इस बात पर दिया गया है कि प्रकृतार्थ वर्णित हो तथा अप्रकृतार्थ गम्य हो, इस प्रकार अप्रस्तुत–प्रशंसा और समासोक्ति में अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है। परवर्ती आलङ्कारिकों ने उद्भट के लक्षण के आधार पर इस अलङ्कार का विवेचन किया है।

वामन

इनका कथन है कि उपमेय को बिना कहे समान वस्तु का विन्यास समासोक्ति कहलाता है[२६५] संक्षेप में कथन रहने से इसका 'समासोक्ति' नाम पड़ा। जैसे – "मरुभूमि में स्थित वह करील श्लाघ्य है जो पथिकों की थकावट दूर करता है; उस कल्पवृक्ष को धिक्कार जो सुमेरू पर स्थित है और याचकों की इच्छा का अनुभव नहीं करता।"[२६६] इस उदाहरण पर भामह का स्पष्ट प्रभाव है।

उद्भट की वैज्ञानिकता वामन के विवेचन में नहीं दीखती। इसका कारण सूत्र शैली है। वामन प्रतिवस्तूपमा, समासोक्ति तथा अप्रस्तुत प्रशंसा तीनों का वर्णन उपमेय के प्रसंग से ही करना चाहते हैं। इनके अनुसार उपमेय की उक्ति में प्रतिवस्तूपमा (उपमेय की) अनुक्ति में समासोक्ति और किंचिदुक्ति में अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है। इन अलङ्कारों के वामन कृत लक्षण असमर्थ एवं अस्पष्ट हैं।

रुद्रट[२६७]

रुद्रट ने समासोक्ति का निरूपण भामह के समान किया है। इनके अनुसार जहां केवल उपमेय ही कहा जाय और वह सभी विशेषणों की

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समानता के आधार पर उपमान की प्रतीति व्यंजना द्वारा कराये तो वहां समासोक्ति होती है। जैसे –"सभी याचक और प्रणत व्यक्तियों को प्रसन्न करने वाले अच्छे बढ़े हुए इस सुन्दर वृक्ष का फल कभी समाप्त नहीं होता। आकार में बहुत बड़ा होता है, शीघ्र परिपक्व (परिणत) हो जाता है और बड़ा ही स्वादु रहता है।"[२६८] इस उदाहरण में वृक्ष ही प्रस्तुत है इसलिए उपमेय है। उससे उसी के समान सत्पुरुष की प्रतीति तुल्य विशेषणों के आधार पर होती है अतः यहां समासोक्ति अलङ्कार है।

मम्मट

मम्मट का समासोक्ति लक्षण अत्यन्त संक्षिप्त है : "परोक्ति भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः।"

श्लिष्ट विशेषणों से युक्त ऐसी अप्रस्तुत उक्ति समासोक्ति है जो प्रस्तुत अर्थ का प्रतिपादन करने में समर्थ हो। वृत्ति में इसको इस प्रकार स्पष्ट किया गया है –

> **"प्रकृतार्थप्रतिपादकवाक्येन श्लिष्टविशेषणमाहात्म्यात् न तु विशेषस्य सामर्थ्यादपि, यत् अप्रकृतस्य अर्थस्य अभिधानं सा समासेन संक्षेपेण अर्थद्वयकथनात् समासोक्तिः।"**
>
> (काव्यप्रकाश, विश्वेश्वर, पृ० ४७४)

रुय्यकादि

सर्वस्वकार ने समासोक्ति का लक्षण–सूत्र लिखने से पहले कहा है कि –

"भेद प्रधान अलङ्कारों (व्यतिरेकादि) का निरूपण करने के पश्चात् अब समासोक्ति और परिकर इन दो अलङ्कारों का विवेचन करते हैं जिनमें विच्छित्ति (समास और अभिप्राय) विशेषणों पर आश्रित रहती है।[२६९]

समासोक्ति का लक्षण सूत्र है –

"विशेषणसाम्यादप्रस्तुतस्य गम्यत्वे समासोक्तिः।

इस सूत्र को स्पष्ट करते हुए वे वृत्ति में लिखते हैं –

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इह प्रस्तुताप्रस्तुतानां क्वचिद्वाच्यत्वं क्वचिद्गम्यत्वमिति द्वैविध्यम् । वाच्यत्वं च श्लेषनिर्देशभङ्ग्या पृथगुपादानेन वेत्यपि द्वैविध्यम् । एतद्द्विभेदमपि श्लेषालङ्कारस्य विषयः। गम्यत्वं तु प्रस्तुतनिष्ठमप्रस्तुतप्रशंसाविषयः, अप्रस्तुतनिष्ठं तु समासोक्तिविषयः ।

अर्थात् – अलङ्कारों में, प्रस्तुत और अप्रस्तुत का निर्देश दो प्रकार से किया जाता है – वाच्य रूप से एवं गम्य रूप से। जो निर्देश वाच्य रूप से किया जाता है, वह भी दो प्रकार का होता है – श्लेष द्वारा और पृथक्–पृथक् शब्दों द्वारा यह दोनों ही प्रकार का वाच्य निर्देश, श्लेष अलङ्कार का विषय है किन्तु जहां निर्देश गम्य रूप से रहता है, वहां यदि वह प्रस्तुत अर्थ की (गम्य रूप से) प्रतीति कराता है, तो वह अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार होता है, तथा यदि अप्रस्तुत अर्थ गम्य रूप से प्रतीत हो रहा हो तो वहां समासोक्ति होगी। इसका निमित्त होती है केवल विशेषणों की समानता, क्योंकि इसी के (विशेषण साम्य के) कारण प्रतीयमान अप्रस्तुत, प्रस्तुतवत् प्रतीत होता है। यदि विशेष्य भी (प्रकृताप्रकृतोभय) समान हो तो वहां श्लेष हो जाता है। अप्रस्तुत अर्थ जब विशेषण की समानता से गम्य रूप में प्रतीत होता है तब वह प्रस्तुत का अवच्छेदक होकर प्रतीत होता है। अवच्छेदक होने का अर्थ, व्यवहार समारोप है, रूप का आरोप नहीं, रूप का आरोप मानने पर तो प्रकृत अर्थ से अवच्छादित हो जाएगा और ऐसी स्थिति में वहां रूपक होगा; क्योंकि अप्रकृत रूप से अवच्छादित प्रकृत, वहां वस्तुतः अप्रकृत के रूप से रूपित ही होगा।[२७०]

रुय्यक समासोक्ति लक्षण में पाठान्तर मिलता है। एक में 'विशेषणानां साम्यात्' पाठ है और दूसरे में 'विशेषणसाम्यात्' यदि पहले पाठ को स्वीकार करें तो समासोक्ति वहीं होगी जहां अनेक विशेषणों का उपादान होगा, किन्तु बहुत से ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते हैं जहां वह एक विशेषण का ही उपादान हुआ है और समासोक्ति है। जैसे –

श्वसनविषमा रात्रिर्ज्योत्स्ना तरंगितविभ्रमा,
CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
शशिमणिभुवो वाष्पायन्ते निमीलति पद्मिनी ।

उपाचिततमोमोहा भूमिर्व्यनक्ति विवर्णतां,
तदिति गहनं दर्शं दर्शं कथं सखि जीव्यते ।
वि०, पृ० १०८

इस उदहारण पद्य में रात्रि, ज्योत्स्ना आदि प्रस्तुत हैं, उनके लिए पृथक्, रूप से केवल एक विशेषण है 'श्वसन विषमा' तथा 'तरंगितविभ्रमा' आदि। एक विशेषण से ही रात्रि, ज्योत्स्ना आदि में विरहिणी नायिका की व्यवहारप्रतीति होती है। इसलिए विमर्शिनीकार, संजीवनी तथा विवृतिकार इन तीनों टीकाकारों द्वारा समस्त एवं अनेक पाण्डुलिपियों में प्राप्त 'विशेषणसाम्यात्' पाठ ही तर्कसंगत लगता है। यदि पहला पाठ स्वीकार करें तो अनेक विशेषणों का होना, समासोक्ति मानने के लिए आवश्यक हो जाएगा और उपर्युक्त उदाहरण में इसका लक्षण नहीं घटित होगा।

समान विशेषण का निर्देश तीन प्रकार से संभव है –

(क) श्लेष के द्वारा। जैसे – लालिमा तथा अनुराग इन दो अर्थों का वाचक है 'राग शब्द' 'उपोढरागेण विलोलतारकं' आदि पद्य में है।

(ख) उभयार्थसाधारण शब्द के द्वारा। जैसे – 'मनोरमा' शब्द ऐसा विशेषण है जो लता तथा नायिका दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकता है।

(ग) उपमागर्भ शब्द के द्वारा। जैसे – 'दन्तप्रभापुष्पचिता' पद का समासविग्रह दो प्रकार से हो सकता है – 'दन्तप्रभाः पुष्पाणीव तैश्चिता' तथा 'दन्तप्रभासदृशैः पुष्पैश्चिता'। पहला समास, जो उपमागर्भ है उससे प्रकृत नायिका की प्रतीति होती है। दूसरे समास (मध्यमपदलोपी) द्वारा अप्रकृत लता के व्यवहार की प्रतीति होती है। इसी पद का एक अन्य प्रकार से भी समास हो सकता है –'दन्तप्रभा एवं पुष्पाणि तैश्चिता'। तीनों प्रकार के समासों से इस पद को नायिका का विशेषण बनाया जा सकता है, जिनमें पहले दो (समासों) के आधार पर तो समासोक्ति स्वीकरणीय होगी

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्योंकि उनके द्वारा अप्रस्तुत के व्यवहार की प्रतीति से आच्छादित प्रस्तुत की ही प्रधानता बनी रहती है किन्तु तीसरे प्रकार से (रूपकगर्भ) समास में लता अपने रूप से नायिका को रूपित कर देती है इसलिए वहां व्यवहार समारोप से होने वाली समासोक्ति न होकर रूप समारोप से होने वाला रूपक अलङ्कार होगा ।

रुय्यक ने श्लिष्ट पद द्वारा विशेषणसाम्य से समासोक्ति का अधोलिखित उदाहरण दिया है जो पाणिनि रचित बताया जाता है –

"उपोढरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम् ।
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया पुरोऽपि रागाद् गलितं न लक्षितम् ।।

राग भरे चन्द्र ने निशा के चंचल तारों वाले मुख को इस प्रकार पकड़ा कि समस्त तिमिरांशुक सामने फिसल जाने पर भी वह जान नहीं पाई ।

इस पद्य में शशि शब्द का पुल्लिङ्ग में नायक की भांति[271] तथा निशा का स्त्रीलिङ्ग में नायिका की तरह कथन हुआ है । शेष पद भी दो अर्थों की प्रतीति कराते हैं । एक का संबंध प्रस्तुतार्थ से है और दूसरे का अप्रस्तुतार्थ से । दोनों विशेष्यों शशि तथा निशा से एक–एक अर्थ (चन्द्र तथा रात्रि) निकलता है, उनमें श्लेष नहीं है । किन्तु विशेषण शब्द दो अर्थों के वाचक हैं जिनसे अप्रस्तुतार्थ के व्यवहार का समारोप होता है। विशेष्य से साक्षात् संबंध न रहने के कारण अप्रस्तुत अर्थ की प्रतीति विशेषणों की समानता से होती है । रूपक अलङ्कार में दोनों की प्रतीति अनिवार्य रूप से होती है । समासोक्ति में केवल प्रस्तुत का उपादान कर देने से अप्रस्तुत अर्थ की प्रतीति संभव नहीं है क्योंकि केवल शशि और निशा कहने से नायक और नायिका की प्रतीति नहीं हो जाती; इसके लिए विशेषणों की समानता आवश्यक है । यह विशेषण–साम्य अप्रस्तुत के धर्म कार्य या व्यवहार की प्रतीति कराता है, उसके रूप की नहीं । 'तथागृहीतम्' से नायक के व्यवहार की प्रतीति होती है उसके रूप की नहीं । इसीलिए उपर्युक्त सूत्र की वृत्ति में "...... व्यवहारसमारोपो न तु रूपसमारोपः' कहा गया है ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री विद्या चक्रवर्ती अपनी टीका में कहते हैं कि– यतो विशेषण साम्यादप्रस्तुतोऽर्थः प्रतीयते, अतो विशेष्यांशे संस्पर्शाभावाद् विशेष्यं प्रकृतार्थं न स्वेन रूपेण रूपवन्तं कर्तुमीष्टते । किन्तु विशेषणांशप्रतीतौ स्वव्यवहारं विशेषांशप्रतीतेः प्रकृतार्थव्यवहारे परिच्छेदकत्वेन समारोपयति ।

संजी०, पृ० १०६

इसका भाव यह है कि समासोक्ति में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनों का व्यवहार पदों की उभयार्थकता के कारण वाच्य रहने से एक पर दूसरे के व्यवहार का आरोप सम्भव है किन्तु विशेष्य वाले अंश में केवल प्रस्तुत का उपादान होता है तथा अप्रस्तुत का रूप ज्ञात नहीं होता, इसलिए उस पर आरोप संभव नहीं है। दो पदार्थों की प्रतीति जहां अनुयोगी तथा प्रतियोगी के रूप में होती है वहीं रूपसमारोप होगा किन्तु इसके विपरीत समासोक्ति में केवल अनुयोगी का उपादान होता है प्रतियोगी का निर्देश नहीं होता। विशेषणसाम्य से जब प्रस्तुत की प्रतीति होती है तो वह (प्रतियोगी) प्रस्तुत में व्यवहार विशिष्ट होने की प्रतीति करा देती है । यही बात स्पष्ट करने के लिए सर्वस्वकार ने वृत्ति में कहा है –

"विशेषणसाम्याद्धि ..... तद्रूपरूपितत्वात् ।

इसी दृष्टि से रुय्यक ने 'उपोढरागेण' इत्यादि श्लोक में शशि तथा निशा को नायक तथा नायिका के धर्म से विशिष्ट होने की प्रतीति बताई है । जब विशेषणों की समानता के कारण अप्रस्तुत की प्रतीति होती है तो वहां इस (प्रतीति) को लक्षणा द्वारा नहीं बल्कि आक्षेप से मानना चाहिए।

जयरथ कहते हैं कि 'उपोढरागेण' आदि पद्य में 'राग' शशि का धर्म न होकर केवल नायक का धर्म है । नायक के धर्म का शशि में अन्वय इसलिए सम्भव है कि वह धर्म अविना भाव संबंध से नायक में ही रहता है अतः 'उपोढरागेण' आदि से राग आदि के धर्मी नायक का आक्षेप किया जाएगा[२७२] विमर्शिनीकार का कहना है कि जहां दो वस्तुओं में अविनाभाव संबंध होता है वहां आक्षेप मानना चाहिए लक्षणा नहीं इसीलिए इन्होंने 'गौरनुबन्ध्यः' में लक्षणा नहीं मानी है क्योंकि जाति (गोत्व) एवं व्यक्ति में अविनाभाव संबंध होता है । समासोक्ति में भी इसी प्रकार नायक

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के व्यवहार से नायक का आक्षेप होता है, क्योंकि धर्मी (नायक) में धर्म (व्यवहार) अविनाभाव से रहता है –

"गौरनुबन्ध्यः इत्यत्र यथा कथं मे श्रुतिचोदितमनुबन्धनं स्यादिति जात्या व्यक्तिराक्षिप्यते । न तु लक्ष्यते .... एवं समासोक्तावपि नायक–व्यवहारास्तदविनाभावित्वादेव नायकत्वमाक्षिपति ।

वि०, पृ० ५–६

रुय्यक ने समासोक्ति के भेद बताते हुए लिखा है –

"तच्च विशेषणसाम्यं श्लिष्टतया साधारण्येनौपम्यगर्भत्वेन च भवत् त्रिधा भवति ।"

इस प्रकार शिलष्टविशेषण, अश्लिष्टविशेषण तथा औपम्यगर्भविशेषण के साम्य के आधार पर इस अलङ्कार के तीन भेद हैं । इनमें भी अश्लिष्टविशेषण दो प्रकार का हो सकता है – धर्मसमारोप एवं कार्यसमारोप से । औपम्यगर्भविशेषण भी दो प्रकार का होता है – उपमागर्भ समास या संकरसमास से ।

समासोक्ति के प्रथम भेद (श्लिष्टविशेषण) का उदाहरण – उपोढ़रागेण इत्यादि पद्य है । अश्लिष्ट विशेषण से समासोक्ति का उदाहरण है–

"तन्वी मनोरमा बाला लोलाक्षी पुष्पहासिनी ।
विकासमेति सुभग ! भवद्दर्शनमात्रतः ।।

हे सुभग ! तुम्हारे दर्शन मात्र से वह तन्वी, मनोरमा बाला और पुष्पहासिनी चंचलाक्षी खिल उठती है ।

इस उदाहरण में तन्वी आदि विशेषणों की समानता से, चंचलाक्षी शब्द से कथित नायिका में लता के व्यवहार की प्रतीति होती है क्योंकि विकास नामक धर्म का समारोप केवल लता में हो सकता है । उसके बिना अन्य विशेषणों के समान होने पर भी लता के व्यवहार की प्रतीति निश्चित रूप से न होती । प्रस्तुतार्थ (नायिका) में विकास को सादृश्य से समझा

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाहिए यही रुय्यक का मन्तव्य है।[२७३] इस उदाहरण से यह भी ज्ञातव्य है कि केवल व्यवहार या धर्म के ही समारोप से नहीं अपितु कार्य के समारोप से भी समासोक्ति होती है। उपर्युक्त पद्य में विकसित होना यानी खिलना एक क्रिया है। क्रिया के समारोप से सम्भव समासोक्ति प्रथम प्रकार की समासोक्ति की अपेक्षा कुछ कम स्पष्ट है।

उपमागर्भित विशेषणसाम्य से समासोक्ति का उदाहरण यह पद्य है–

"दन्तप्रभापुष्पचिता पाणिपल्लवशोभिनी।
केशपाशालिवृन्देन सुवेषा हरिणेक्षणा।

दन्तप्रभापुष्प से खचित, पाणिपल्लव से सुशोभित केशपाशभ्रमराली से यह मृगाक्षी सुवेषा है।

यहां नायिका में लता व्यवहार की प्रतीति होती है लेकिन सुवेशत्व केवल नायिका का धर्म होने के कारण सभी विशेषणों को नायिका पक्ष में अन्वित करने के लिए पहले उपमागर्भित समास 'दन्तप्रभा पुष्पाणीव' करना होता है तत्पश्चात् उन्हीं विशेषणों को लता पक्ष में अन्वित करने के लिए 'दन्तप्रभा सदृशैः पुष्पैः चिता' इस प्रकार एक दूसरा मध्यम पदलोपी समास करना पड़ता है तब जाकर विशेषणों की समानता बनती है और लता व्यवहार की प्रतीति होती है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थान्तरन्यास

पूर्व–इतिहास

इस अलङ्कार का सबसे पहले भामह के काव्यालङ्कार में विवेचन हुआ है। बाद के प्रायः सभी आचार्यों ने इसका निरूपण किया है।

भामह

इन्होंने उदित अर्थ के अनुगमन में किसी अन्य अर्थ के उपन्यसन को अर्थान्तरन्यास कहा है।[२७४] 'हि' शब्द के प्रयोग से भी हेत्वर्थ सिद्ध हो जाता है और अर्थान्तरन्यास स्पष्ट हो जाता है।[२७५] अन्य प्रकार से भी अर्थान्तरन्यास की सिद्धि हो सकती है।

भामह कृत लक्षण में सामान्य–विशेष भाव का कोई उल्लेख नहीं है। तीन प्रकार के हेतुओं (निष्पादक, समर्थक तथा ज्ञापक) में भी अन्तर नहीं किया गया है। भामह ने अर्थान्तरन्यास के दो उदाहरण दिये हैं जिनमें से प्रथम[२७६] पर काव्यलिङ्ग का लक्षण घटित होता है क्योंकि उसमें हेतु समर्थक न होकर निष्पादक है। द्वितीय[२७७] उदाहरण में 'हि' का प्रयोग है और वह अर्थान्तरन्यास का स्पष्ट उदाहरण है।

दण्डी

दण्डी ने अर्थान्तरन्यास के आठ भेदों का वर्णन करके इसके स्वरूप का विस्तार किया। इनका मन्तव्य है कि किसी वस्तु को प्रस्तुत करके उसके साधन में किसी अन्य वस्तु का न्यास[२७८] अर्थान्तरन्यास है। इस लक्षण पर भामह का स्पष्ट, प्रभाव दृष्टिगोचर होता है तथा इसमें भी काव्यलिंग आदि से पार्थक्य नहीं दिखाया गया है। भामह की तुलना में दण्डी के लक्षण में एक दोष यह भी है कि प्रयुक्त शब्दावली से यह ज्ञात होता है कि प्रस्तुत का उपन्यास पहले होगा एवं समर्थक का बाद में[२७९], परन्तु इसके विपरीत भी उदाहरण मिलते हैं। इनके द्वारा निरूपित अर्थान्तरन्यास के आठ भेद ये हैं –– विश्वव्यापी, विशेषस्थ, श्लेषाविद्ध विरोधवान्, अयुक्तकारी युक्तात्मा, युक्तायुक्त तथा अयुक्तयुक्त।[२८०]

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उद्भट–

उद्भट के अनुसार यदि समर्थक का कथन पहले हो और समर्थनीय बाद में, अथवा इसका विपर्यय हो और 'हि' शब्द के साथ हो अथवा उससे रहित हो तो इसे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार जानना चाहिए। इसमें प्रकृत अर्थ का समर्थन रहता है, इसलिए यह अप्रस्तुत प्रशंसा एवं दृष्टान्त से पृथक् अलङ्कार है।[२८१]

इन्होंने अर्थान्तरन्यास के चार भेदों का उल्लेख किया है––

(1) पहले समर्थक तथा बाद में समर्थ्य, 'हि' शब्द का प्रयोग।

(2) पहले समर्थक तथा बाद में समर्थ्य, 'हि' शब्द का अभाव।

(3) प्रथम समर्थ्य तथा पश्चात् समर्थक, 'हि' शब्द का प्रयोग।

(4) प्रथम समर्थ्य तथा पश्चात् समर्थक, 'हि' शब्द का अभाव।

वामन–

वामन के अनुसार कथित वाक्यार्थ की सिद्धि के लिए अन्य वाक्यार्थ की उपस्थिति अर्थान्तरन्यास है।[२८२]

यह लक्षण भामह तथा दण्डी के अनुसार ही है। काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति में अर्थान्तरन्यास का भेद निरूपण नहीं किया गया है। आचार्य वामन की विशेषता न्याय–शास्त्र के क्षेत्र से अलङ्कार का क्षेत्र पृथक् दिखलाने में है। उपर्युक्त लक्षण में 'वस्तु'[२८३] शब्द का प्रयोग अर्थान्तरन्यास और न्यायशास्त्र के 'हेतु' को स्पष्ट रूप से पृथक् प्रदर्शित करने के लिए हुआ है। जैसे – "कमल की सुगन्धि से यह निंश्चित है कि सरोवर यहां से दूर नहीं है[२८४]" – इस वाक्य में यद्यपि उक्तार्थ की सिद्धि के निमित्त वाक्यार्थ का उपन्यसन किया गया है, तथापि यह अर्थान्तरन्यास का उदाहरण नहीं है। जहां हेतुत्व की प्रतीति, व्याप्ति[२८५] के गूढ़ होने के कारण कठिनाई से होती है वहां अर्थान्तरन्यास है; परन्तु जहां (अनुमान के हेतु के समान) व्याप्ति स्पष्ट हो वहां यह अलङ्कार नहीं होगा।

रुद्रट

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुद्रट ने इस अलङ्कार के विवेचन में सर्वप्रथम सामान्य विशेष

भावना का समावेश किया है। इनके अनुसार जहां धर्मों (उपमय) के विषय अथवा सामान्य धर्म का कथन करके उसके समर्थन के लिए सधर्मो (उपमान) का कथन हो वहां अर्थान्तरन्यास का सौन्दर्य होगा।[२८६] इन्होंने साधर्म्य के दो तथा वैधर्म्य के दो भेदों का भी वर्णन किया है।

मम्मट

पूर्ववर्ती आलङ्कारिकों के विवेचन को आधार बनाते हुए आचार्य मम्मट ने अर्थान्तरन्यास अलङ्कार को व्यवस्थित स्वरूप दिया तथा इसके चार भेदों को मान्यता दी। इनका कहना है कि सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न के द्वारा समर्थन अर्थान्तरन्यास है। सामान्य का समर्थन विशेष करता है और विशेष का समर्थन सामान्य करता है। यह समर्थन साधर्म्य से भी हो सकता है और वैधर्म्य द्वारा भी।

इस प्रकार मम्मट ने अर्थान्तरन्यास के चार भेद किये हैं –

(1) सामान्य का विशेष द्वारा साधर्म्य से समर्थन।
(2) सामान्य का विशेष द्वारा वैधर्म्य से समर्थन।
(3) विशेष का सामान्य द्वारा साधर्म्य से समर्थन।
(4) विशेष का सामान्य द्वारा वैधर्म्य से समर्थन।

रुय्यकादि

अलङ्कारसर्वस्व में अर्थान्तरन्यास का लक्षण–सूत्र है –

सामान्यविशेषकार्यकारणभावाभ्यां निर्दिष्टप्रकृतसमर्थनमर्थान्तरन्यासः॥

इसकी वृत्ति है–

"निर्दिष्टस्याभिहितस्य समर्थनार्हस्य प्रकृतस्य समर्थकात्पूर्वं पश्चाद्वा निर्दिष्टस्य यत्समर्थनमुपादनं, न तत्पूर्वत्वेन प्रतीतिरनुमानरूपा, सोऽर्थान्तरन्यासः। तत्र सामान्यं विशेषस्य, विशेषो वा सामान्यस्य समर्थक इति द्वौ भेदौ। तथा कार्यं कारणस्य, कारणं वा कार्यस्य समर्थकमिति च द्वौ भेदौ। तत्र भेदचतुष्टये प्रत्येकं साधर्म्य वैधर्म्याभ्यां भेदद्वयेष्टौ भेदाः हिशब्दाभिधानानभिधानाभ्यां समर्थकपूर्वोपन्यासोत्तरोपन्यासाभ्यां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

च भेदान्तरसंभवेऽपि न तद्‌गणना सहृदयहृदयहारिणी वैचित्र्यस्याभावात्‌ । तस्माद्‌भेदाष्टकमेवेहोट्टङ्कितम्‌ ।

अर्थात्‌ किसी शब्दतः कथित प्रकृत अर्थ का जहां सामान्य विशेष भाव या कार्यकारण भाव संबंध के द्वारा समर्थन होता हो तो वहां अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होगा ।

अर्थान्तरन्यास अलङ्कार में प्रस्तुत अर्थ समर्थन योग्य होता है। उसका निर्देश या अभिधान या तो समर्थक वाक्य को पहले रखकर या बाद में रख कर होता है । इस प्रस्तुतताभिधान की, अनुमान की भांति अपूर्व रूप में प्रतीति नहीं होती है बल्कि इसका (प्रस्तुताभिधान का) समर्थन होता है । इस प्रकार अर्थान्तरन्यास के दो मुख्य भेद हुए –

(1) जहां सामान्य से विशेष का समर्थन होता है ।

(2) जहां विशेष से सामान्य का समर्थन होता है ।

इस प्रकार कार्य–कारण का अथवा कारण कार्य का समर्थक होता है, ये दो भेद हुए । इन चार भेदों में से प्रत्येक साधर्म्य और वैधर्म्य से दो भेद होते हैं, अतएव इस अलङ्कार के कुल आठ भेद हुए । 'हि' शब्द के प्रयोग या अप्रयोग से समर्थक वाक्य को पहले या बाद में रखने से और भी भेद हो सकते हैं किन्तु उनमें वैचित्र्य का अभाव होने से सहृदय हृदय को आनन्द की प्राप्ति नहीं होती इसलिए उनकी गणना नहीं करनी चाहिए । रुय्यक के टीकाकार भी उपर्युक्त मत का समर्थन करते हैं ।

सर्वस्वकार ने इस अलङ्कार के पांच उदाहरण दिये हैं जिनमें से पहला यह है –

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्‌ ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ।।

अनन्त रत्नों के उत्पादक जिस हिमालय का हिम, उसके सौन्दर्य का नायक नहीं बन पाया क्योंकि गुण समुदाय में एक दोष, चन्द्रमा की किरणों में कलंक की भांति निमज्जित (तिरोहित) हो जाता है ।

यहां सामान्य से विशेष का समर्थन साधर्म्य द्वारा किया गया है इसलिए अर्थान्तरन्यास के प्रथम भेद का उदाहरण है ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर्यायोक्त

पूर्व–इतिहास

पर्यायोक्त अत्यन्त प्राचीन अलङ्कार है, जिसका विवेचन सर्वप्रथम भामह ने किया। प्रायः सभी परवर्ती आलङ्कारिकों ने इसका निरूपण किया है।

भामह

इनके अनुसार किसी अर्थ का किसी अन्य (चमत्कारपूर्ण) प्रकार से कथन हो तो उसे पर्यायोक्त कहते हैं।[२८७] जैसे – रत्नाहरण नामक (अनुपलब्ध) काव्य में (शिशुपाल कृष्ण को भोजन में विष देकर मारना चाहता था) शिशुपाल के द्वारा दिये जाने वाले भोजन का निषेध करने के लिए श्री कृष्ण ने चमत्कार पूर्ण ढंग से कहा – "हम रास्ते में भोजन नहीं करते और घरों में भी वह भोजन नहीं करते जिसे वेदपाठी ब्राह्मणों ने न किया हो – यह जो कहा है वह केवल विषदान का परिहार करने के लिए है।"[२८८]

दण्डी

इनका कहना है कि इष्ट अर्थ को साक्षात् न कह कर उसकी सिद्धि के लिए प्रकारान्तर से कथन किया जाय तो वहां पर्यायोक्ति होगी।[२८९] उदाहरण अत्यंत सरल है –

दशत्यसौ परभृतः सहकारस्य मंजरीम्।
तमहं वारयिष्यामि युवाभ्यां स्वैरयास्यताम्॥

काव्यादर्श, २/२६६

यहां परभृतवारण के बहाने से सखी की, नायक–नायिका को एकान्त अवसर प्रदान करने की उक्ति पर्यायोक्त है

उद्भट

उद्भट ने भामह के लक्षण को ही यथावत् उद्धृत कर दिया है, किन्तु कारिका के उत्तरार्ध में उसकी वैज्ञानिक व्याख्या भी कर दी है। इनके अनुसार वाच्य वाचक वृत्तियों से भिन्न अन्य प्रकार से अर्थ की अवगति

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर्यायोक्त है ।[२६०] अभिप्राय यह है कि जहां अभीष्ट अर्थ का वाच्य–वाचक वृत्ति के अतिरिक्त व्यंजना वृत्ति द्वारा प्रतिपादन किया जाता है वहां पर्यायोक्त होगा । भामह एवं उद्भट दोनों के ग्रंथों में 'अन्येन प्रकारेण' का प्रयोग 'व्यंग्य अर्थ' के लिए ही किया गया है और ये दोनों आचार्य पर्यायोक्त को ध्वनि के निकट मान कर इसी में ध्वनि का अन्तर्भाव कर देते हैं, किन्तु आनन्दवर्धन[२६१] एवं अभिनव गुप्त इस कथन के प्रति असहमति प्रकट करते हुए ध्वनि में ही पर्यायोक्ति का अन्तर्भाव कर देते हैं । इनका कहना है कि यदि पर्यायोक्ति में ध्वनि या व्यंग्य की प्रधानता होगी तो ध्वनि में ही उसका अन्तर्भाव होगा न कि ध्वनि का पर्यायोक्ति में । ध्वनि तो एक महा विषय है इसलिए पर्यायोक्ति में इसका अन्तर्भाव नहीं हो सकता है। भामह ने पर्यायोक्त का जो उदाहरण दिया है उसमें व्यंग्यार्थ गौण है एवं वाच्यार्थ में ही चमत्कार दिखाया गया है इसलिए पर्यायोक्त में ध्वनि का अन्तर्भाव असंभव है ।

रुद्रट

रुद्रट ने पर्यायोक्त तथा पर्यायालङ्कार को एक ही शीर्षक 'पर्याय' के अन्तर्गत प्रतिपादित किया है । इनके अनुसार ऐसी वस्तु जो विवक्षित वस्तु का प्रतिपादन करने में समर्थ तो हो किन्तु उसके सदृश न हो, उसका कारण या कार्य न हो, तो उसका जो कथन होता है, उसे पर्याय नामक अलङ्कार कहते हैं ।[२६२] जैसे – "राजन ! आपकी नींद बन्दी बनाये गये शत्रुओं की बेड़ियों के तुमुल नाद से खुलती है । निद्रा से जगाने के लिए बंदीजनों (वैतालिकों) के गायन का जो स्वर होता था वह उसी में छिप गया है ।[२६३]

इनके टीकाकार नमिसाधु कहते हैं कि – "राजा की चापलूसी में यह कहा गया है । इस उक्ति का तात्पर्य बन्दियों की बेड़ियों के शब्द से नींद खुलना मात्र नहीं है, अपितु यह भी (तात्पर्य) है कि आपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की है और उनकी रानियों को बन्दी बना लिया है ।" इस प्रकार इस पद्य में समस्त रिपुओं को जीत लेना भी प्रकारान्तर से व्यक्त होता है ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुद्रट ने व्यंग्यार्थ में सादृश्य का व्यवच्छेद करने के साथ ही जो कार्य–कारण भाव का भी व्यवच्छेद कर दिया वह उपर्युक्त उदाहरण की वस्तुस्थिति से मेल नहीं खाता । इस उदाहरण में शत्रु जय कारण है, न कि उनके अथवा उनकी रानियों के बन्दी बनाये जाने का । इसलिए यहां कार्य कारण भाव का अभाव नहीं है ।

मम्मट

मम्मट का पर्यायोक्त लक्षण व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक है । इनके अनुसार वाच्य वाचक भाव के बिना (व्यंजना रूप व्यापार के द्वारा प्रकारान्तर से) वाच्यार्थ का कथन पर्यायोक्त है ।[२६४] इस लक्षण पर उद्भट का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है । वृत्ति में मम्मट ने उसी शब्दावली में अपनी कारिका का अर्थ किया है, जो उद्भट ने अपनी कारिका द्वारा स्पष्ट किया था । वह है वाच्यवाचकभावव्यतिरिक्तेनावगमनव्यापारेण यत्प्रतिपादनं तत्पययिण भङ्ग्यन्तरेण कथनात्पर्यायोक्तम् ।

अर्थात् वाच्य–वाचक भाव से भिन्न व्यङ्ग्य–व्यंजक भाव के द्वारा जो प्रतिपादन (किया जाता है), वही पर्याय अर्थात् भिन्न प्रकार से कथन होने के कारण पर्यायोक्त (कहलाता) है ।

रुय्यकादि

पर्यायोक्त अलङ्कार का लक्षण सूत्र है –

"गम्यस्यापि भंग्यन्तरेणाभिधानं[२६५] पर्यायोक्तम् ।"

अर्थात् गम्य अर्थ का भी प्रकारान्तर से अभिधान पर्यायोक्त अलङ्कार कहलाता है ।

वृत्ति में इस सूत्र को स्पष्ट करते हुए उन्होंने प्रश्न उठाया है कि जो प्रतीयमान है उसका अभिधान कैसे संभव है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि प्रतीयमान को दृष्टि में रख कर उसका प्रकारान्तर से अभिधान होता है । चूंकि एक ही अर्थ का एक ही प्रकार से एक ही समय में प्रतीयमान और वाच्य होना सम्भव नहीं है इसलिए कार्य आदि के द्वारा अभिधान होता है । इस अलङ्कार में कार्यादि भी प्रस्तुत होने के कारण वर्णनीय होते हैं इसीलिए यह अप्रस्तुत प्रशंसा से भिन्न है ।

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यहां सर्वस्वकार की उन पंक्तियों को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा –

"गम्यस्यैव सतः कथमभिधानमिति चेत् न । गम्यापेक्षया प्रकारान्तरेणाभिधानस्य सम्भवात् । न हि तस्यैव तदेव तयैव विच्छित्या गम्यत्वं वाच्यत्वं च सम्भवति अतः कार्यमुखद्वारेणाभिधानम् । कार्यादेरपि तत्र प्रस्तुतत्वेन वर्णनार्हत्वात् । अत एवाप्रस्तुतप्रशंसातो भेदः ।"

उन्होंने पर्यायोक्त अलङ्कार का यह उदाहरण दिया है–

"स्पृष्टास्ता नन्दने शच्याः केशसंभोगलालिताः ।
सावज्ञं पारिजातस्य मञ्जर्यो यस्य सैनिकैः ।।

शची के केश संभोग से ललित वे पारिजात मंजरियां, नन्दनवन में जिसके सैनिकों ने अवज्ञा पूर्वक छुई ।

यहां कार्य के द्वारा हृयग्रीव का स्वर्ग विजय बतलाया गया है । जयरथ अपनी टीका में 'कार्य मुखेन' की व्याख्या करते हुए लिखते हैं –

कार्यमुखेनेति । पारिजातमंजरी स्पर्शद्वारेणेत्यर्थः । स्वर्गविजय इति कारण रूपः ।

चूंकि अमरावती को जीते बिना, पारिजात की मंजरियों का स्पर्श अवज्ञा–पूर्वक कर पाना सम्भव नहीं है इसलिए पारिजात मंजरी के स्पर्श रूपी कार्य के वर्णन से प्रकारान्तर से स्वर्ग विजय का अभिधान होता है इसलिए यहां पर्यायोक्ति अलङ्कार है । समुद्रबन्ध का भी यही कहना है–

"सैनिककर्तृक सावज्ञपारिजातमञ्जरीस्पर्शनलक्षणस्य कार्यस्य स्वर्गविजयलक्षणकारणमन्तरेणानुपपत्तेः ।"

विवृत्ति, पृ० १३४

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्दर्भ सूची

१. ना०शा०, १६/४३
२. द्र० – काव्यादर्श, २/२६३
३. वही, २/३६३
४. वही, २/२३५
५. प्रतिवस्तुप्रभृतिरुपमाप्रपञ्चः।
६. रुद्रटः – काव्यालङ्कार, १/७
७. वही, ८/२–३
८. उत्प्रेक्षा प्रथमोल्लेखजीवितत्वेनजृम्भते। व०जी०, पृ० १६२
९. दे० – अ०स०, पृ० ३१–३२, ६०, ६७,१०२,२०८,२४६ आदि
१०. द्र० – प्रतापरुद्र०, पृ० २२८
११. द्र० – एकावली, पृ० १६४ पर तरल टीका।
१२. काव्यप्रकाश, पृ० ३४३
१३. काव्यप्रकाश, पृ० ३४३
१४. अलङ्कार–मीमांसा, पृ० २१७
१५. श्यामास्वंगं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं,
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हिभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति॥
१६. वस्तु प्रतिवस्तु भाव तथा बिम्ब प्रतिबिम्ब के निम्नलिखित लक्षण प्रमुख हैं –

"एकस्यैव धर्मस्य वारद्वयमुपादानं वस्तुप्रतिवस्तु भावः।
भिन्नयोरेकधर्मयोर्द्विरूपादानं बिम्बप्रतिबिम्ब भावः॥

एका०, पृ० २०५

एकस्यैव धर्मस्य सम्बन्धिभेदेन द्विरुपादानं वस्तुप्रतिवस्तु भावः। वस्तुतो भिन्नयोर्धर्मयोः परस्परसादृश्यादभिन्नतयाध्यवसितयोर्द्विरुपादानं बिम्बप्रतिबिम्ब भावः। चित्र–मीमांसा, पृ० २१
तथा –

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वस्तुतो भिन्नयोरप्युपमानोपमेयधर्मयोः परस्पर सादृश्यादभिन्नयोः पृथग्उपादानं बिम्बप्रतिबिम्ब भावः । कुवलयानन्द, पृ० ४

१७. संजीवनी के अनुसार उपमा के पूर्णा लुप्ता आदि भेदों का भी अन्तर्भाव इन्हीं तीन भेदों में किया जा सकता है
या यावती सम्भवत्युपमा पूर्णा लुप्ता च सप्रभेदप्रपञ्चा सा
सर्वैवास्मद्दर्शितिन वैचित्र्ययेण त्रिधा प्रथते । संजी०, पृ० ४१

१८. यथासम्भवं प्रकारत्रैविध्यमन्यैरप्रदर्शितं दर्शयति ..... ।
समुद्र०, पृ० २४

१६. एतच्च भेदत्रयं प्रायः सर्वेषामेव सादृश्याश्रयाणामलङ्काराणां जिवितभूतत्वेन सम्भवतीत्यग्रत एव तत्र तत्रोदाहरिष्यामः । वि०, पृ० ३४

२०. देखिए – अ०स०, पृ० ३३

२१. त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परिपासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमादिवः ।।
१,३१,१५
सहस्त्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन् क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ।।
५,३४,६

२२. किसी पौराणिक परम्परा का अनुसरण करते हुए राजशेखर ने काव्यमीमांसा में लिखा है कि औपम्य का प्रथम वर्णन औपकायन ने किया था ।

२३. गुणः सम्बन्धः आक्रिय द्योत्यते अनेनेति गुणाकृतिः इवादि शब्दः आश्रीयमाणो यस्यामिति गुणाकृतिसमाश्रया । षोडशोध्यायः, पृ० ३२२

२४. सम्पूर्णचन्द्रवदना नीलोत्पलदलेक्षणा ।
मत्तमातंगगमंना सम्प्राप्तेयं सखी मम ।।

२५. उपमाया बुधैरेते भेदा ज्ञेयाः समासतः ।
ये शेषा लक्षणोनोक्तास्ते ग्राह्याः काव्यलोकतः ।।
ना०शा१६, १६/५६

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२६. विरुद्धेनोपमानेन देश–कालक्रियादिभिः ।
उपमेयस्य यद् साम्यं गुणलेशेनसोपमा ।। भामह० २/३०

२७. न चिद्, नु तथा आ ये अन्य चार उपमा वाचक भी यास्क ने गिनाये हैं ।

२८. समानवस्तुन्यासेन प्रतिवस्तूपमोच्यते ।
यथेवानभिधानेऽपि गुणसाम्य–प्रतीतितः ।।
भामह, २/३४

२९. सामान्यगुणनिर्देशात् यमप्युदितं ननु ।
मालोपमादिः सर्वोऽपि न ज्यायान्, विस्तरो मुधा ।। भामह०, २/३८

३०. उपमा नाम सा यस्यामुपमानोपमेययोः ।
सत्ता चान्तरसामान्ययोगित्वेऽपि विवक्षितम् ।। ८/६
किंचिदादाय सारूप्यं लोकयात्रा प्रर्वतते ।। ८/७

३१. द्रष्टव्य – अग्निपुराण, अष्टम अध्याय

३२. यथा कथञ्चित् सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते ।
उपमा नाम सा तस्याः प्रपञ्चोयं प्रदर्श्यते ।। २/१४

३३. यत्किंचित् काव्यबन्धेषु सादृश्येनोपत्मीयते ।

३४. किंचिदादाय सारूप्यं लोकयात्रा प्रवतति ।

३५. यच्चेतोहारि साधर्म्यमुपमानोपमेययोः ।
मिथो विभिन्नकालादि शब्दयोरुपमा तु तत् ।।
काव्यालङ्कार–सार–संग्रह

३६. विरुद्धेनोपमानेन देशकालक्रियादिभिः ।
उपमेयस्य यत्साम्यं गुणलेशेन सोपमा ।। भामह०, २/३०

३७. वही, २/३१

३८. वही, २/३०

३९. कालः दिक्, जाति, गुणः, क्रिया सम्बन्धः । एवमन्यदप्यनुसर्तव्यम् ।
(इन्दुराज)

४०. अतश्चेतोहारीत्यनुवादः प्राप्तार्थत्वात् । (इन्दुराज)

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

४१. यथैवशब्दयोगेन सा श्रुत्यान्वयमर्हति । १/१८

४२. यथेवशब्दौ चात्रोपलक्षणम्। अव्ययान्तरादपि वा शब्दादेस्तेन रूपेणोपमानोपमेयभावस्यावगतेः – (इन्दुराज, पृ० १६)

४३. सदृशादिपदाश्लेषाद् अन्यथेत्युदिता द्विधा। १/१६

४४. तन्मूलं चोपमेति सैव विचार्यते। (वृत्ति)

४५. स्तुति–निंदा–तत्वाख्यानेषु, ४/२/७

४६. गुणबाहुल्यतश्चकल्पिता। ४/२/२

४७. पूर्वा तु लौकीकि। वृत्ति पृ० १८७

४८. अर्थस्यालङ्कारा वास्तवमौपम्यमतिशयः श्लेषः।
एषामेव विशेषा अन्ये तु भवन्ति निःशेषाः।।
काव्यालङ्कार, ७/६

४९. उभयोः समानमेकं गुणादिसिद्धम् भवेद्यथैकत्र।
अर्थेऽन्यत्र तथा तत्साध्यत इति सोपमा त्रेधा।। काव्यालङ्कार, ८/४

५०. यैर्याहशैस्संख्यैश्च विशेषणैर्युक्तमुपमेयम् तादृग्भिरेव तत्संख्येश्चोपमानमपि युक्तं यस्यां सा कल्पितोपमाख्या।। (नमिसाधु)

५१. अनुपममेतद् वस्त्वित्युपमानं तद् विशेषणं चासत्।
संभाव्य स यद्यर्थं या क्रियते सोपमोत्पाद्या।। ८/१५

५२. जयरथ ने इसका निम्नलिखित उदाहरण दिया है –
गौरः सुपीवराभोगो रण्डाया मुण्डितो भगः।
मेरोरर्कहयोल्लीढ–शष्प–हेम–तटायते।।
"यत्र तन्वङ्ग्या रूपवर्णने भगवर्णनमनौचित्यावहमित्युपमेयस्याप्रतीतत्वम्।"
विमर्शिनी, पृ० ८३

५३. यत्र तेनैव तस्य स्यादुपमानोपमेयता
असादृश्यविवक्षातस्तमित्याहुरनन्वयम्।। भामह०, ३/३५

५४. आत्मनैवाभवत् तुल्यमित्यसाधारणोपमा। – काव्यादर्श, २/३७

५५. काव्यालङ्कार–सार–संग्रह, ६/४

५६. उपमानोपमेयत्त्वे एकस्यैवैकवाक्यगे। अनन्वयः।
काव्यप्रकाश, १०/६१

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपमानान्तरसम्बन्धाभावोऽनन्वयः। (वृत्ति)

५७. सदृशान्तरस्यानन्वयः । – संजी०
सृदृशान्वयाभावात् । समुद्र०

५८. उपमानोपमेयत्वं यत्र पर्यायतो भवेत् ।
उपमेयोपमां नाम ब्रुवते तां तथोदिताम् ।। काव्यालङ्कार, ३/३७

५९. इत्यन्योन्योपमा सेयमन्योन्योत्कर्षशंसिनी । काव्यादर्श, २/१८

६०. अन्योन्यमेव यत्र स्यादुपमानोपमेयता ।
उपमेयोपमामाहुस्तां पक्षान्तरहानिगाम् ।। का० सा०, ५/१४

६१. क्रमेणोपमेयोपमा – काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति, ४/३/१५
एकस्यैवार्थस्योपमेयत्वमुपमानत्वं च क्रमेणोपमेयोपमा (वृत्ति)

६२. विपर्यास उपमेयोपमा तयोः ।। १०/६१ ।।
तयोः उपमानोपमेययोः परिवृत्तिः अर्थात् वाक्यद्वये इतरोपमानव्यवछेदपरा उपमेयेनोपमा इति उपमेयोपमा । (वृत्ति)

६३. एकेन धर्मेण एकप्रतियोगिके सादृश्ये निरूपिते परप्रतियोगिकस्य एकानुयोगिकस्यापि तेन धर्मेण सादृश्यस्यार्थतः सिद्धतया शब्देन पुनस्तदुक्तिः स्वनैरर्थक्यपरिहाराय तृतीयसदृशव्यवच्छेदमाक्षिपति ।
रसगंगाधर, पृ० १६५

६४. वस्तुविशेषं दृष्ट्वा प्रतिपत्ता स्मरति यत्र तत्सदृशम् ।
कालान्तरानुभूतं वस्त्वन्तरमित्यदः स्मरणम् ।।
का०लं०, ८/१०९

६५. सदृशादृष्ट चिन्तादेरनुभूतार्थविदनम् ।
स्मरणं प्रत्यभिज्ञानस्वप्नाद्यपि न तद्बहिः ।। स०क०भ०, ३/४२

६६. यथानुभवमर्थस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृतिः । स्मरणम् । का०प्र०, १०/१९९

६७. अविनाभावाभावान्नानुमानं । – वही, सूत्र १४ की वृत्ति ।

६८. प्रेयोलङ्कारस्य तु सादृश्यव्यतिरिक्तनिमित्तोत्थापिता स्मृतिर्विषयः । यथा 'अहो कोपेऽपि कान्तं मुखम्' इति । तत्रापि विभावाद्यागूरितत्वेन स्वशब्दमात्रप्रतिपाद्यत्वे यथा – 'अत्रानुगोदम्' इत्यादि ।
(वही सूत्र १४ की वृत्ति)

६९ नानाद्रव्यानुगमाद्वैयधिकरण्यं गुणाश्रयम् ।
CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूपनिर्वर्णनायुक्तं तद्रूपकमिति स्मृतम् ।। ना०शा० १६/५६
स्वविकल्पैर्विरचितं तुल्यावयवलक्षणम् ।
किंचित् सादृश्यसंपन्नं यद्रूपं रूपकं तु तत् ।। १६/५८

७०. पद्माननास्ताः कुमुदप्रकाशा, विकासनीलोत्पलचारुनेत्राः ।
वापीस्त्रियो हंसकुलैर्नदद्भिर्विरेजुरन्योन्यमिवाह्वयन्त्यः ।। १६/५६

७१. उपमानेन यत्तत्वमुपेयस्य रूप्यते ।
गुणानां समतां दृष्ट्वा रूपकं नाम तद्विदुः ।। भामहा०, २/२१

७२. रूपकादिरलङ्कारस्तस्यान्यैर्बहुधोदितः । वही, १/१३

७३. रूपकादिमलङ्कारं बाह्यमाचक्षते परे । वही, १/१४

७४. उपमेव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते ।। काव्यादर्श, २/३७

७५. न पर्यन्तो विकल्पानां रूपकोपमयोरतः ।
दिङ्मात्रं दर्शितं धीरैरनुक्तमनुमीयताम् ।। काव्या०, २/६६

७६. श्रुत्या सम्बन्धविरहाद्यत्पदेन पदान्तरम् ।
गुणवृत्तिप्रधानेन युज्यते रूपकं तु तत् ।। का०सा०कं०, २/११

७७. उपमानोपमेयस्य गुणासाम्यात् तत्वारोपो रूपकम् ।।
का०अ०सू०, ४/३/६

७८. तत्वस्याभेदस्यारोपणमारोपो रूपकम् । का०अ०सू० वृत्ति

७६. यत्र गुणानां साम्ये सत्युपमानोपमेययोरभिदा ।
अविवक्षितसामान्या कल्प्यत इति रूपकं प्रथमम् ।।
काव्यालङ्कार, ८/३८, पृ० १०६

८०. दे० काव्यालङ्कार, २/६१

८१. उत्प्रेक्षायामप्यभेदो विद्यते, ततस्तन्निरासार्थमाह – अविवक्षित सामान्येति । सदप्यत्र सामान्यं न विवक्ष्यते । सिंहों देवदत्त इति। उत्प्रेक्षायां तु छद्मलक्ष्मव्याजव्यपदेशादिभिः शब्दैरुपमानोपमेययोरभेदो भेदश्चविवक्षित इति । परमार्थतस्तूभयत्राभेद एवेति । (पृ० १०६–७)

८२. समासोपमाया रूपकत्वनिवृत्यर्थमाह – उपसर्जनोऽप्रधानमुपमेयं यत्र। यथा दुर्जन एव पन्नगो दुर्जनपन्नगः । समासोपमायां तूपमानमुपसर्जनाम्। यथा शशीव मुखम् यस्याः सा शशिमुखी (पृ० १०७)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

८३. मालोपमायामिवैकस्मिन् बहव आरोपिताः। का०प्र० सूत्र १०/६३ की वृत्ति।

८४. नियतारोपणोपायः स्यादारोपाः परस्य यः ।। १०/६५

८५. यद्यपि शब्दार्थालङ्कारोऽयमित्युक्तं वक्ष्यते च, तथापि प्रसिद्ध्यनुरोधादत्रोक्तः।

८६. एकदेशविवर्ति हीदमन्यैरभिधीयते। (वृत्ति)

८७. इनका ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाया है। जयरथ ने इनका मत उद्धृत किया है – 'लक्षणा परमार्थं यावता रूपकस्वरूपम्।"

अलङ्कारभाष्य, वि० पृ० ४४ पर उद्धृत।

८८. रुद्रट कृत काव्यालङ्कार के टीकाकार नमिसाधु ने इस उदाहरण को उदाहरणों की दिशा कहा है और अपनी ओर से यह पद्य प्रस्तुत किया है –

"आयुर्घृतं नदी पुण्यं भयं चौरः सुखं प्रिया।
वैरं द्यूतं गुरुर्ज्ञानं श्रेयो ब्राह्मणपूजनम् ।।

८९. दे० अ०र०, पृ० ३२–३३

९०. इहान्ये सादृश्यनिमित्त एवारोपो रूपकं न संबंधान्तरनिमित्तकोऽपि तेन सम्बन्धान्तरपूर्वक आरोपो वैचित्र्यमात्रं न त्वलङ्कारः कश्चिदिति मन्यन्ते यत्पठन्ति च उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकम् .... ।

अ०र०, पृ० ३२

शोभाकर ने पूर्व पक्ष के रूप में इसे उद्धृत करके इसका खण्डन किया है।

९१. दे० वि०, पृ० ४४

९२. अत्रेन्दुरूपे कारणे कार्यरूपायाः श्रद्धाया आरोपः।
ग्रन्थकृताप्यलङ्कारानुसारिण्यामत्र' श्रद्धाहेतुत्वाच्छ्रद्धे' त्यभिधाय विशेषेणैकस्मिन्ननेकवस्त्वारोपा – मालारूपकमित्यभिदधताय पक्षः कटाक्षितः।

९३. किंच सादृश्यमूलकं स्मरणं स्मरणालङ्कारः, न तु चिंतादिमूलमिति भवतेव पूर्वमुदितम्। तत्र यदि सादृश्यमूलकस्यापि कार्यकारणादिकयोः कल्पितस्य तादूप्यस्य रूपकत्वमस्युपेयते तदा सादृश्यमूलकस्य

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चिन्तादि मूलस्य स्मरणस्याप्यलङ्कारत्वमभ्युपेयताम् ।
रसग०, पृ० २६८

६४. एवमष्टौ भेदा रूपकालङ्कारस्य प्राचीनैः प्रदर्शिताः ।
चित्रमी०, पृ० १८१

६५. का०प्र० उद्योत (आनन्दाआश्रम सीरीज नं० ६६) पृ० ४६५

६६. दे० अलङ्कारों का स्वरूप विकास, पृ० २६५

६७. दे० अलङ्कारानुशीलन, पृ० १६३

६८. दे०, अलङ्कार–मीमांसा, पृ० २६२

६९. दे० अलङ्कारसर्वस्वम्, पृ० १३६

१००. दे० वही, पृ० १४०

१०१. अतो व्यवहारान्तमारोपः । न तु रूपकन्यायेन रूपसमारोपमात्रम् ।
संजीवनी, पृ० ५४

१०२. प्रकृतमप्रकृतव्यवहारविशिष्टतयावतिष्ठते । वि०, पृ० ५१

१०३. तस्य च सामानाधिकरण्यवैयधिकरण्याभ्यां द्वैविध्यम् ।
अ०स० संजी०, सू० १६ की वृत्ति, पृ० ५३

१०४. अत्र सौमित्रमैत्री प्रकृता आरोप्यमाणसमानाधिकरणातररूपत्वेन परिणता। आतरस्य मैत्रीरूपतया प्रकृते उपयोगात् । ...... इह तु द्वयोरप्यभिधानं तादात्म्यात्तु तयोः परिणमित्वम् ।
वही, वृत्ति, पृ० ५४

१०५. अत्र राज संघटने उपयनमुचितम् । तच्चात्र वचोरूपमिति वचसां व्यधिकरणोपायनरूपत्वेन परिणामः ।
अ०स०संजी०, सूत्र १६ की वृत्ति, पृ० ५५

१०६. प्रायेणात्रप्राचामाचार्याणामपि व्यामोहकलानुवृत्तिरिति रहस्यमुद्घाटितं रूपकपरिणामविषयविवेचनस्य । संजी०, पृ० ५५

१०७. उपमानेन तत्त्वं च भेदं च वदतः पुनः ।
ससन्देहं वचः स्तुत्यै ससन्देहं विदुर्यथा ।। ३/४३

१०८. किं पद्ममन्तर्भ्रान्तालि किन्तु लोलेक्षणं मुखम् ।
मम दोलायते चित्तमितीयं संशयोपमा ।। काव्यादर्श० २/२६

१०९. (क) उपमानेन तत्त्वं च भेदं च वदतः पुनः ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ससन्देहं वचः स्तुत्यै ससन्देहं विदुर्बुधाः ।। का०लं०सा०सं० ६/२
(ख) अलङ्कारान्तरच्छायां यत्कृत्वा धीषु बन्धनम् ।
असन्देहेपि सन्देहरूपं संदेहानाम तत् ।। वही, ६/३

११०. उपमानोपमेयसंशयः सन्देहः १/४, ३, ।।
उपमानोपमेययोरतिशयार्थं यः क्रियते संशयः ससन्देहः । (वृत्ति)

१११. अर्थविशेषं पश्चान्नावगच्छेदन्यमेव तत्सदृशम् ।
निःसन्देहं यस्मिन्प्रतिपत्ता भ्रान्तिमान्स इति ।। काव्या० ८/८७ ।।
यत्र प्रतिपत्तार्थविशेषमुपमेयलक्षणं पश्यंस्तत्सादृश्यादन्यमेवार्थं उपमानलक्षणं निःसंशयमवबुध्यते स इत्यमुना प्रकारेण भ्रान्तिमान्नामालङ्कारः
– काव्यालङ्कार टीका, पृ० ११७

११२. भ्रान्तिमानन्यसंवित्तुल्यदर्शने । का०प्र०, १०/१३२
तदिति अन्यत् अप्राकरणिकं निर्दिश्यते । तेन समानम् अर्थादिह प्राकरणिकं आश्रीयते । तस्य तथा विधस्य दृष्टौ सत्यां यत् अप्राकरणिकतया संवेदनम् स भ्रान्तिमान् ।। वही, वृत्ति

११३. एकस्यापि निमित्तवशादनेकधा ग्रहणमुल्लेखः । सूत्र १६

११४. यत्रैकं वस्त्वनेकधा गृह्यते स रूपबाहुल्योल्लेखनादुल्लेखः ।
अ०स०, पृ० १५८

११५. अलङ्कार –रत्नाकर, पृ० ५४

११६. जनपदे हि तपोवनत्वादयो धर्मा निसर्गत एव सन्ति इतरथा नोल्लेखः रूपकत्वप्राप्तेः । संजी०, पृ० २६

११७. देखिए, वि०पृ० १५८–५६

११८. प्रासंगिक प्राकृतश्लोक की संस्कृत छाया इस प्रकार है –
मार्गि ते लब्धे बलात्कारचुम्बिते आत्मना चोपनीते ।
एकस्मिन्नपि प्रियाधरेऽन्येऽन्ये भवन्ति रस भेदाः ।।
अ०स०, पृ० १६०

११६. प्रासंगिक श्लोक की संस्कृतछाया इस प्रकार है –
नारायण इति परिणतवयोभिः श्रीवल्लभ इति तरुणीभिः ।
बालाभिः पुनः कौतूहलेन एवमेव सत्यापितः ।।
CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अ०स०, पृ० १५६

१२०. रुय्यक ने २०वें सूत्र की वृत्ति में यही स्पष्ट किया है। 'गृहीतृ भेदाख्येन' विषयविभागेनानेकधात्वोट्टङ्कनात्तस्य च विच्छित्त्यन्तररूपत्वात् सर्वथा नास्यान्तर्भावः शक्यक्रिय इति निश्चयः।

१२१. अत्र केचिदाहुः तत्रान्येऽन्ये इति रसस्य भेदमात्रं निर्दिष्टं, न तु तत्तद्रूपोपादानेन। इह तु तपोवनादिरूपविशेषोपादानेनेत्यदोष इति। अन्ये तु रसभेदविषयभूतानां मार्गितलब्धत्वादीनामेकस्यैवाधररसस्य विशेषणतयोपसर्जनीकृतत्वात् तत्र विषयभेदो न स्फुट इत्याहुः।
समुद्रबन्ध, पृ० ४६, ४७

१२२. विमर्शिनी, पृ० १६१–६४

१२३. देखिए, वि०, पृ० १६४

१२४. देखिए, रसगंगाधर, पृ० ६७३

१२५. अपह्नुतिरभीष्टा च किंचिदन्तर्गतोपमा।
भूतार्थापह्नवादस्याः क्रियते चाभिधा यथा।। ३/२१।।

२२६. अपह्नुतिरपह्नुत्य किंचिदन्यार्थदर्शनम्।। काव्यादर्श, २/३०४

१२७. रविचन्द्रत्वमेवेन्दो निवर्त्यार्थन्तरात्मता।। २/३०७।।

२२८. अत्र औपम्यमूलभूतगुणातिशयसंस्थापिकेयमपह्नुतिः औपम्यचारुताया विकासयित्री इति तदङ्गभूता। (प्रभा २८१)

१२६. अपह्नुतिरभीष्टा च किंचिदन्तर्गतोपमा।
भूतार्थापह्नवेनास्या निबन्धः क्रियते बुधैः।। का०सा० सं० ५/३

१३०. समेन वस्तुनाऽन्यापलापोऽपह्नुतिः।। ४,३,५।।

१३१. समेन तुल्येन वस्तुना वाक्यार्थेनाऽन्यस्य वाक्यार्थस्य अपलापो निह्नवो यस्तत्वाध्यारोपणाय असावपह्नुतिः।। (वृत्ति)

१३२. वाक्यार्थयोस्तात्पर्यात् तादूरूप्यमिति न रूपकम् (वृत्ति)

१३३. अतिसाम्यादुपमेयं यस्यामसदेव कथ्यते सदपि।
उपमानेव सदिति च विज्ञेयापह्नुतिः सेयम्।।
काव्यालङ्कार, ८/५७

१३४. अतिसाम्यादुपमेयं यस्यामसदेव कथ्यते सदपि।
उपमानेव सदिति च विज्ञेयापह्नुतिः सेयम्।। काव्यालङ्कार, ८/५७

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१३५. उत्प्रेक्षायां व्याजादिशब्दैरुपमेयस्य सत्वमप्युच्यते, इह तु सर्वथैवापह्नव इति विशेषः । (नमिसाधु, पृ० १११)

१३६. प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सात्वपह्नुतिः ।
उपमेयमसत्यं कृत्वा उपमानं सत्यतया यत्स्थाप्यते सा त्वपह्नुतिः ।
काव्यप्रकाश १०/९६

१३७. वस्त्वन्तरप्रतीतिरिति । भ्रान्तिमत्सूत्रादनुवर्तत इति भावः ।
विवृत्ति, पृ० ४६

१३८. अतः प्रकृतनिह्नवाप्रकृतप्रतीतिमात्रं नापह्नुतिः । ....
सेयमलङ्कारमीमांसासूक्ष्मेक्षिका तेषामेव गोचरः यैरेवालङ्कारसर्वस्वं सुपरिशील्यविशेषाय काव्यप्रकाशहृदयं निर्ज्ञातम् । अतस्सर्वस्वसंजीवन्यामभिरतैः सम्प्रदायप्रकाशिन्यां भूयो भूयोऽभिरन्तव्यं सचेतोभिः ।
सं०प्र० (द्वितीय भाग), पृ० २८६

१३९. तस्य च त्रयी बन्धच्छया – अपह्नवपूर्वक आरोपः, आरोपपूर्वकोऽपह्नवः छलादि शब्दैरसत्यत्वप्रतिपादकैर्वापह्नवनिर्देशः । तस्य पूर्वोक्त भेद द्वये वाक्यभेदः तृतीय भेदे त्वेकवाक्यत्म् ।
अ०स० संजी० सूत्र २० की वृत्ति ।

१४०. अविवक्षितसामान्या, किंचित्वोपमया सह ।
अतद्गुणाक्रियायोगाद् उत्प्रेक्षातिशयान्विता ।। भामह०, २/९१

१४१. किंशुकव्यपदेशेन तरुमारुह्य सर्वतः ।
दग्धादग्धमरण्यान्याः पश्यतीव विभावसुः ।। वही, २/९२

१४२. अन्यथैव स्थिता वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य वा ।
अन्यथोत्प्रेक्ष्यते यत्र तामुत्प्रेक्षां विदुर्यथा ।। काव्यादर्श, २/२२१

१४३. देखिए – काव्यादर्श, २/२२२, २३

१४४. साम्यरूपाविवक्षायां वाच्येवाद्यात्मभिः पदैः ।
अतद्गुणक्रियायोगाद् उत्प्रेक्षाऽतिशयान्विता ।। का०स० ३/३/१

१४५. अतद्रूपस्यान्यथाध्यवासानमतिशयार्थमुत्प्रेक्षा । काव्यालङ्कार सूत्र, ४,३,९ अतद्रूपस्यातत्स्वभावस्य, अन्यथाऽतत्स्वभावतया, अध्यवसानमध्यवसायः न पुनरध्यारोपो लक्षणा वा । अतिशयार्थमिति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection, Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भ्रान्तिज्ञाननिवृत्यर्थम् सादृश्यादिमुत्प्रेक्षेति । एनां चेवादिशब्दाद्योता यन्ति। वही, पृ० २३६,४०

१४६. अतिसारूप्यादैक्यं विधाय सिद्धोपमानसद्भावम् ।
आरोप्यते च तस्मिन्नतद्गुणादीति सोत्प्रेक्षा ।। ८/३२ ।।

१४७. सान्येत्युपमेयगतं यस्यस्यां संभाव्यतेऽन्यदुपमेयम् ।
उपमानप्रतिबद्धापरोपमानस्य तत्वेन ।। ८/३४ ।।

१४८. यत्र विशिष्टे वस्तुनि सत्यसदारोप्यते समं तस्य ।
वस्त्वन्तरमुपपत्या सम्भाव्यं सापरोत्प्रेक्षा ।। ८/३६ ।।

१४६. यत्रातिशयभूते संभाव्येत क्रियाद्यसम्भाव्यम् ।
संभूतमतद्वति वा विज्ञेया सेयमुत्प्रेक्षा ।। ६/११ ।।
अन्यनिमित्तवशाद्यद् यथा भवेद् वस्तु तस्य तु तथात्वे ।
हेत्वन्तरमतदीयं यत्रारोप्यते सान्येयम् ।। ६/१४ ।।

१५०. सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् ।। १०/६२ ।।

१५१. (क) विमर्शिनीकार ने इस बात को निम्न श्लोक द्वारा स्पष्ट किया है –

अध्यवसायसाध्यत्वप्रतीतविषयमिष्यते ।
तत्सिद्धताप्रतीतौ तु भवेदतिशयोक्तिधीः ।। –वि०, पृ० ८३

(ख) समुद्रबन्ध ने उत्प्रेक्षा का अतिशयोक्ति से अन्तर बताते हुए लिखा है –

"विषयस्य निगरणस्य स्वरूपतः प्रतीतितो वा । तत्र स्वरूप निगरणमतिशयोक्तौ उत्प्रेक्षायां प्रतीतिनिगरणम् असत्यत्वेन विषयिणः प्रतीतो विषयस्य विषयितयावभासनात्मनोऽध्यवसायस्यानिष्पन्नकल्पत्वात् साध्यत्वम् ।"

१५२. प्रकृतस्येतद्भेदयोगेऽपि न वैचित्र्यमिति ते न गणिताः ।
अ०स०, पृ० ६६–७०

१५३. सारोपान्या तु यत्रोक्तौ विषयी विषयस्तथा । का०प्र०, पृ० ६१

१५४. विषयन्तः कृतेन्यस्मिन् सा स्यात् साध्यवसानिका । वही, पृ० ६१

१५५. उत्प्रेक्षा के वाचक मन्ये, शंके, ध्रुवं, प्रायः, नूनं और इव आदि शब्द हैं।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"मन्ये शंके ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः ।
उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः ।।

सर्वस्वकार के अनुसार इवादि की भांति, मन्ये शब्द उत्प्रेक्षा के अन्य हेतुओं के न रहने पर केवल वितर्क का वाचक है सम्भावना का नहीं । अ०स०, पृ० ८२

१५६. द्रष्टव्य – अ०स०, पृ० ७२–७३ तथा नि०का० ३८–४३

१५७. तस्याश्चाष्टचत्वारिंशद् भेदाः सम्भवन्ति। तदुक्तमलङ्कारसारिण्याम्– प्रतीयमानोत्प्रेक्षाभेदा अष्टचत्वारिंशत्।अ०स० (चौ०,) पृ० १६२–६३

१५८. वाच्योत्प्रेक्षा तुषण्णवति (?) सोद्दिष्टा। यथा जातिगुणक्रियाद्रव्याणत्र-मुत्प्रेक्ष्यत्वेन चतस्र उत्प्रेक्षाजातयः प्रतिस्वं चतुर्विंशतिधा प्रथन्ते। यथा जात्युत्प्रेक्षा तावद् भावाभावाभिमानरूपतया द्विधा। द्विधापि गुण-निमित्तका क्रियानिमित्तका च, इत्थं चतुर्धा। सा योपात्तनिमित्ता, अनुपात्तनिमित्ता चेत्यष्टधा। अष्टविधापि हेतुस्वरूपफलोत्प्रेक्षारूपतया त्रिविधेति चतुर्विंशति प्रकारा। अनेनैव नयेनान्यदप्युत्प्रेक्षात्रयं प्रत्येकं चतुर्विंशतिधा मन्तव्यम् तथा च प्रत्येकं त्रिस्कन्धिका एताः हेतुस्व-रूप फलोत्प्रेक्षणरूपतया स्कन्धत्रयमपि प्रतिस्वमष्टविधम्। .... प्रतीयमानायान्तु अनुपात्तनिमित्ताया अशेषं पातेऽष्टचत्वारिंशद्-धानिः उपात्त निमित्तायां च स्वरूपोत्प्रेक्षपाते षोडशकहानिः अतो द्वात्रिंशद् भेदा प्रतीयमाना मन्तव्या। संजी०, पृ० ७३–७४

१५९. द्रष्टव्य वि, पृ० ८२

१६०. द्रष्टव्य चित्रमी०, पृ० ६५–६६

१६१. अत्र लेपनवर्षण क्रिये तमोनभोगतत्वेनोत्प्रेक्ष्येते। उत्तरे त्वर्धे .... इत्यत्रोपमेव नोत्प्रेक्षा। अ०स०, पृ० ७१

१६२. द्रष्टव्य – रसगं० का उत्प्रेक्षा प्रकरण।

१६३. द्रष्टव्य, रसग०, पृ० ३६८

१६४. द्र० – चित्रमी०, पृ० ६३

१६५. निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रान्तगोचरम्।
मन्यतेऽतिशयोक्तिं तामलङ्कारतया यथा ।। भामह०, २/८१

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१६६. इत्येवमादिरुदिता गुणातिशययोगतः ।। वही, २/८४

१६७. सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलङ्कारोऽनयाविना ।। वही, २/८५

१६८. देखिए – वही, २/८२, २/८३

१६९. विवक्षा या विशेषस्य लोकसीमातिवर्तिनी ।
असावतिशयोक्तिः स्यादलङ्कारोत्तमा यथा ।। काव्यादर्श, २/२१४

१७०. अपरं च इयमतिशयोक्तिविशेषः धर्मविशेषः तस्यैव आधिक्येन वर्णनि भवति न तु धर्मिणः । प्रभा०, २२१

१७१. दे० काव्यादर्श, २/२१५

१७२. स्तनयोर्जघनस्यापि मध्ये मध्यं प्रिये तव ।
अस्ति नास्तीति सन्देहो न मेऽद्यापि निवर्तते ।। २/२१७ ।।

१७३. दे० काव्यादर्श०, २/२१८

१७४. निमित्ततो यत्तु लोकातिक्रान्तगोचरम् ।
मन्यन्तेऽतिशयोक्तिं तामलङ्कारतया बुधाः ।। का०सा० २/११

१७५. भेदेनान्यत्वमन्यत्र नानात्वं यत्र बध्यते ।
तथा सम्भाव्यमानार्थ निबन्धातिशयोक्तिगीः ।। का०सा० २/१२

१७६. कार्यकारणयोर्यत्र पौवापर्वविपर्ययात् ।
आशुभावं समालम्ब्य ब्रध्यते सोपि पूर्ववत् । का०सा०, २/१३१

१७७. सम्भाव्यधर्मतदुत्कर्षकल्पनातिशयोक्तिः ।। ४,३,१० ।।

१७८. निगीर्याध्यवसानं तु प्रकृतस्य परेण यत् ।
प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम् ।।
कार्य कारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः ।
विज्ञेयाऽतिशयोक्तिः सा ।। काव्यप्रकाश, १०/१००,१०१

१७९. उपमानेनान्तर्निगीर्णस्य उपमेयस्य यदध्यवसानं सैका । पृ० ४८३

१८०. यच्च तदेव अन्यत्वेन अध्यवसीयते साऽपरा ।

१८१. यद्यर्थस्यऽयदि शब्देन चेच्छब्देन वा उक्तोयत्कल्पनम् (अर्थात् असंभाविनोऽर्थस्य सा तृतीया ।)

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१८२. कारणस्य शीघ्रकारिता वक्तु कार्यस्य पूर्वमुक्तौ चतुर्थी ।

१८३. एवमध्यवसायस्य साध्यतायामुत्प्रेक्षां निर्णीय सिद्धत्वेऽतिशयोक्तिं लक्षयति । अ०स० (जानकी), पृ० ८०

१८४. अध्यवसाये त्रयं भवति – स्वरूपं विषयो विषयी च । विषयस्य हि विषयिणान्तर्नीतत्वेऽध्यवसायस्य स्वरूपोत्थानम् । तत्र साध्यत्वे स्वरूपप्राधान्यम् । विषयप्राधान्यमध्यवसायेनेव संभवति । अध्यवसित–प्राधान्ये चातिशयोक्तिः ।। वही वृत्ति, पृ० ८०–८१

१८५. विषयिणा विषयस्य निगरणमतिशयः । रसग०, पृ० ३०७

१८६. द्रष्टव्य० अलङ्कारसर्वस्वम् संजीविनीसहितम्, पृ० ८२

१८७. दे० अलङ्कारसर्वस्वम्, (डा० रे०प० द्विवेदी), पृ० २२६

१८८. द्रष्टव्य अलङ्कारसर्वस्वम् संजीविनीसहितम्, पृ० ८२

१८९. न्यूनस्यापि विशिष्टे न गुणसाम्यविवक्षया
तुल्यकार्यक्रियायोगादित्युक्ता तुल्ययोगिता ।। यथा ३/२७

१९०. शेषो हिमगिरिस्त्वं च महान्तो गुरवः स्थिताः ।
यदलङ्घितमर्यादां चलन्तीं विमृथ क्षितिम् ।। भामहा०, ३/२८

१९१. विवक्षितगुणोत्कृष्टैर्यत् समीकृत्य कस्यचित् ।
कीर्तनं स्तुतिनिन्दार्थं सा मता तुल्ययोगिता ।। काव्यादर्श २/३३०

१९२. दे० वही, २/३३१

१९३. संगतानि मृगाक्षीणां तडिद्विलसितानि च ।
क्षणं द्वयं न तिष्ठन्ति घनारब्धान्यपि स्वयम् ।। वही २/३३२

१९४. उपमानोमेयोक्तिशून्यैरप्रस्तुतैर्वचः ।
साम्याभिधायी प्रस्तावभाग्भिर्वा तुल्ययोगिता । का०सा०, ५/७

१९५. विशिष्टेन साम्यार्थमिककालक्रियायोगस्तुल्ययोगिता ।। ४, ३, २६

१९६. नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता ।। का० प्र० १०/१०४
नियतानां प्राकरणिकानामेवं अप्राकरणिकानामेव वा । (वृत्ति)

१९७. न चैतावताऽनयोः पृथग्लक्षणं युक्तम् । औपम्यगर्भत्वाख्यस्य सामान्यस्य द्वयोरप्यनुगमात् । एवं च समुच्चितोपमादेरपि पृथग्लक्षणं स्यात् । वि०, पृ० ९१

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१९८. तुल्ययोगिता दीपकं न पृथग्भावमर्हति । धर्मसकृद्वृत्तिमूलाया विच्छित्तेरविशेषात् । रसगंगाधर, पृ० ३२६–२७

१९९. नानाधिकरणार्थानां शब्दानां सम्प्रकीर्तितम् ।
एकवाक्येन संयोगात्तद्दीपकमिहोच्यते ।। नाट्यशास्त्र १६/६०

२००. आदिमध्यान्त विषयं त्रिधादीपकमिष्यते ।
एकस्यैव व्यवस्थत्वादिति तद्भिद्यते त्रिधा ।। काव्यालङ्कार, २/२५

२०१. अमूनि कुर्वतेऽन्वर्थामस्याख्यामर्थ दीपनात् ।
त्रिभिर्निदर्शनैश्चेदं त्रिधानिर्दिश्यते यथा ।। वही २/२६

२०२. जाति–क्रिया–गुण–द्रव्य–वाचिनैकत्र वर्तिना ।
सर्ववाक्योपकारश्चेत् तमाहुर्दीपकं यथा ।। काव्यादर्श, २/९७

२०३. आदिमध्यान्तविषयाः प्राधान्येतरयोगिनः ।
अन्तर्गतोपमा धर्मा यत्र तद्दीपकं विदुः ।। का०सा०सं० १/१४

२०४. अत एव च एकदेशवर्तिनामपि तेषां धर्माणां यौ द्वौ उपमानोपमेयभावेन अवस्थितौ वाक्यार्थौ बहवो वा तथा विधास्तदुद्दीपन हेतुत्वाद् दीपकता । वही, पृ० १५

२०५. अत्र च धर्माणामेकवारमुपनिबन्धो द्रष्टव्यः । असकृदुपादाने हि तेषां प्रतिवस्तूपमां वक्ष्यति । का०सा० सं०, पृ० १५

२०६. उपमानोपमेयवाक्येष्वेका क्रिया दीपकम् । ४,३,१८

२०७. तत्त्रैविध्यं, आदिमध्यान्तवाक्यवृत्तिभेदात् । ४,३,१९

२०८. देखिए का०अ० सू०वृ० पृ० ५५, ५६

२०९. यत्रैकमनेकेषां वाक्यार्थानां क्रियापदं भवति ।
तद्वत्कारकपदमपि तदेतदिति दीपकं द्विधा ।। काव्यां० ७/६४

२१०. अस्य च दीपकस्य प्रायोऽलङ्कारान्तरे समावेश इष्यते । तथा ह्याद्ययोरुदाहरणयोः कारणमालायाःसद्भावः । तृतीयचतुर्थपंचमेषु वास्तवसमुच्चयस्य । षष्ठे जातेः (काव्यालङ्कार, पृ० ८९)

२११. सकृद्वृत्तिस्तुधर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम् ।
सैवक्रियासुबह्वीषु कारकस्येति दीपकम् ।। काव्यप्रकाश १०/१०३
वृत्ति में भी स्पष्ट किया गया है – एकस्थस्यैव समस्तवाक्यदीपनात् दीपकम् । वही (वृत्ति)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२१२. मालादीपकमाद्यं चेद् यथोत्तरगुणावहम् । वही, १०/१०४

२१३. प्रस्तुताप्रस्तुतयोर्व्यस्तत्वे तुल्ययोगितां प्रतिपाद्य समस्तत्वे दीपकमुच्यते।
अ०स०, संजी०, पृ० ८७

२१४. औपम्पस्य गम्यत्व इत्याद्यनुवतति । प्राकरणिकाप्राकरणिकवर्गस्य मध्यादेकत्र निधिष्टस्समानो धर्मः प्रसंगेनान्यत्रोपकाराद्दीपनारव्याद्दीप-सादृश्येन दीपकाख्यालङ्कारोत्थापकः। तत्रेवाद्यप्रयोगादुपमानोपमेयभावो गम्यमानः। स च वास्तव एव ।

२१५. न चैतावता तयोः पृथग्लक्षणं युक्तम् । औपम्यगर्भत्वाख्यस्य सामान्यस्य द्वयोरप्यनुगमात् । एवं च समुच्चितोपमादेरपि पृथग्लक्षणं स्यात् । विमर्शिनी, पृ० ६१

२१६. तुल्ययोगिता दीपकं न पृथग्भावमर्हति । धर्मकृद्वृत्तिमूलाया विच्छित्तेरविशेषात् ।
रसगं०, पृ० ३२६–२७

२१७. देखिए – अलङ्कारसर्वस्व मीमांसा, पृ० ३२५

२१८. वस्तु स्तु वाक्यार्थत्वे आदिमध्यान्तवाक्यगतत्वेन धर्मस्य वृत्तवादिमध्यान्तदीपकाख्यास्त्रयोऽस्य भेदाः।
अ०स० सूत्र २४ की वृत्ति ।

२१९. डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी ने 'पल्लवरा' का अर्थ ' पल्लव के समान लाल' किया है, किन्तु श्री विद्या चक्रवर्ती ने इस की टीका में लिखा है 'पल्लवरागो माणिक्यविशेषः । यो गाढरागः ।' मुझे श्री चक्रवर्ती का मत जंचता है। गाय व सूर्य–प्रभा का रंग पल्लवराग माणिक्य के समान बताना ही कालिदास को अभीष्ट रहा होगा । इस लेखक को ज्योतिष के अध्ययन के साथ–साथ रत्नों की पहचान है और अनेक रंगों के माणिक्य देखने का सुयोग मिला है ।

२२०. छायान्तरेण तु मालादीपकं प्रस्तावान्तरे लक्षयिष्यते ।
अ०स०, सूत्र २४ की वृत्ति

२२१. उपमानसन्निधाने च साम्यवाच्यमुच्यते बुधैर्यत्र ।
उपमेयस्य च कविभिः सा प्रतिवस्तूपमा गदिता ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का०सा० सं० १/२२

२२२. प्रतिवस्तुप्रभृतिः उपमाप्रपञ्चः ।। ४, ३, । का० सू० वृ०
२२३. उपमेयस्योक्तौ समानवस्तुन्यासः प्रतिवस्तु ।।
वृत्ति– समानं वस्तु वाक्यार्थः, तस्य न्यासः समानवस्तुन्यासः उपमेयस्यार्थाद् वाक्यार्थस्योक्तौ सत्यामिति । अत्र द्वौ वाक्यार्थौ, एको वाक्यार्थोपमायामिति भेदः ।
२२४. देवीभावं गमिता परिवारपदं कथं भजत्वेषा ।
न खलु परिभागयोग्यं दैवतरूपांकितं रत्नम् ।।
का०सू०वृ०, पृ० २२३
२२५. सूत्र – प्रतिवस्तूपमा तु सा, सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थितिः । का० प्र० १०/१०१, १०२
२२६. वृत्ति – साधारणो धर्मः उपमेयवाक्ये उपमानवाक्ये च कथितपदस्य दुष्टतयाभिहितत्वात् शब्दभेदेन यदुपादीयते सा वस्तुनो वाक्यार्थस्योपमानत्वात् प्रतिवस्तूपमा । यथा – देवीभावं गमिता .... ।
२२७. वस्तु शब्दस्य वाक्यार्थवाचित्वे प्रतिवाक्यार्थमुपमा साम्यमित्यन्वर्थाश्रयणात्।
अ०स०, पृ० ६४–६५
२२८. अत्र चतुरत्वं साधारणो धर्म उपमानवाक्ये, उपमेयवाक्ये तु निपुण पदेन निर्दिष्टः । अ०स०, पृ० ६५ पर वृत्ति ।
२२९. इष्टार्थस्य विस्पष्ट प्रतिबिम्बनिदर्शनम् ।
यथेवादि पदैः शून्यं बुधैर्दृष्टान्त उच्यते । काव्यालङ्कारसारसंग्रह, ६/८
२३०. अर्थविशेषः पूर्वं यादृङ्न्यस्तो विवक्षितेतरयोः ।
तादृश्मन्यं न्यस्येद्यत्र पुनः सोऽत्र दृष्टान्तः ।।
काव्यालङ्कार, ८/६४
२३१. दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम् । काव्याप्रकाश, १०/१०२
एतेषां साधारणधर्मादीनाम् । दृष्टोऽन्तो निश्चयी यत्र स दृष्टान्तः ।
वही, वृत्ति, पृ० ४८६
२३२. समुद्रबन्ध ने इस प्रसंग की व्याख्या करते हुए लिखा है –
“अयमपीति न केवलं प्रतिवस्तूपमेत्यपेरर्थः ।
विवृत्ति, पृ० ७८

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२३३. क्रिययैव विशिष्टस्य तदर्थस्योपदर्शनात् ।
ज्ञेया निदर्शना नाम यथेववतिभिर्विना ।। भामहा० ३/३३

२३४. अर्थान्तरप्रवृत्तेन किंचित् तत् सदृशफलम् ।
सदसद्वा निदर्श्येत यदि तत्स्यान्निदर्शनम् ।। काव्यादर्श, २/३४८

२३५. उद्भट के अतिरिक्त सब आचार्यों ने 'निदर्शना' नाम से इस अलङ्कार का विवेचन किया है । मद्रास–प्रति में का०सा० में भी निदर्शना लिखा है, परन्तु प्रतिहारेन्दुराज के प्रामाण्य पर उद्भट के पाठ को प्रायः 'निदर्शना' ही माना जाता है ।
"अभवन्वस्तुसम्बन्धो भवन्वा यत्र कल्पयेत् ।
उपमानोपमेयत्वं कथ्यते सा निदर्शना ।। का०सा०, ५/१०

२३६. क्रिययैव स्वतदर्थान्वयख्यापनं निदर्शनम् । का०सू०वृ०, सूत्र ४,३,२०

२३७. क्रिययैव शुद्धया स्वस्यात्मनस्तदर्थस्य चान्वयस्थ संबंधस्य ख्यापनं संतुलितहेतु दृष्टान्तविभागदर्शनान्निदर्शनम् ।
वही वृत्ति

२३८. अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः ।। का०प्र०, १०/९७

२३९. स्वस्वहेत्वन्वयस्योक्तिः क्रिययैव स चापरा ।। वही, १०/९८

२४०. निदर्शनाया गम्यमानप्रतिबिम्बत्वं सामान्यलक्षणम् ।
विवृत्ति, पृ० ७६

२४१. प्रतिबिम्बप्रस्तावेनास्या लक्षणम् ।तत्र क्वचित्संभवन्नेव वस्तुसंबंधः स्वसामर्थ्याद्बिम्बप्रतिबिम्बभावं कल्पयति । क्वचित्पुनरन्वयबाधादसंभवता वस्तु संबंधेन प्रतिबिम्बनमाक्षिप्यते । वही, वृत्तिः ।

२४२. अत्र च स्मरचापसम्बन्धिन्या लीलाया वस्त्वन्तरभूतेनेन्दुना स्पर्शनमसंभवल्लीलासदृशी लीलामवगमयतीत्यदूर–विप्रकर्षात्प्रतिबिम्बकल्पनमुक्तम् । अ०स० (जानकी), पृ० ९३

२४३. द्र० अ०स० पृ० १००

२४४. द्र० – वि., पृ० १०१

२४५. वह उदाहरण पद्य इस प्रकार है –
वियोगे गौडनारीणां यो गण्डतलपाण्डिमा ।
अलक्ष्यत स खर्जूरीमञ्जरीगर्भरेणुषु ।।
अ०स०, पृ० १००

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२४६. उपमानवतोऽर्थस्य यद्विशेषनिदर्शनम् ।
व्यतिरेके तमिच्छन्ति विशेषापादनाद्यथा ।। भामहा० २/७५

२४७. सितासिते पक्ष्मवती नेत्रे ते ताम्रराजिनी ।
एकान्तशुभ्रश्यामे तु पुण्डरीकासितोत्पले । वही, २/७६

२४८. शब्दोपात्ते प्रतीते वा सादृश्ये वस्तुनोर्द्वयोः ।
तत्र यद्भेद कथनं व्यतिरेकः स कथ्यते ।। काव्यादर्श, २/१८०

२४९. विशेषापादनं यत्स्यादुपमानोपमेययोः ।
निमित्तादृष्टिदृष्टिभ्यां व्यतिरेको द्विधा तु सः ।।
काव्यालङ्कारसारसंग्रह, २–६

२५०. यो वैधर्म्येण दृष्टान्तो यथेवादिसमन्वितः ।
व्यतिरेकोऽत्र सोऽपीष्टी विशेषापादानान्वयात् ।। वही, २/७ ।।

२५१. उपमेयस्य गुणातिरेकित्वं व्यतिरेकः । का०सू० वृ० ४/३/२२

२५२. उपमेयस्य गुणातिरेकित्वं, गुणाधिक्यं यद्, अर्थाद् उपमानात् स व्यतिरेकः । वही, वृत्ति

२५३. यो गुण उपमेये स्यात् तत्प्रतिपन्थी च दोष उपमाने ।
व्यस्तसमस्तन्यस्तौ तौ व्यतिरेकं त्रिधा कुरुतः ।।
का० सा० सं० ७/८६

१५४. यो गुण उपमाने स्यात् तत्प्रतिपक्षी च दोष उपमेये ।
भवतो यत्र समस्तो स व्यतिरेकोऽयमन्यस्तु ।। ७/८७

२५५. उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः । का० प्र० १०/१०५
अन्यस्योपमेयस्य व्यतिरेक आधिक्यम् । वही, वृत्ति ।

२५६. विपर्ययों मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ।
–पातञ्जल योगदर्शन

२५७. 'विपर्यय शब्दात् मिथ्याज्ञानभ्रमो मा भूदित्याह विपर्ययो न्यूनगुणत्वमिति।" अ०स० संजी., पृ० ८६

२५८. उद्भट, वामन रुद्रट आदि पूर्ववर्ती आलङ्कारिकों के लक्षण पीछे दिये जा चुके हैं ।

२५९. यौवनस्य न्यूनगुणत्वमितिं । अत्राप्यस्थैयपिक्षया चन्द्राद् यौवनस्याधिक्यमिति, लक्षणे विपर्ययग्रहणं न कर्तव्यमित्यन्ते ।
समुद्र० पृ० ८५

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२६०. का०प्र० (अनन्तशयन संस्करण), पृ० ३१७

२६१. यत्रोक्ते गम्यतेऽन्योर्थस्तत्समानविशेषणः ।
सा समासोक्तिरुद्दिष्टा संक्षिप्तार्थतया यथा ।। भामहा०, २/७६

२६२. स्कन्धवानृजुरव्यालः स्थिरोऽनेकमहाफलः ।
जातस्तरुरयञ्चोच्चैः पातितश्च नभस्वता ।। वही, २/८०

२६३. वस्तु किञ्चिदभिप्रेत्य तत्तुल्यस्यान्यवस्तुनः ।
उक्तिः संक्षेपरूपत्वात् सा समासोक्तिरिष्यते ।। काव्यादर्श, २/२०५

२६४. प्रकृतार्थेन वाक्येन तत्समानैर्विशेषणैः ।
अप्रस्तुतार्थकथनं समासोक्तिरुदाहृता ।। का०सा० सं० २/१०

२६५. अनुक्ता समासोक्तिः । का०सू० वृ० ४/३/३
उपमेयस्यानुक्तो समानवस्तुन्यासः समासोक्तिः, संक्षेपवचनात् समासोक्तिरित्याख्या । (वही, वृत्ति)

२६६. श्लाघ्या ध्वस्ताध्वगग्लानेः करीरस्य मरौ स्थितः ।
धिङ् मेरौ कल्पवृक्षाणामत्युत्पन्नार्थिनां श्रियः ।।

२६७. सकलसमानविशेषणमेकं यत्राभिधीयमानं सत् ।
उपमानमेव गमयेदुपमेयं सा समासोक्तिः ।। काव्यालङ्कार, ८/६७

२६८. फलमविकलमलघीयो लघुपरिणति जायतेऽस्य सुस्वादु ।
प्रीणितसकलप्रणयिप्रणतस्य सदुन्नतेः सुतरोः ।।

काव्यालङ्कार, ८/६८

२६९. अधुना विशेषणविच्छित्याश्रयेणालङ्कार द्वयमुच्यते ।

अ०स०सू० ३१ के पहले की वृत्ति ।

२७०. तत्र च निमित्तं विशेषणसाम्यम् । विशेष्यस्यापि साम्ये श्लेष प्राप्तेः। विशेषणसाम्यवशाद्धि प्रतीयमानमप्रस्तुतं प्रस्तुतावच्छेदकत्वेन प्रतीयते । अवच्छेदकत्वाच्च व्यवहारसमारोपो न तु रूपसमारोपः । रूपसमारोपे त्ववच्छादितत्वेन प्रकृतस्य तद्रूपरूपित्वाद्रूपकमेव ।

अ०स० संजी० (जानकी), पृ० १०३.४

२७१. रागः सन्ध्यारुणिमा कामश्च । तारकेत्यतो नक्षत्रदृगन्तर्मण्डलयोः प्रतिपत्तिः । मुखं प्रारम्भो वक्त्रं च । तिमिरमंशुकमिव तिमिरसदृशमंशुकं च । संजी०, पृ० ११०

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२७२. द्रष्टव्य –

नह्यन्यधर्मिसम्बन्धिनो धर्मा .... न पुनराच्छाद्यते ।

वि०, पृ० १०८

२७३. अत्र तन्वीत्यादि विशेषणसाम्याल्लोलाक्ष्या लताव्यवहारप्रतीतिः । अत्र च लतैकगामिविकासाख्यधर्मसमारोपः कारणम् । अन्यथा विशेषणसाम्यमात्रेण नियतस्य लताव्यवहारस्याप्रतीते । विकासश्च प्रकृते उपचरितो ज्ञेयः। एवं कार्यसमारोपेऽपि ज्ञेया । इयं च समासोक्तिः पूवपिक्षया अस्पष्टा।

अ०स०सूत्र ३१ की वृत्ति ।

२७४. उपन्यसनमन्यस्य यदर्थस्योदितादृते ।
ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासः पूर्वार्थानुगतो यथा ।। भामहा०, २/७१

२७५. हि शब्देनापि हेत्वर्थप्रथनादुक्तसिद्धये ।
अयमर्थान्तरन्यासः सुतरां व्यज्यते यथा ।। वही, २/७३

२७६. परानीकानि सीमानि विविक्षोर्न चते व्यथा ।
साधु वासाधु वागामि पुंसामात्यैव शंसति ।। वही, २/७२

२७७. वहन्ति गिरयो मेघानभ्युपेतान् गुरूनपि ।
गरीयानेव हि गुरुन् बिभर्ति प्रणयागतान् ।। वही, २/७४

२७८. ज्ञेयः सो अर्थान्तरन्यासः सुतरां प्रस्तुत्य किञ्चित् ।
तत्साधन समर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः ।। काव्यादर्श २/१६६

२७९. अत्र प्रस्तुतस्येति क्वाप्रत्ययेन प्रथमतःप्रस्तुतस्योपन्यासः पश्चात् समर्थकस्याप्रस्तुतस्येति प्राप्तम् । परं प्रायिकमेतत् । वैपरीत्येनापि दर्शनात् । (प्रभा १६६)

२८०. विश्वव्यापी विशेषस्थ श्लेषाविद्धोविरोधवान् ।
अयुक्तकारी युक्तात्या युक्तायुक्तो विपयर्यः ।। वही २/१७० ।।

२८१. समर्थकस्य पूर्वं यद् वचनोऽन्यस्य च पृष्ठतः ।
विपर्ययेण वा यत् स्याद्विधशब्दोक्त्याऽन्यथापि वा ।।
ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासः प्रकृतार्थसमर्थनात् ।
अप्रस्तुतप्रशंसाया दृष्टान्ताच्च पृथक् स्थितिः ।। काव्यांलकारसारसंग्रह, २/४,५

२८२. उक्तसिद्ध्यै वस्तुनोऽर्थान्तरस्यैव न्यसनमर्थान्तरन्यासः । ४,३,२१

२८३. वस्तुग्रहणादर्थस्य हेतोर्न्यसनान्नार्थान्तरन्यासः ।

का०सू०वृ०, पृ० २५६ (वृत्ति)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२८४. इह नातिदूरगोचरमस्ति सरः कमलसौगन्ध्यात् । वही, पृ० २५६

२८५. अर्थान्तरस्येवेति वचनं, यत्र हेतुर्व्याप्ति गूढ़त्वात् कंथचित् प्रतीयते तत्र यथा स्यात्। यद्यत् कृतकं तत्तदनित्यमित्येवं प्रायेषु मा भूदिति। (वही वृत्ति), पृ० २५६

२८६. धर्मिणमर्थविशेषं सामान्यं वाभिधाय तत्सिद्ध्यै।
यत्र सधर्मिकमितरं न्यस्येत् सोऽर्थान्तरन्यासः।। काव्यालङ्कार,८/७६

२८७. पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते।
उवाच रत्नाहरणे चैद्यं शाङर्गधनुर्यथा।। भामहा० ३/८

२८८. गृहेष्वध्वसु वा नान्नं भुञ्महे यदधीतिनः।
न भुजते द्विजास्तच्च रसदाननिवृत्तये।। वही ३/६

२८९. इष्टमर्थमनाख्याय साक्षात्तस्यैव सिद्धये।
यत्प्रकारान्तराख्यानं पर्यायोक्तं तदिष्यते।। काव्यादर्श, २/२६५

२९०. पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधियते।
वाच्यवाचकवृत्तिभ्यां शून्येनावगमात्मना।। – काव्यालङ्कार

२९१. पर्यायोक्तेऽपि यदि प्राधान्ये व्यंग्यत्वं तद्भवतु नाम तस्य ध्वनावन्तर्भावः। न तु ध्वनेस्तत्रान्तर्भावस्तस्य महाविषयत्वेन, अङ्गित्वेन च प्रतिपादयिष्यमाणत्वात्। न पुनः पर्यायोक्ते भामहोदाहृतसदृशे व्यंग्यस्यैव प्राधन्यम् वाच्यस्य तत्रोपसर्जनीभावे-नाविवक्षितत्वात्।। ध्वन्यालोक, १/१३ की वृत्ति, पृ० ५-४६.

२९२. वस्तु विवक्षितवस्तुप्रतिपादनशक्तमसदृशं तस्य।
यदजनकमजन्यं वा तत्कथनं यत् स पर्यायः।। काव्यालङ्कार ७/४२

२९३. राजन्! जहासि निद्रां रिपुबन्दीनिबद्धनिगशब्देन।
तेनैव यदन्तरितः स कलकलौ बन्दिवृन्दस्य।।
काव्यालङ्कार, ७/४३

२९४. पर्यायोक्तं विना वाच्यवाचकत्वेन यद्वचः। का० प्र० १०/११५

२९५. इसका पाठान्तर है – "पर्यायान्तरेणाभिधानं'। इससे अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पंचम अध्याय

(क) विरोध–मूलक अलङ्कार

सादृश्य वर्ग के पश्चात् दूसरा विभाग विरोधमूलक अलङ्कारों का है।

प्रतापरुद्रयशोभूषण में विद्यानाथ ने अतद्‌गुण, विशेष तथा भाविक को विरोध गर्भ की श्रेणी में रखा है तथा प्रो० चन्दोकर ने प्रथम दो तथा परिसंख्या, उत्तर (द्वितीय) और अतिशयोक्ति (द्वितीय तथा चतुर्थ भेद) को इस श्रेणी में माना है। रुय्यक ने यद्यपि विरोध गर्भ अलङ्कारों के साथ ही सम अलङ्कार का विवेचन किया है, किन्तु इसे इस वर्ग में रखना उचित नहीं है। इस प्रसंग में समुद्रबन्ध की टीका द्रष्टव्य है–

विरोध गर्भालङ्कारमध्ये अतादृशमपि समं विषमप्रसंगेन लक्षयित्वा पुनर्विरोधमूलत्वेन प्रकरणसंगतम् विचित्रम् लक्षयति।

समुद्रबन्ध, पृ० १४६

विरोध गर्भ अलङ्कार वर्ग में भाविक और विशेष अलङ्कारों को नहीं रखा जा सकता है। विद्यानाथ द्वारा किया गया वर्गीकरण इस अंश में दोषपूर्ण है। अतद्‌गुण अलङ्कार को विरोधगर्भ अलङ्कारों में रखना सर्वथा उचित है, क्योंकि विभावना, विषम तथा विशेषोक्ति के साथ इसकी पर्याप्त समानता है। जयरथ[1] के अनुसार अलङ्कारसारकारं ने इसका (अतद्‌गुण) विशेषोक्ति में ही अन्तर्भाव करना समीचीन बताया था। विरोधमूलक अलङ्कारों की तालिका नीचे दी जा रही है –

विरोध गर्भ

विरोध | विभावना | विशेषोक्ति | अतिशयोक्ति (द्वितीय) | असंगति | विषम | विचित्र | अधिक | कार्यकारण भावमूल

कार्यकारण भावमूल: अन्योन्य | विशेष | व्याघात (दो प्रकार का)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विरोध

पूर्व-इतिहास -

भामह ने सर्वप्रथम इसका निरूपण इस प्रकार किया है -

"गुणस्य वा क्रियाया वा विरोधान्यक्रियाभिधा ।
या विशेषाभिधानाय विरोधं तं विदुर्बुधाः ।।

भामह१०३/२५

अर्थात् जहां विशेषता बतलाने के लिए किसी क्रिया का उसके गुण अथवा क्रिया के विरुद्ध वर्णन किया जाय वहाँ विरोधालङ्कार होगा ।

दण्डी[२]

इनके अनुसार प्रस्तुत के उत्कर्ष को प्रदर्शित करने के लिए परस्पर विरुद्ध पदार्थों के संबंध को प्रतिपादित करने में विरोध अलङ्कार होता है।

उद्भट[३]

इन्होंने भामह के लक्षण को ही यत्किञ्चित शाब्दिक परिवर्तन करके अपना लिया है । इन्होंने अपनी ओर से जो उदाहरण दिया है उसमें विरोधालङ्कार नहीं बल्कि विषमालङ्कार है-

"भवत्याः क्वायमाकारः क्वेदं तपसि पाटवम् ।"

आपकी आकृति कहाँ और कहाँ यह तपस्या में तत्परता । कालिदास की **"तपः क्व वत्से ! क्व च तावकं वपुः"** - यह उक्ति ही उपर्युक्त श्लोकार्ध में दूसरे शब्दों में ढाली गई है ।

प्राचीन आचार्य सभी प्रकार की असंगतियों को विरोध मानते हैं । उनके सम्मुख विरोध, असंगति, विषम आदि के स्वरूप स्पष्ट नहीं थे - उन सबमें विरोध तत्व उभरा हुआ था ।

वामन[४]

इनका विरोध परवर्ती आलङ्कारिकों का असंगति अलङ्कार है, यह उनके उदाहरणों से ज्ञात होता है । लक्षण अत्यन्त सरल है-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"विरुद्धाभासत्वं विरोधः । (४, ३, १२) का० सू० वृ०

रुद्रट

इन्होंने विरोधालङ्कार का दो अलग-अलग प्रकरणों में विवेचन किया। एक अतिशय प्रकरण में और दूसरा श्लेष प्रकरण में। श्लेष प्रकरण के विरोध को उन्होंने ठीक उसी प्रकार विरोध श्लेष नाम दिया है जिस प्रकार व्याजस्तुति को व्याजश्लेष। इस प्रकरण में इन्होंने विरोधाभास नामक एक स्वतंत्र अलङ्कार भी माना है [५]। रुद्रट का विरोध निरूपण इस प्रकारहै-

"यस्मिन्द्रव्यादीनां परस्परं सर्वथा विरुद्धानाम्।
एकत्रावस्थानं समकालं भवति स विरोधः।।

काव्यालङ्कार, ९/३०

इनके अनुसार परस्पर विरुद्ध द्रव्य-गुण-क्रिया-जाति की एकत्र समकाल में स्थिति विरोध है। सजातीयों में विरोध के चार भेद (दो द्रव्यों में, अथवा दो गुणों में अथवा दो क्रियाओं में, अथवा दो जातियों में) हैं एवं विजातीयों में विरोध के पांच भेद (द्रव्य और गुण में, अथवा द्रव्य और क्रिया में, अथवा गुण और क्रिया में, अथवा गुण और जाति में अथवा क्रिया और जाति में) हैं। दशम भेद जाति और द्रव्य के विरोध का इन्होंने खण्डन किया है।

विरोध के चार भेद और भी हैं जहाँ दो सजातीय परस्पर विरोधी द्रव्य आदि अर्थों में से एक का रहना अवश्यम्भावी हो परन्तु उन दोनों के अभाव का वर्णन किया गया हो।

इस प्रकार रुद्रट ने विरोध के तेरह भेदों का प्रतिपादन किया है। प्रबन्ध के गौरव के भय से यहां उसका विस्तार नहीं किया जा रहा है।

मम्मट

इनके अनुसार विरोध की परिभाषा है -

"विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद् वचः।

काव्यप्रकाश, १०/११०

इन्होंने विरोध का दसवां भेद भी मान लिया है, किन्तु अभाव तथा श्लेष और आभास के आधार पर किये गये भेदों को पृथक् नहीं गिनाया

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। मम्मट इन सभी भेदों को विरोध का ही अंग मानते हैं।

विरोध के भेद गिनाते हुए मम्मट ने लिखा है-

"जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्विरुद्धा स्याद् गुणस्त्रिभिः।
क्रिया द्वाभ्यामथद्रव्यं द्रव्येणैवेति ते दश ॥

इस प्रकार विरोध के दस रूप हैं -जाति, गुण, क्रिया तथा द्रव्य के आधार पर -

(क) जाति के चार भेद - जाति, गुण, क्रिया तथा द्रव्य के साथ
(ख) गुण के तीन भेद - गुण, क्रिया तथा द्रव्य के साथ
(ग) क्रिया के दो भेद - क्रिया तथा द्रव्य के साथ
(घ) द्रव्य का एक भेद - द्रव्य के साथ

प्रत्येक रूप का काव्यप्रकाश में एक-एक उदाहरण है।

रुय्यकादि

रुय्यक का विरोध लक्षण सूत्र है -

"विरुद्धाभासत्वं विरोधः।"

उपर्युक्त सूत्र और इसकी वृत्ति के अनुसार विरोध की परिभाषा है-

"विरुद्ध आभासित होना विरोध है। जाति, गुण, क्रिया, द्रव्य इन चार पदार्थों में से प्रत्येक के अपने में ही विरोधी सजातीय तथा विजातीय के साथ सम्बन्ध होने पर विरोध होता है। जहाँ उसका प्रशमन न हो तो वहाँ दोष का प्ररोह हो जाता है। विरोध का प्रशमन हो जाने पर, प्रारम्भ में ही आभासित होने से विरोधाभास कहलाता है।

सर्वस्वकार ने मम्मट की ही भाँति इस अलङ्कार के जाति, गुण, क्रिया तथा द्रव्य शब्दों के आधार पर दस भेद किये हैं -

(क) जाति के चार भेद - जाति, गुण, क्रिया तथा द्रव्य के साथ।
(ख) गुण के तीन भेद गुण क्रिया तथा द्रव्य के साथ।
(ग) क्रिया के दो भेद - क्रिया तथा द्रव्य के साथ
(घ) द्रव्य का एक भेद - द्रव्य के साथ

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्होंने इस अलङ्कार के केवल दो उदाहरण दिये हैं -

परिच्छेदातीतः सकलवचनानामविषय
पुनर्जन्मन्यस्मिन्ननुभवपथं यो न गतवान् ।
विवेकप्रध्वंसादुपचितमहामोहगहनो
विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापं च कुरुते ।।

विरही माधव कहता है - सीमा से अतीत, सारे वचनों से अवर्णनीय, इस जन्म में अनुभव पथ से जो अछूता है, विवेक नष्ट हो जाने से विकसित, महान मोह के कारण गहन, किसी अपूर्व विकार में अन्तस् को जड़ बना दिया है और संताप पैदा कर रहा है ।

यहाँ जड़ बनाना और तपाना इन दो क्रियाओं का विरोध है किन्तु मिलन न होने में विश्रान्त होने वाले वस्तु के सौन्दर्य द्वारा वह हटा दिया जाता है, इसलिए विरोधालङ्कार है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विभावना

भामह -

इस अलङ्कार का सर्वप्रथम विवेचन भामह ने किया है। इनके अनुसार क्रिया का प्रतिषेध होने पर उसके फल का कथन करना अर्थात् कारण के अभाव में कार्य का होना विभावना है।[७] इन्होंने अपनी कारिका में यह भी नियम लगा दिया कि जब कारणाभाव का समाधान सुलभ हो तभी विभावना अलङ्कार होगा। यह समाधान ही सौन्दर्य का चमत्कार है। भामह ने विभावना के भेदों का वर्णन नहीं किया, किन्तु उनके उदाहरणों से ज्ञात होता है कि इस सौन्दर्य में **'समाधान'** गम्य भी हो सकता है। इनके लक्षण के तीन अंग हैं क्रिया- प्रतिषेध, फलाप्ति, समाधि (समाधान)।

दण्डी -

इन्होंने विभावना के स्वरूप को अधिक स्पष्ट किया।[८] इनके अनुसार प्रसिद्ध हेतु की व्यावृत्ति (अभाव-प्रदर्शन) में अन्य कारण की कल्पना अथवा स्वाभाविकत्व[९] की कारण-कल्पना विभावना है। कारणान्तर विभावना का चित्रण तो भामह के अनुसार ही किया गया है, परन्तु स्वाभाविक विभावना एक नया रूप प्रतीत होता है। वस्तुतः इस प्रकार से स्वाभाविकत्व भी तो कारणान्तर ही है। इसको अलग रूप मानना आवश्यक नहीं था।

"वक्त्रं निसर्ग-सुरभिः वपुरव्याजसुन्दरम्।
अकारणरिपुश्चन्द्रो निर्निमित्तात्सुहृत्स्मरः ।। २/२०३ ।।

इस उदाहरण में कारणान्तर विभावना भी मानी जा सकती है।

उद्भट

इन्होंने भामह के ही लक्षण को ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया है।[१०] एकमात्र उदाहरण, सरल तथा स्पष्ट दिया है।

वामन

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
इन्होंने भामह की ही कारिका के सार को गद्य रूप में प्रस्तुत किया

है ।[11] इनके अनुसार क्रिया का प्रतिषेध होने पर उसी क्रिया के प्रसिद्ध फल का विवेचन विभावना का सौन्दर्य है । वामन ने केवल एक उदाहरण दिया है तथा भेदों का वर्णन नहीं किया है ।

रुद्रट

इन्होंने[12] विभावना के विवेचन में तीन नवीन तथ्यों का समावेश किया तथा इसके तीन प्रकारों का उल्लेख किया है । प्रथम भेद दण्डी से लिया है और द्वितीय भामह तथा वामन से । तीसरा भेद कुछ नवीन है जिसका उदाहरण है - **'मदहेतुरनासवो लक्ष्मीः'** ।

मम्मट

इनका लक्षण प्राचीन आचार्यों (विशेष रूप से वामन) से प्रभावित है । इनके अनुसार हेतु रूप क्रिया[13] अर्थात कारण के निषेध अथवा अभाव में फल की प्राप्ति विभावना का सौन्दर्य है ।

इस प्रकार भामह, उद्भट, वामन तथा मम्मट इन चार आचार्यों ने विभावना का स्वरूप प्रायः एक जैसी पदावली में स्पष्ट किया है । इनके उदाहरणों में भी अभिव्यक्ति की एक रूपता दृष्टिगोचर होती है । सबमें विभावना के दोनों अंग स्पष्ट हैं । एक-कारण का अभाव, दो-कार्य की उत्पत्ति किन्तु दण्डी और रुद्रट ने इन अभिव्यक्तियों में विभावना का समर्थन करते हुए अन्य अभिव्यक्तियों पर भी विचार किया है ।

रुय्यक-

इन्होंने विभावना का लक्षण निम्नलिखित सूत्र में दिया है-

"कारणाभावे कार्यस्योत्पत्तिर्विभावना ।" सूत्र ४२

सूत्र को स्पष्ट करते हुए आगे वृत्ति में लिखते हैं -

"इह कारणान्वयव्यतिरेकानुविधानात् कार्यस्य" कारणमन्तरेणासंभवः । अन्यथा विरोधी दुष्परिहरः स्यात् । यत्तु कदाचिद् मंत्र तथा भाव उपनिबध्यते तदा

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विभावनाख्योऽलङ्कारः। विशिष्टतया कार्यस्य भावनात्। सा च भङ्गिर्विशिष्टकारणाभावे कार्योपनिबन्धः। अप्रस्तुतं कारणं वस्तुतोऽस्तीति विरोध-परिहारः। कारणाभावेन चोपक्रान्तत्वाद् बलवता कार्यमेव बाध्यमानत्वेन प्रतीयते, न तु तेन कारणाभाव इत्यन्योन्यबाधकत्वानुप्राणिताद् विरोधालङ्काराद् भेदः। एवं विशेषोक्तौ कार्याभावेन कारणसत्ताया एव बाध्यमानत्वमुन्नेयम्। येन सापि विरोधाद् भिन्ना स्यात्।

इसका आशय यह है कि विभावना अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति वर्णित होती है। चूंकि कारण का कार्य के साथ अन्वयव्यतिरेक संबंध है अतः कारण के बिना कार्य का होना सम्भव नहीं है। यदि ऐसा होता है तो दोनों के वास्तविक विरोध को मिटाना कठिन होगा किन्तु यदि भंगिमा से इस प्रकार की उत्पत्ति बता दी जाती है तो विभावना अलङ्कार होता है।

विशिष्ट रूप में कार्य का भावन (निस्पादन) होने से इस अलङ्कार को विभावना कहा जाता है। इस अलङ्कार में अप्रस्तुत कारण विद्यमान रहता है। अतएव कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति होने में वास्तविक विरोध का परिहार हो जाता है। कारण के अभाव से प्रारम्भ होने वाला कार्य बलवान (कारण) के द्वारा बाध्यमान रूप में प्रतीत होता है। पर इसके कारण का अभाव नहीं सिद्ध होता। अतः परस्पर की बाधकता से अनुप्राणित विरोधालङ्कार से विभावना का विरोध है। इसी प्रकार विशेषोक्ति में कार्य के अभाव के कारण की सत्ता के ही बाध्यमान होने की कल्पना कर लेनी चाहिए। भाव यह कि विशेषोक्ति में कारण की बाध्यमानता रहती है पर उससे कार्य का अभाव सिद्ध नहीं होता इसलिए (विभावना की ही भांति) विशेषोक्ति का भी विरोध अलङ्कार से विरोध है।

यद्यपि अन्य आचार्यों ने इस अलङ्कार के लक्षण में कारण शब्द के स्थान पर क्रिया शब्द का प्रयोग किया है। किन्तु सर्वस्व के लक्षण में **'कारण'** शब्द का समावेश है। वृत्ति में कहा गया है कि सब दार्शनिक यह नहीं मानते कि कार्य, क्रिया का ही फल होता है। इस प्रकार की

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मान्यता केवल वैयाकरणों की है अतः वैयाकरणों के विशिष्ट मत की उपेक्षा करके उपर्युक्त लक्षण में सामान्य रूप में कारण शब्द का प्रयोग किया गया है-

इह लक्षणे यद्यप्यन्यैः कारण स्थाने क्रिया ग्रहणं कृतं, तथापीह कारण पदमेव विहितम् । नहि सर्वैः क्रिया फलमेव कार्यमभ्युपगम्यते, वैयाकरणेनेव तथाभ्युपगम्यत्वात् । अतो विशेषमनपेक्ष्य सामान्येन कारणपदमेवेह निर्दिष्टम् ।

इस अंश की व्याख्या करते हुए जयरथ कहते हैं कि पंक्ति का यह रूप किसी प्रतिलिपिकार की कल्पना है जो गलत है । किन्तु आगे दिये गये **'हरतापि तनुम्'** आदि पद्य में और इसी प्रकार के अन्य स्थलों में **'बल के न हरे जाने' रूप कार्योत्पत्ति से 'शरीर का हरा जाना'** रूप कारण बाधित नहीं होता; बल्कि 'शरीर हरण रूप कारण के रहने पर भी बल का हरण क्यों नहीं हुआ' इस मानस विकल्प के द्वारा कार्य का अभाव ही बाधित प्रतीत होता है । इसलिए यहां मूल पाठ कुछ और होना चाहिए, जो विमर्शिनीकार ने निम्नानुसार सुझाया है -

एवमित्याह । लेखककल्पितश्चायमपपाठः । तथा हि – हरतापि तनुं यस्य इत्यादौ बलाहरणेन कार्यभावेन तनुहरणरूपं कारणं न बाध्यते अपितु सत्यपि तनुहरणाख्ये सामग्रये कथं न बलं हृतमिति कार्यभावस्यैव बाध्यत्वेन प्रतीतिः तस्मात् 'एव विशेषोक्तौ कारणसत्तया कार्याभावस्यैव बाध्यमानत्वमुन्नेयम्' इति पाठो ग्राह्यः ।

अलङ्कारसर्वस्वम्, पृ० ४६४

जयरथ का कहना है कि सर्वस्वकार प्रायः अपने पिता राजानक तिलक के मत का ही अनुसरण करते हैं और तिलक ने कहा है –**'कारणसामग्र्यमिह बाधकत्वेनैव प्रतीयते कार्यानुत्पत्तिस्तु बाध्यत्वेन'**। इसीलिए जयरथ ने तिलक के उपर्युक्त कथन से मिलता हुआ पाठ प्रस्तुत किया है –

''एतदेव राजानकतिलकेनाप्युक्तम् ''कारणसामग्र्यमिह बाधकत्वेनैव प्रतीयते कार्यानुत्पत्तिस्तु बाध्यत्वेन'' इति । ग्रन्थकृच्च

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रायस्तन्मतानुवर्त्येव । तदुक्तसमानन्यायोऽस्माभिः पाठो लक्षितः ।

अलङ्कारसर्वस्वम् पृ० ४६४

समुद्रबन्ध एवं विद्या चक्रवर्ती, राजानक तिलक एवं रुय्यक के मन्तव्य के अन्तर को परिलक्षित नहीं करते । इस संबंध में ये दोनों टीकाकार मौन हैं ।

सर्वस्वकार ने विभावना के दो भेद किये हैं – उक्त निमित्ता तथा अनुक्त निमित्ता । प्रथम प्रकार की विभावना का उदाहरंण यह पद्य है-

"असंभृतं मण्डनमङ्गयष्टेरनावसाख्यं करणं मदस्य ।
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्परं साथ वयः प्रपेदे ।।

उस (पार्वती) ने शैशव से अगली वह अवस्था प्राप्त की जो अंग-लता का अनगढ़ा आभूषण है, आसव न होने पर भी मद का जनक है और जो कामदेव का पुष्प से भिन्न अस्त्र है ।

इस पद्य के द्वितीय चरण में, नशे के प्रसिद्ध कारण, आसव के अभाव में भी मद की उत्पत्ति, यौवन से बताई गयी है । वास्तव में, आसव जनित और यौवन जनित मद दोनों अलग-अलग प्रकार के हैं तथापि एकशब्द वाच्यता मूलक अतिशयोक्ति के द्वारा अभेदाध्यवसाय होने से यहां दोनों एक हैं । यह अतिशयोक्ति विभावना में नियमतः रहेगी ही अतः इसकी (विभावना की) निष्पत्ति अतिशयोक्ति के बाधा से नहीं होती अपितु उससे अनुप्राणित होकर होती है । यही बात वृत्ति में कही गई है -

अत्र द्वितीय पादे मदस्य प्रसिद्धं यदासवाख्यं कारणं तदभावेऽपि यौवनहेतुत्वेनोपनिबन्धः कृतः । मदस्य च द्वैविध्येप्यभेदाध्यवसायादेकत्वमतिशयोक्त्या । सा चास्यामव्यभिचारिणीति न तद्बाधेनास्या उत्थानम्, अपि तु तदनुप्राणित्वेन ।"

अ०स० (जानकी), पृ० १५५ (वृत्ति)

उपर्युक्त उदाहरण पद्य 'असंभृतं मण्डनं' के प्रथम एवं तृतीय चरण के संबंध में रुय्यक ने चार मतों का उल्लेख किया है । वृत्ति के इस अंश की व्याख्या इनके तीनों टीकाकारों ने अलग-अलग ढंग से की है तथा इन पंक्तियों को विभावना प्रकरण में अलग-अलग स्थान पर दिखाया

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। तात्पर्य यह कि यह अंश कहां होना चाहिए, इस पर टीकाकारों में मतैक्य नहीं है। सर्वस्व में इस श्लोक के नीचे वृत्ति में ग्रंथकार ने कहा है कि 'असंभृतं मण्डनं' तथा 'कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रम्' इस अंश पर कुछ विचारक विरोधी मान्यता प्रस्तुत करते हैं -

इयमेव विभावनेति केचित्। संभरणस्य पुष्पाणां च मण्डनमस्त्रं प्रत्यकारणत्वाद्वाङ्मात्रमेतत्। एकगुणहानौ विशेषोक्तिरित्यन्ते। रूपकमेवाधिरोपितवैशिष्ट्यमिति त्वपरे। आरोप्यमाणस्य प्रकृते संभवात्परिणाम इत्यद्यतनाः।"

अ०स० (रेवा), पृ० ४०५

जयरथ ने कहा है कि इस पद्य के उपर्युक्त चरणों में विशेषोक्ति मानने वाले, वामन के अनुयायी हैं एवं रूपक मानने वाले उद्भट के अनुयायी हैं। परिणाम मानने वालों का दृष्टिकोण जयरथ को मान्य नहीं है। उनका कहना है कि मूल ग्रंथ में लिपिकारों ने पग-पग पर विपर्यास किया है। जयरथ के अनुसार, अपनी कृति साहित्यमीमांसा में रुय्यक ने उपर्युक्त पद्य के संबंध में केवल दो ही दृष्टिकोण (विशेषोक्ति और रुपक के) प्रस्तुत किए हैं -

ग्रंथकृतापि साहित्यमीमांसायामेतच्छ्लोकविवृतौ-पक्षद्वयमेवोक्तम्। लेखकैश्चास्यग्रन्थस्य प्रतिपदमेव विपर्यासः कृतः। पृ० ४६७

अनुक्तनिमित्ता विभावना का उदाहरण है-

"अङ्गलेखामकाश्मीरसमालम्भनपिञ्जराम्।
अनालक्तकताम्राभामोष्ठमुद्रां च बिभ्रतीम्॥

वह (पार्वती) अंगयष्टि, जो केशर-रस के लेप के बिना ही पति वर्ण की थी तथा ओष्ठलेखा, जो बिना आलक्तक के ताम्रवर्ण की थी, को धारण किये हुए थी।

इस उदाहरण में अपने आप उत्पन्न होना (सहजत्व) रूपी कारण शब्दतः कथित न होकर गम्य है अतएव अनुक्तनिमित्ता का उदाहरण है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेषोक्ति

भामह

विशेषोक्ति का सर्वप्रथम प्रतिपादन भामह ने किया है। इनके अनुसार किसी वस्तु के एक गुण की समाप्ति हो जाने पर अन्य गुण विद्यमान रह कर और भी विशेषता का प्रथन करे[१४] तो वहां विशेषोक्ति अलङ्कार होता है। जैसे -

स एकस्त्रीणि जयति जगन्ति कुसुमायुधः।
हरतापि तनुं यस्य शम्भुना न हृतं बलम् ।। ३/२४ ।।

इस श्लोक को मम्मट ने अचिन्त्यनिमित्ता विशेषोक्ति के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है। साहित्यदर्पण में अचिन्त्यनिमित्ता भेद नहीं माना गया है और यही श्लोक अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति का उदाहरण बन कर आया है।

दण्डी

दण्डी का विशेषोक्ति विवेचन[१५] विस्तार का द्योतक है। इन्होंने इसके पांच भेदों का कथन करके इसके स्वरूप का विस्तार किया है। ये भेद हैं -गुणवैकल्य विशेषोक्ति, जातिवैकल्य विशेषोक्ति, क्रिया वैकल्य विशेषोक्ति, द्रव्यवैकल्य विशेषोक्ति एवं हेतु विशेष विशेषोक्ति। इनके अनुसार वर्ण्य की विशेषता दर्शाने के लिए जहां गुण-जाति-क्रियादि का कार्य सिद्धि में निष्फलत्वप्रतिपादित किया जाय वहां विशेषोक्ति अलङ्कार होता है। इन्होंने जाति-गुण-क्रिया एवं द्रव्यादि का कथन करके नया विचार प्रस्तुत किया है।

उद्भट

उद्भट ने विशेषोक्ति के लक्षण को और स्पष्ट करते हुए बताया है कि समग्र शक्तियों[१६] (कारणों) के विद्यमान रहने पर भी विशेषता प्रतिपादन के निमित्त फल की अनुत्पत्ति का वर्णन विशेषोक्ति है। इसके दो भेद हैं - (1) फलानुत्पत्ति का निमित्त[१७] दिखलाया गया हो (2) फलानुत्पत्ति

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का निमित्त आदर्शित हो ।

उद्भट का लक्षण भामह के लक्षण से अधिक वैज्ञानिक है। उत्तरकालीन आचार्यों ने विशेषतः उद्भट का अनुसरण किया है ।

वामन

इनके अनुसार एक गुण की हानि (न्यूनता) की कल्पना[१८] पर शेष गुणों से साम्य की दृढ़ता का वर्णन विशेषोक्ति है। यह रूपक-तुल्य[१९] होता है ।

वामन का यह लक्षण परवर्ती आचायों के लक्षण से तो भिन्न है ही, पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षण से भी नहीं मिलता । भामह के लक्षण का जो विस्तार उद्भट ने किया था उससे प्रायः समस्त नवीन आचार्य प्रभावित दीखते हैं । वामन के उपमा प्रपंच का आग्रह, विशेषोक्ति के लक्षण में 'साम्य' को आकृष्ट कर ले आता है इसीलिए वामन की विशेषोक्ति के उदाहरण लक्षणा के उदाहरण बन गये हैं -

"भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ।"

"व्यसनं हि नाम सोच्छ्वासं मरणम् ।।"

"द्विजो भूमिबृहस्पतिः ।"

मम्मट

इन्होंने उद्भट का ही अनुमोदन किया है और लक्षण में कारण समग्रता तथा उसके तथा कार्य के अभाव इन दोनों अंगों को यथावत् महत्व दिया है। इनका लक्षण इस प्रकार है - **"विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः** ।। १०/१०८ ।। आगे वृत्ति में लिखते हैं -

मिलितेष्वपि कारणेषु कार्यस्याकथनं विशेषोक्तिः ।

अर्थात् "कारण एकत्रित रहने पर भी कार्य का अकथन विशेषोक्ति कहलाता है ।"

मम्मट ने इसके तीन भेद माने हैं – उक्तनिमित्ता, अनुक्तनिमित्ता के उदाहरण तो वे ही, जो सर्वस्वकार ने दिये हैं जिनकी चर्चा आगे की गई है । अनुक्तनिमित्ता का उदाहरण यह है ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निद्रा निवृत्तावुदिते द्युरत्ने सखीजने द्वारपदं पराप्ते ।
श्लथीकृताश्लेषरसे भुजङ्गे चचाल नालिङ्गनतोऽङ्गना सा ।।

"नींद खुल जाने पर, सूर्य उग आने पर, सखियों के दरवाजे पर आ जाने पर तथा प्रिय के आलिंगन के शिथिल हो जाने पर भी वह वनिता आलिंगन से नहीं डिगी ।" यहां प्रवासज्ञान कारण है जो अनुक्त है । मम्मट ने अचिन्त्य निमित्ता तथा अनुक्तनिमित्ता को स्वतंत्र माना है किन्तु रुय्यक ने इसी में संशोधन करते हुए अचिन्त्यनिमित्ता का अनुक्तनिमित्ता में अन्तर्भाव दर्शाया है ।

रुय्यकादि

विभावना के ठीक विपरीत है विशेषोक्ति । इसका लक्षण है –

"जहाँ कारण की समग्रता रहने पर भी कार्य की अनुत्पत्ति बतलाई जाय वहाँ विशेषोक्ति होती है ।" सर्वस्व का लक्षण सूत्र द्रष्टव्य है –

"कारणसामग्र्ये कार्यानुत्पत्तिर्विशेषोक्तिः ।"

इस सूत्र के वृत्ति में ग्रंथकार कहते हैं कि- सब कारण इकट्ठे होते ही कार्य को निश्चित रूप से उत्पन्न करते हैं । ऐसा न हो तो उनकी समग्रता ही नहीं है । परन्तु समग्रता के रहने पर भी जहाँ उसे कार्य उत्पन्न करती हुई नहीं बतलाया जाता वहाँ विशेषोक्ति होती है । इसका प्रयोग किसी विशेष तथ्य की व्यंजना के लिए होता है -

इह समग्राणि कारणानि नियमेन कार्यमुत्पादयन्तीति प्रसिद्धम् । अन्यथा समग्रत्वस्यैवाभावप्रसंगात् । यत्तु सत्यपि सामग्रये न जनयति कार्यं सा कंचिद्विशेषमभिव्यक्तुं प्रयुज्यमाना विशेषोक्तिः ।

अ०स० (रेवा०), पृ० ४७६

विभावना की भाँति ही इसके दो भेद उक्तनिमित्ता तथा अनुक्तनिमित्ता किए गये हैं । रुय्यक का कथन है कि तीसरा भेद अचिन्त्यनिमित्ता (मम्मट द्वारा प्रतिपादित) तो वस्तुतः अनुक्तनिमित्ता ही है क्योंकि अनुक्त निमित्त दो प्रकार का होता है – चिन्त्य और अचिन्त्य ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान्यो जने जने ।
नमोऽस्त्ववार्यवीर्याय तस्मै कुसुमधन्वने ।।

आहूतोऽपि सहायैरोमित्युक्त्वा विमुक्तनिद्रोऽपि ।
गन्तुमना अपि पथिकः संकोचं नैवशिथिलयति ।।

स एकस्त्रीणि जयति जगन्ति कुसुमायुधः ।
हरतापि तनुं यस्य शंभुना न हृतंबलम् ।।

उपर्युक्त तीनों उदाहरणों में से पहले में दाह रूपी अविकल कारण की उपस्थिति होने पर भी अशक्तत्व रूपी कार्य की अनुत्पत्ति (शक्तिमान कहकर) शक्ति रूपी धर्म के द्वारा बताई गई है, जो (शक्ति) उस (अशक्ति) की अनुत्पत्ति के अविरुद्ध है। इसका कारण, अवार्यवीर्यत्व यहाँ उक्त है, इसलिए यह उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति का उदाहरण है ।

दूसरे पद्य में पुकारना आदि, जो संकोच के शिथिलीकरण के कारण होते हैं वे सब उपस्थित हैं तब भी उसकी (संकोच शैथिल्य की) अनुत्पत्ति बताई गई है। उसका कारण स्वप्न में प्रियतमा का समागम है जो अनुक्त अवश्य है किन्तु उसकी कल्पना की जा सकती है ।

तीसरे उदाहरण में 'शरीर का हरण' यह कारण विद्यमान है तथापि बल हरण रूपी कार्य की जो अनुत्पत्ति बताई गई है उसका कारण अनुक्त भी है और अचिन्त्य भी क्योंकि वह प्रतीति गोचर नहीं है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधिक

अधिक अलङ्कार का सर्वप्रथम विवेचन रुद्रट ने किया है। परवर्ती आचार्यों में अधिकांश ने इसको अपनाया है। रुद्रट के अनुसार जहाँ एक ही कारण से अन्योन्य विरुद्ध स्वभाव के अथवा अन्योन्य विरुद्ध क्रिया के पदार्थ उत्पन्न हों वह 'अधिक' का प्रथम भेद[२०] है। जैसे - "मेघ पानी और जंलती आग दोनों एक साथ बरसा रहा है।"[२१]

क्रिया विरुद्ध का उदाहरण है - "समुद्र से विष और अमृत उत्पन्न हुए।"[२२]

अधिक का दूसरा भेद वह है जहाँ वृहत् आधार में छोटी वस्तु भी न समा सकें।[२३] जैसे "उसके जगद्विशाल हृदय में वह तन्वी इतनी फैल कर रह रही है कि दूसरी किसी सुन्दरी के लिए वहां स्थान ही नहीं है।"

अधिक अलङ्कार का परवर्ती विकास द्वितीय प्रकार के आधार पर ही हुआ और प्रथम भेद को प्रायः आचार्यों ने नहीं अपनाया।

मम्मट

इन्होंने रुद्रट के प्रथम अधिक को छोड़ दिया है। केवल द्वितीय अधिक का ही विवेचन किया है। इनके अनुसार अधिक अलङ्कार वहां होता है जहां प्रस्तुत वस्तु का प्रकर्ष दिखलाने के लिए, छोटे होने पर भी आश्रय और आश्रित (आधार और आधेय) अपने से वृहत् अपने आश्रित और आश्रय से बड़े बतलाये जायें।[२४] जैसे -"अहो, तीनों भुवन का उदर बहुत विशाल है। क्योंकि राजन ! इसमें आपकी अमेय यशोराशि भी समा जाती है जिसका कहीं समा पाना असंभव.था।"[२५]

यह आधार के आधेय से आधिक्य का उदाहरण है।

अधिक का दूसरा भेद वह है जहाँ आधेय (आश्रित) को आधार से बड़ा बताया जाता है। जैसे "युगान्त में जिस श्रीकृष्ण के शरीर में सारा विश्व आसानी से समाविष्ट हो गया उसी शरीर में तपोधन नारद

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के आगमन का हर्ष नहीं समा रहा था ।"[२६]

रुय्यकादि

अलङ्कारसर्वस्व में अधिकारलङ्कार का लक्षण सूत्र है -

"आश्रयाश्रयिणोरनानुरूप्यमधिकम् ।

अर्थात् आश्रय और आश्रयी की अननुरूपता अधिक नामक अलङ्कार है ।

वृत्ति में यहाँ (विरोध वर्ग में) इसके निरूपण का औचित्य बताते हुए ग्रंथकार कहते हैं कि विरोध के कारण इसे इस प्रसंग में बताया जा रहा है, क्योंकि अननुरूपता, विरोध को जन्म देती है ।

यह अननुरूपता आश्रय के विशाल होने पर भी आश्रित के परिमित होने के कारण, अथवा आश्रित के विशाल होने पर भी आश्रय के परिमित होने से होती है । सर्वस्वकार ने दोनों के उदाहरण दिए हैं, जिनमें से पहला यह पद्य है -

द्यौरत्र क्वचिदाश्रिता प्रविततं पातालमत्र क्वचि-
त्क्वाप्यत्रैव धराधराधरजलाधारावधिर्वर्तते ।
स्फीतः स्फीतमहो नभः कियदिदं यस्येत्थमेवंविधै-
र्दूरे पूरणमस्तु शून्यमिति यन्नामापि नास्तं गतम् ।।

यहाँ किसी जगह स्वर्ग आश्रित है, किसी जगह पाताल फैला हुआ है, यहीं कहीं पृथ्वी, पर्वत और समुद्रों का समूह है । यहाँ यह आकाश कितना फैला-फैला है किन्तु जिसका इस प्रकार से इन (स्वर्ग, पाताल और पृथ्वी जैसे पदार्थों) के द्वारा भी भर जाने की बात तो दूर रहे, 'शून्य' यह नाम भी समाप्त नहीं हो सका ।

यहाँ आश्रय को विपुल तथा आश्रित को तुच्छ बताया गया है इसलिए अधिकालङ्कार के प्रथम प्रकार का उदाहरण है ।

आश्रय की तुच्छता तथा आश्रित की विपुलता पर आश्रित अधिकालङ्कार का उदाहरण यह पद्य है –

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभङ्गोद्यत-
ष्टंकारध्वनिरार्यबालचरितप्रस्तावनाडिण्डिमः ।
द्राक्पर्यस्तकपालसंपुटलसद्ब्रह्माण्डभाण्डोदर-
भ्राम्यत्पिण्डितचण्डिमा कथमहो नाद्यापि विश्राम्यति ।।

[भुजदण्ड द्वारा खींचे गये शिवधनुष के टूटने से उठी टंकार-ध्वनि, आर्य (राम) के बालचरित (रूपी नाटक) की प्रस्तावना की सूचक नांदी (नगाड़ा) है । तेजी से चक्कर लगाने से कपाल-सम्पुट से संघटित होने वाला ब्रह्माण्ड भाण्ड के मध्य में घूमने वाला पुंजीभूत पराक्रम, अहो ! आज तक भी विश्राम क्यों नहीं लेता ।

पहले उदाहरण में आकाश रूपी आश्रय के विशाल होने पर स्वर्ग आदि आश्रित की परिमितता चारुता की जन्मदात्री है किन्तु दूसरे उदाहरण में आश्रित रूपी टंकार-ध्वनी के लिए, विशाल होने पर भी आश्रय ब्रह्माण्ड की परिमितता चारुता का हेतु है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पादटिप्पणी

१. अत एवालङ्कारसारकृता विशेषोक्त्यन्तर्भाव एवोक्तः ।वि, पृ० २१५

२. विरुद्धानां पदार्थानां यत्र संसर्गदर्शनम् । विशेषदर्शनायैव स विरोधः स्मृतो यथा ।। काव्यादर्श, २/३३३

३. गुणस्य वा क्रियाया वा विरुद्धान्यक्रिया वचः ।
यद्विशेषाभिधानाय विरोधं तं प्रचक्षते ।।- काव्यालङ्कारसारसंग्रह, ५/६

४. इन्होंने दो उदाहरण दिये हैं जिनमें से एक है -
सा बाला वयमप्रगल्भमनसः सा स्त्री वयम् कातराः ....इत्यादि श्लोक । विश्वनाथ ने इसे असंगति अलङ्कार के उदाहरण के रूप में दिया है ।

५. स इति विरोधाभासो यस्मिन्नर्थद्वयं पृथग्भूतम् ।
अन्यद् वाक्यं गमयेदविरुद्धं सद्विरुद्धमिव ।। काव्या०, १०/२२

६. इह जात्यादीनां चतुर्णां पदार्थानां प्रत्येकं तन्मध्य एव सजातीय विजातीयाभ्यां विरोधिभ्यां सम्बन्धे विरोधः । स च समाधानं विना प्ररूढ़ो दोषः । सति तु समाधाने प्रमुख एवाभासमानत्वाद्विरोधाभासः।

७. क्रियाया प्रतिषेधे या तत्फलस्य विभावना ।
ज्ञेया विभावनैवासौ समाधौ सुलभे सति ।। २/७७ ।।

८. प्रसिद्धहेतुव्यावृत्त्या यत्किंचित् कारणान्तरम् ।
यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यं सा विभावना ।। २/१९९ ।।

९. विभावना का यही लक्षण अग्निपुराणकार ने अपना लिया है ।

१०. का०सा० सू० २/९८

११. क्रिया - प्रतिषेधे प्रसिद्ध तत्फलव्यक्तिर्विभावना । ४/३/१३

१२. (क) सेयं विभावनाख्या यस्यामुपलभ्यभानमभिधेयस् ।
अभिधीयते यतः स्यात् तत्कारणमन्तरेणैव ।। काव्यांलङ्कार ६/१६
(ख) यस्यां यथा विकार स्तत्कारणमन्तेरणैव सुव्यक्तः ।। ६/१७
(ग) यस्य यथात्वं लोके प्रसिद्धमर्थस्य विद्यते तस्मात् ।
अन्यस्यापि तथात्वं यस्याभ्युपैत [illegible]येयम् ।। काव्यालङ्कार ६/१६

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१३. क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना।
इसकी वृत्ति है - हेतु-रूप-क्रियाया निषेधेऽपि तत्फल प्रकाशनम् विभावना।

१४. एक देशस्य विगमे या गुणान्तरसंस्थितिः।
विशेष प्रथनायासौ विशेषोक्तिर्मता यथा ।। ३/२३

१५. गुणजातिक्रियादीनां यत्तु वैकल्यदर्शनम्।
विशेष दर्शनायैव सा विशेषोक्तिरिष्यते ।। काव्या० २/३२३

१६. यत् सामग्रेऽपि शक्तीनां फलानुत्पत्तिबन्धनम्।
विशेषस्याभिधित्सातः, तद् विशेषोक्तिरुच्यते ।। का०सा० ५/४

१७. दर्शितेन निमित्तेन निमित्तादर्शनेन च।
तस्या बन्धो द्विधा लक्ष्ये दृश्यते ललितात्मकः ।। वही, ५/५,

१८. एक गुण हानि-कल्पनायां साम्यदार्ढ्यं विशेषोक्तिः। काव्या० सू० ४,३,२३

१९. रूपकं वेदं प्रायेण। (वृत्ति)

२०. यत्रान्योविरुद्धं विरुद्धबलवत क्रियाप्रसिद्धं वा।
वस्तुद्वयमेकस्माज्जायतं इति तद्भवेदधिकम् ।। ९/२६ ।।

२१. मुञ्चति वारि पयोदो ज्वलन्तमनलम् च।

२२. उदपद्यत नीरनिधेर्विषममृतं चेति।

२३. यत्राधारे सुमहत्याधेयमवस्थितं तनीयोऽपि।
अतिरिच्यते कथंचित् तदधिकमपरं परिज्ञेयम् ।। ९/२८ ।।

२४. महतोर्यन्महीयांसावाश्रिताश्रययोः क्रमात्।
आश्रयाश्रयिणौ स्यातां तनुत्वेऽप्यधिकं तु तत् ।।

२५. अहो विशालं भूपाल भुवनत्रितयोदरम्।
माति मातुमशक्योऽपि यशो राशिर्यदत्र ते ।। १०/१५१ ।। का०प्र०

२६. युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकाशमासत
तनौममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसंभवा भुदः ।। १०/१५२ ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहायक ग्रंथों की सूची

(क) संस्कृत–ग्रंथ –

1. अग्निपुराण – आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज़– 41,पूना, 1951.
2. अप्पयदीक्षित – चित्रमीमांसा, काव्यमाला– 38, 1941.
3. अप्पयदीक्षित – कुवलयानन्द, चौखम्भा विद्या भवन, बनारस, 1956
4. अभिनवगुप्त – ध्वन्यालोकलोचन, चौखम्भा संस्कृत सीरीज़ आफिस, बनारस, 1941.
5. अभिनवगुप्त – अभिनव भारती, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज़, बड़ौदा, 1956.
6. आनन्दवर्धन – ध्वन्यालोक, चौखम्भा संस्कृत सीरीज़ आफिस बनारस, 1940.
7. उद्भट – काव्यालंकारसारसंग्रह, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा 1931.
8. उद्भट – काव्यालंकारसारसंग्रह, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई,1928.
9. कल्हण – राजतरंगिणी
10. कविकर्णपूर – अलंकारकौस्तुभ, वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी राजशाही (पूर्वी बंगाल), 1926.
11. कुन्तक – वक्रोक्तिजीवित, सं० डॉ. दे० ढाका,
12. कुमारस्वामी – रत्नापण, (प्रतापरुद्रयशोभूषण की टीका), गवर्नमेण्ट सेन्ट्रल प्रेस, बम्बई 1909.
13. केशवमिश्र – अलंकार शेखर, काशी संस्कृत सीरीज आफिस, बनारस, 1972
14. क्षमेन्द्र – औचित्यविचारचर्चा, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1929.
15. क्षेमेन्द्र – कविकण्ठाभरण, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 11929.
16. गोविन्द ठक्कुर – प्रदीप (काव्यप्रकाश की टीका) चौखम्भा, वाराणसी।
17. जगन्नाथ पण्डितराज – रसगंगाधर, काशी संस्करण तथा काव्यमाला 12; निर्णय सागर प्रेस, 1939.
18. जयदेव, पीयूषवर्षी – चन्द्रालोक, चौखम्भा, काशी, 1950.

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

19. जयदेव, पीयूषवर्षी – चन्द्रालोक, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, 1939.
20. जयरथ – विमर्शिनी (अलंकार सर्वस्व की टीका), निर्णय सागर प्रेस, 1939.
21. जयरथ – विवेक (तन्त्रालोक–टीका), तत्वविवेचक मुद्रणालय, बम्बई ।
22. जल्हण – सूक्तिमुक्तावली, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1938.
23. तिलक – विवृति (काव्यालंकारसारसंग्रह की टीका), ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1931.
24. दण्डी – काव्यादर्श, प्राच्य विद्या संशोधन मन्दिर (भ० ओ० इ०) पूना, 1938.
25. धनञ्जय तथा धनिक– दशरूपक तथा अवलोक, बम्बई संस्करण ।
26. नरेन्द्रप्रभु सूरि – अलंकारमहोदधि, ओ०इ० बड़ौदा, 1842.
27. नमिसाधु – वृत्ति (रुद्रट के काव्यालंकार पर टीका) निर्णय सागर प्रेस, 1928.
28. नागेश – उद्योत (काव्यप्रकाश की प्रदीप टीका की टीका), चौखम्भा, वाराणसी ।
29. प्रतीहारेन्दुराज – लघुवृत्ति – काव्यालंकारसारसंग्रह – टीका, निर्णय सागर प्रेस, 1928.
30. भट्टगोपाल – साहित्यचूड़ामणि (काव्यप्रकाश टीका) अनन्तशयन संस्कृत ग्रंथावली, 1930.
31. भट्टनायक – हृदयदर्पण (अप्राप्य) ।
32. भरतनाट्यशास्त्र – गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा ।
33. भर्तृहरि – वाक्यपदीय, सरस्वती भवन ग्रंथमाला, वाराणसी, 1963
34. भामह – भामहालंकार (काव्यालंकार), बालमनोरमा प्रेस, मद्रास, 1956.
35. भोजराज (भोजदेव) – सरस्वती कण्ठाभरण, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1926.
36. भोजराज (.भोजदेव) – शृंगारप्रकाश, यदुगिरि यतिराज सम्पत्कुमार रामानुज मुनि द्वारा मद्रास से प्रकाशित (1926).

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

37. मंखक – श्रीकण्ठचरित, निर्णय सागर संस्करण ।

38. मम्मट – काव्यप्रकाश (वामनाचार्य झलकीकर की टीका), पूना ।

39. मम्मट – काव्यप्रकाश, अनन्तंशयन संस्कृत ग्रंथावली, नम्बर – 88, 100, त्रिवेन्द्रम 1926, 1930.

40. मल्लिनाथ – तरल (विद्याधर के एकावली की टीका), बम्बई संस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज नंबर 63 सन् 1903.

41. महिमभट्ट – व्यक्तिविवेक (रुय्यककृत व्याख्यान टीकोपेत), त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, त्रिवेन्द्रम, 1909.

42. महिमभट्ट – व्यक्तिविवेक, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, बनारस, 1936.

43. माणिक्यचन्द्र – काव्यप्रकाश संकेत, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, नंबर 89, 1921.

44. मुकुल भट्ट – अभिधावृत्तिमातृका संकेत, काव्यमाला संस्करण ।

45. मुकुल भट्ट – अभिधावृत्तिमातृका, निर्णय सागर प्रेस, 11916.

46. राजशेखर – काव्यमीमांसा, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1924.

47. रुद्रट – काव्यालंकार, काव्यमाला – 2 मुम्बई ।

48. रूपगोस्वामी – उज्ज्वलनीलमणि, निर्णय सागर, बम्बई ।

49. रुय्यक – अलंकारसर्वस्व; शारदा संस्कृत ग्रंथमाला, काशी, 1924.

50. रुय्यक – अलंकारसर्वस्व, निर्णय सागर, प्रेस, मम्बई, 1939.

51. रुय्यक – अलंकारसर्वस्व, अनन्तशयन संस्कृत ग्रंथावली – 40, त्रिवेन्द्रम ।

52. रुय्यक – काव्यप्रकाश संकेत, कलकत्ता ओरियण्टल जरर्नल भाग–2, संख्या – 12. 1935.

53. रुय्यक – व्यक्तिविवेक व्याख्यान (व्यक्तिविवेकविचार), काशी संस्करण तथा त्रिवेन्द्रम संस्करण ।

54. रुय्यक – सहृदयलीला, निर्णय सागर प्रेस, 1937. (तथा पिशेल सम्पादित) ।

55. रुय्यक – साहित्यमीमांसा, त्रिवेन्द्रम, 1934.

56. वाग्भट – वाग्भटालंकार, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 2013 सम्वत् ।

57. वामन – काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, काव्यमाला, 1926.

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

58. वामन – काव्यालंकारसूत्रवृत्ति (कामधेनु टिप्पणी सहित) ओरियण्टल बुक एजेंसी, पूना, 1927.
59. वामन – काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, हिन्दी अनुसन्धान परिषद् ग्रंथमाला ग्रंथ 1, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1954.
60. विद्यानाथ – प्रदापरुद्रयशोभूषण, गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल प्रेस, बम्बई, 1909.
61. विद्याधर – एकावली, बम्बई संस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज नं० 63, 1903.
62. विश्वनाथ (कविराज) – साहित्यदर्पण, निर्णय सागर प्रेस, 1936.
63. विश्वनाथ (कविराज) – साहित्यदर्पण, चौखम्भा, काशी।
64. विश्वेश्वर – अलंकारकौस्तुभ, काव्यमाला संस्करण।
65. शारदातनय – भावप्रकाशन, गायकवाड़ ओ० सी०, बड़ौदा।
66. शोभाकर मित्र – अलङ्कार रत्नाकर, ओरियण्टल बुक एजेंसी, पूना, 1942.
67. श्रीकृष्णभट्ट – वृत्तिदीपिका, गवर्नमेण्ट संस्कृत लाइब्रेरी, बनारस।
68. श्रीवत्सलान – काव्यपरीक्षा, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1956
69. श्रीविद्या चक्रवती – सम्प्रदाय प्रकाशिनी (काव्यप्रकाश टीका) भाग 1, 2 अनन्तशयन संस्कृत ग्रंथावली नं० 88 त्रिवेन्द्रम, 1936.
70. श्रीविद्या चक्रवर्ती – विंरूपाक्ष पञ्चाशिका टीका, त्रिवेन्द्रम, 1910.
71. समुद्रबन्ध – विवृति (अलङ्कारसूत्र की टीका), त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, 1915.
72. हेमचन्द्र – काव्यानुशासन, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1934.

(ख) पाण्डुलिपियाँ –

1. जयरथ – अलङ्कारोदाहरण, भण्डारकर प्राच्य विद्या संस्थान, पूना (देखिए डिस्क्रिप्टिव कैटलाग, जिल्द, 12)
2. श्री विद्या चक्रवती – अलङ्कारसर्वस्व निष्कृष्टार्थकारिका
3. श्री विद्या चक्रवर्ती – संजीविनी, युनिवर्सिटी मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम तथा पाण्डुलिपि पुस्तकालय, मैसूर।
4. श्री विद्या चक्रवती – रुक्मिणीकल्याण, कैटलाग आर 3666 मद्रास गवर्नमेंट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(ग) हिन्दी ग्रंथ –

1. उपाध्याय बलदेव– भारतीय साहित्यशास्त्र, प्रसाद परिषद् काशी 2005 संवत् ।
2. ओमप्रकाश – अलङ्कारों का स्वरूपविकास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1973.
3. हीरा, राजवंश सहाय – अलङ्कारों का क्रमिक विकास
4. दास गुप्त, श्री शशि भूषण – उपमा कालिदासस्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962.
5. नगेन्द्र (सम्पादक) – भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
6. नगेन्द्र (सम्पादक) – हिन्दी वक्रोक्ति जीवित, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
7. पोद्दार, कन्हैयालाल – संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रथम तथा द्वितीय भाग, नवलगढ़, 1938.
8. भोलाशंकर व्यास – ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
9. रामचन्द्र द्विवेदी – अलङ्कारसर्वस्व–मीमांसा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1952.
10. राममूर्ति त्रिपाठी – औचित्य–विमर्श, भारती भंडार, प्रयाग ।
11. रेवाप्रसाद द्विवेदी– हिन्दी अलंकारसर्वस्व, जयरथ कृत विमर्शिनी सहित, काशी संस्कृत ग्रंथमाला – 206, वाराणसी, 1971
12. ब्रजमोहन चतुर्वेदी – शब्द–शक्ति–विमर्श ज्ञान भारती, दिल्ली ।
13. ब्रजमोहन चतुर्वेदी – महिभट्ट, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली । 1952.
13. विश्वेश्वर (आचार्य) – हिन्दी ध्वन्यालोक, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, 1952.
14. शर्मा ब्रह्मानन्द – संस्कृत साहित्य में सादृश्यमूलक अलङ्कारों का विकास,चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1964.

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(घ) आंग्ल ग्रंथ –

1. भंडारकर, ए० एस – इज अर्थान्तरंन्यास बेस्ड आन तर्क आर नाट ?
2. भट्टाचार्य, एम० पी० – रसाभास इन अलङ्कार लिटरेचर, कलकत्ता ओरियण्टल जर्नल, वाल० 2 नंबर 10, जुलाई 1935.
3. दे, एस० के० – हिस्ट्री आफ संस्कृत पोइटिक्स, वाल० 1/2, कलकत्ता, 1976.
4. डंकन, एम० डेरेंट – द होसलाज, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957.
5. गोडे, पी० के० – द प्राब्लेम आफ द क्लासिफिकेशन आफ अलङ्काराज, एन्नलस् आफ बी० ओ० आर०आइ०, वाल० 2, 1921, पी पी 69-72.
6. जानकी, कु०एस०एस० – अलङ्कारसर्वस्व आफ रुय्यक, विथ संजीविनी, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली, 1965.
7. काणे, पी०वी० – हिस्ट्री आफ संस्कृत पोइटिक्स, बाम्बे, 1951
8. कीथ, ए०बी० – हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1924.
9. लाहिरी, पी०सी० – कान्सेप्ट आफ रीति एण्ड गुण इन संस्कृत पोइटिक्स द युनिवर्सिटी आफ ढाका, 1937.
10. पाण्डे, के०सी० – कम्परेटिव एस्थेटिक्स, वाल– 1, सी 1, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिसबनारस ।
11. राघवन, वी० (एडि०) – न्यू कैटेलाग्स कैटेलागोरस् ।
12. राधवन, वी० (एडि०) – श्रृंगारप्रकाश, कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे 1940.
13. राघवन, वी० (एडि०) – स्टडीज़ आन सम कान्सेप्ट्स आफ द अलंकारशास्त्र, अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास, 1942.
14. शंकरन्, ए०, – सम आस्पेक्ट्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज़्म, यूनिवर्सिटी, मद्रास, 1929.
15. सोवानी, वी०वी० एल – द हिस्ट्री एण्ड सिग्निफिकेन्स आफ उपमा, इन्नलुस, बी०ओ०आर०आइ० 1919-20, पी० पी० 87-88.
16. सोवानी, वी०वी०एस० – प्री – ध्वनि स्कूल्स आफ अलङ्कार, भंडारकर कमेमोरेशन वाल० 1 पी० 267.

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



डॉ. देवेन्द्र मिश्र, ज्योतिर्विद्,
रीडर, संस्कृत विभाग, मुख
कला संकाय भवन दिल्ली
दिल्ली-7

- सदस्य, विद्वत् परिषद्
  दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- सदस्य, हिन्दी सलाहकार समि
  ऊर्जा मन्त्रालय, भारत सरका
- अध्यक्ष, पुरस्कार दात्री समिति
  ऊर्जा मन्त्रालय, भारत सरका
  नई दिल्ली ।

अभिरुचि–

अध्ययन, अध्यापन, काव्य
आध्यात्मिक विषयों, रामायण और
प्रवचन ।

अनेक निबन्ध, संस्कृत–पद्य त
प्रकाशित ।

प्रकाशनाधीन

1. श्री कार्त्तिकेय–शतक
2. आचार्य वराह मिहिर की कृतिये

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेंकटेश प्रकाशन, दिल्ली
69, संस्कृत नगर, प्लाट नं. -3 सेक्टर -14,
रोहिणी दिल्ली — 110085
शाखा – देवराकलां, कटनी (मध्य प्रदेश)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha